**Registration No. V-36244/2008-09** **ISSN :- 2395-0390**

**The journal has been listed in 'UGC Approved List of Journals' with Journal No. – 48402 in previous list of UGC**

**JIFE Impact Factor – 5.21**

# Varanasi Management Review

***A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal***

*Editor in Chief*
**Dr. Alok Kumar**
Associate Professor & Dean (R&D)
School of Management Sciences
Varanasi

**Volume - XI** **No. - 1** **(January - March) 2025**

***Published by***
**Future Fact Society**
**Varanasi (U.P.) India**

*Varanasi Management Review* - ***A Multidisciplinary Quarterly International Referred Research Journal****, Published by : Quarterly*

**Correspondence Address :**
**C 4/270, Chetganj**
**Varanasi, (U.P.)**
**Pin. - 221 010**
**Mobile No. :- 09336924396**
**Email- vnsmgrev@gmail.com**

**Note :-**

The views expressed in the journal "Varanasi Management Review" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

**Managing Editor**
*Avinash Kumar Gupta*

©Publisher

***ISSN : 2395-0390***

**Printed by**
Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

## ADVISORY BOARD


- **Prof. T. N. Singh,** School of Plant Sciences, Haramaya University, Ethiopia (Africa)
- **Prof. S.K. Bhatnagar,** School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. (Dr.) Munna Singh**, Head of Department, Physical Education and Sports Sciences Department, Handia P.G. College, Handia, Prayagraj, U.P.
- **Dr. Saumya Singh,** Associate Professor, Department of Management Studies, Indian School of Mines, Dhanbad
- **Dr. Mrinalini Pandey,** Associate Professor, Department of Management Studies, Indian School of Mines, Dhanbad
- **Dr. Achchhe Lal Yadav**, Assistant Professor, Physical Education, Pt. D. D. U. Government Degree College, Saidpur, Ghazipur
- **Dr. Aditya Kumar Gupta,** Assistant Professor, School of Management Sciences, Varanasi
- **Dr. Abhishek Sharma,** Assistant Professor, Department of Hindi, Ravenshaw University, Cuttack
- **Dr. A. Shanker Prakash,** Assistant Professor, School of Management Sciences, Varanasi
- **Dr. Anil Pratap Giri,** Assistant Professor, Department of Sanskrit, Pondicherry Central University, Pondicherry.

## EDITORIAL BOARD


- **Dr. Sanjay Singh,** Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Nagendra Kumar Singh,** Professor, Department of Journalism & Mass Communication, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Manish Arora,** Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya,** Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray,** Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi,** Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh,** Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Santosh Kumar Singh,** Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh,** Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur
- **Dr. Girish Kumar Tiwari,** Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi

- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan,** Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey,** Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi

଒ଓ

# EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Varanasi Management Review,** a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

**Note:** All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

**Editor**

# CONTENTS

*"Varanasi Management Review"*


| | | |
|---|---|---|
| ➲ | गाँधी के आन्दोलनों में जनपद फिरोजाबाद के उपेक्षित व्यक्तित्वों का प्रभाव<br>*अतुल प्रकाश*<br>*प्रो. शहरयार अली* | 01-08 |
| ➲ | गुप्त काल में आभूषण, वस्त्र और परिधान<br>*डॉ. नेहा श्रीवास्तव* | 09-10 |
| ➲ | उत्तर प्रदेश के बाँदा जनपद का भूमि उपयोग प्रतिरूपः एक अवलोकन<br>*डॉ. विकास यादव* | 11-16 |
| ➲ | भक्तिकाव्य का आध्यात्मिक वैशिष्टय व स्वरूप<br>*रत्ना*<br>*डॉ. प्रिया मुखर्जी* | 17-19 |
| ➲ | भारतीय औद्योगिक विकास के प्रतीक डॉ0 श्यामा प्रसाद मुकर्जी<br>*अंजली कुमारी*<br>*डॉ. विजय नारायण सिंह* | 20-23 |
| ➲ | मौर्यकालीन सामाजिक गतिविधियाँः एक अध्ययन<br>*डॉ. सत्यजीत सारंग* | 24-28 |
| ➲ | धार्मिक उग्रवाद और राजनीति पर इसका प्रभाव<br>*सरिता कुमारी* | 29-33 |
| ➲ | परिवार संरचनाओं का बदलता स्वरूप<br>*डॉ. कुमारी भावना* | 34-39 |
| ➲ | भारतीय एवं पाश्चात्य रंगमंच की प्रमुख अवधारणाएँ<br>*शैलजा दुबे* | 40-45 |
| ➲ | छत्तीसगढ़ी लोक संस्कृति में पर्व–उत्सव<br>*डॉ. दीपशिखा पटेल* | 46-48 |
| ➲ | व्यवहारिक मनोविज्ञानः मानव जीवन में व्यवहार की वैज्ञानिक समझ<br>*प्रो. (डॉ.) गिरिजा उरांव* | 49-53 |
| ➲ | किरातार्जुनीयम् के आलोक में मन्त्रणा की उपादेयता<br>*डॉ. दीपक कुमार* | 54-57 |
| ➲ | विंध्य क्षेत्र में वी. डी. सावरकर के विचारों का प्रसार और प्रभाव<br>*आकांक्षा* | 58-62 |
| ➲ | प्राचीन भारतीय शिक्षा के संप्रदान की वैदिक प्रक्रिया<br>*आनन्द प्रताप निषाद* | 63-67 |

| | | |
|---|---|---|
| ➲ | हिन्दी दलित साहित्यः स्वर, संरचना एवं प्रतिरोध की भाषा<br>***डॉ. अर्चना सिंह*** | 68-70 |
| ➲ | सांप्रदायिकता राष्ट्रनिर्माण में बाधा<br>***डॉ. आमरीन हसन*** | 71-74 |
| ➲ | स्वामी विवेकानंद के दर्शन में प्रतिबिंबित जीवन कौशल और जीवन कौशल शिक्षा<br>***मनोज कुमार देवतवाल***<br>***प्रो.एम.एन.मुस्तफा*** | 75-80 |
| ➲ | धर्म, अर्थ और समाजः प्राचीन भारत की आर्थिक संस्थाओं की त्रैतीय भूमिका<br>***प्रो0 आनंद शंकर सिंह***<br>***दिव्या दुबे*** | 81-85 |
| ➲ | भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में मुस्लिम महिलाओं का योगदान<br>***डॉ. निजामुद्दीन*** | 86-88 |
| ➲ | संस्कृत साहित्य में उपजीव्य काव्य का महत्त्व<br>***डॉ० ओम प्रकाश सिंह*** | 89-91 |
| ➲ | महिलाओं की स्थिति में हो रहे परिवर्तनों पर शिक्षा का प्रभाव<br>***डॉ. दिलीप कुमार सिंह*** | 92-94 |
| ➲ | मुस्लिम महिला उद्यमिता की वर्तमान स्थितिः चुनौतियां एवं समाधान<br>***डॉ. सलीम खान*** | 95-101 |
| ➲ | भारत में खाद्य सुरक्षा एवं चुनौतियाँ<br>***डॉ. अर्चना सिंह*** | 102-105 |
| ➲ | रेशम : आविष्कार एवं भारतीय ऐतिहासिक संदर्भ<br>***डॉ. नीलम उपाध्याय*** | 106-108 |

# गाँधी के आन्दोलनों में जनपद फिरोजाबाद के उपेक्षित व्यक्तित्वों का प्रभाव

अतुल प्रकाश*
प्रो. शहरयार अली**

गाँधी जी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 ई0 को गुजरात प्रान्त के पोरबन्दर नामक स्थान पर हुआ था। राजनैतिक विचार एवं आचरण के क्षेत्र में सत्याग्रह की अवधारणा गाँधी जी का सर्वोच्च योगदान योगदान है। 30 जनरवी 1948 ई0 को दिल्ली के बिड़ला भवन में प्रार्थना स्थान की ओर जाते हुए नाथूराम गोड़से की गोली का शिकार बन गये।

आधुनिक भारत के इतिहास पर नजर डालें तो महात्मा गाँधी एक निर्विवाद नेता के रूप में प्रतिष्ठित है। गाँधी भारत के उन बिरले व्यक्तित्वों में से हैं एक हैं जिनके विचार और जीवन गाथा को वैश्विक स्तर पर सम्मान के साथ स्वीकार किया जाता है। उन्होंने अपना जीवन एक वकील के रूप में आरंभ किया और उसके पश्चात अपने जीवन के प्रथम वयस्क 20 वर्ष दक्षिण अफ्रीका में दक्षिण अफ्रीकी सरकार की रंगभेद नीति के विरुद्ध लड़ाई लड़कर व्यतीत किए। 1915 में भारत वापस आने के पश्चात ही वे भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ गए और 1920 तक आते–आते उन्होंने इस राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व करना आरंभ कर दिया। भारत की स्वतंत्रता तक वे भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के सबसे प्रमुख राजनेता के रूप में स्थापित रहे। उन्होंने राजनीति में एक नए प्रकार की जीवन शैली, नेतृत्व की कला, नए राजनीतिक साधनों एवं मूल्यों को स्थापित किया। जिसके कारण उनके नेतृत्व में लड़ा गया राष्ट्रीय आंदोलन एक विशेष प्रकार का आंदोलन बना।

पिछले सात दशक से विश्व इतिहास में गाँधी द्वारा स्थापित नई राजनीतिक मान्यताओं, साधनों एवं विचारों को महत्वपूर्ण माना जाता है और विश्व के कई स्थानों पर उनके विचारों पर आधारित सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन का प्रयास किया गया है। गाँधी को अपने जीवन काल में ही 'महात्मा' और राष्ट्रपिता की संज्ञा दी गई तथा उनके द्वारा प्रचलित वेशभूषा विशेषकर खादी का पहनावा आज भी भारतीय राजनीति का सबसे महत्वपूर्ण प्रतीक माना जाता है। गाँधी के विचार को भारत की राष्ट्रीय शिक्षा के पाठ्यक्रमों में शामिल किया गया और यह भारत के शिक्षा के सभी स्तरों पर किसी न किसी रूप में पढ़ाया जाता है।

गाँधी जी के विचार लगभग सभी महत्वपूर्ण विषयों पर प्राप्त होते हैं जिसमें उन्होंने प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास किया है। निश्चय ही हमें गर्व है कि गाँधी जैसा व्यक्तित्व भारत देश की पावन भूमि पर जन्मा । महात्मा गाँधी भारत ही नहीं विश्व के उन महापुरुषों में से एक थे जो चिंतन एवं कर्म दोनों में समान रूप से सक्रिय थे। गाँधी के विचार, उनकी जीवनशैली भारतीय परंपरा के नवीन संस्करण के समान है। जिन्होंने प्रचलित परंपराओं का निर्वहन करते हुए उसमें नवीनता का पुट भरा। गाँधी ने अपने जीवन में सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शारीरिक श्रम, सर्वधर्म समभाव, नम्रता आदि मानवीय गुणों को धारण किया और महान बने। गुरु रविंद्र नाथ टैगोर ने उन्हें 'महात्मा' की उपाधि दी। गांधीजी ने इन बातों को धारण करके अपने जीवन को उदार और महान बनाया। सही मायने में गाँधी जी का जीवन ही उनका संदेश है। इसी क्रम में उनका यह विचार था कि यदि व्यक्ति का जीवन शुद्ध होगा तो वह साधनों का पवित्रतम उपयोग करके साध्य को प्राप्त कर सकता है।

आन्दोलन एक बहुआयामी, प्रगतिशील परिवर्तन के लिये होता है। आन्दोलन का एक संगठन होता है, एक नेतृत्व, विचाराधारा जो अधिक से अधिक लोगों के अनुकूल लगे, कार्यक्रम एवं कार्य प्रणाली होती है, जनाधार होता है। इसी प्रकार से गाँधी जी के द्वारा प्रमुख तीन राष्ट्रव्यापी आन्दोलन किये गये –

1– असहयोग आन्दोलन।
2– सविनय अवज्ञा आन्दोलन।
3– भारत छोडो आन्दोलन।

* शोधार्थी, इतिहास विभाग, एस0आर0के0 (पी0जी0) कॉलेज, फिरोजाबाद।
Email id- atulprakash62@gmail.com, Mob.- No. - 7017342802
** शोध निर्देशक, प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, एस0आर0के0 (पी0जी0) कॉलेज, फिरोजाबाद।

जनपद एक प्रशासनिक इकाई होती है। जनपद को प्रशासनिक सुविधा के लिये तहसीलों में विभाजित किया जाता है। फिरोजाबाद जनपद को 5 तहसीलों में बांटा गया है – 1. फिरोजाबाद 2. शिकोहाबाद, 3. जसराना, 4. टूण्डला एवं 5. सिरसागंज। वर्तमान फिरोजाबाद जनपद की स्थापना 05–02–1989 को हुई ।

ऐतिहासिक रूप से फिरोजाबाद जिस समय स्थापित हुआ उस समय क्या यह भाग जिस पर फिरोजाबाद नगर बसा हुआ है सर्वथा जन विहीन था या यहाँ पर कोई आबादी भी थी, यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है। यह विषय केवल अनुमान तथा कल्पना का है जिसके आधार पर निष्कर्ष लगाया जा सकता है । फिरोजाबाद जिस स्थान पर बसा है उस स्थान के सरकारी कागजों की देखने से ज्ञात होता है कि जमीन जायदाद सम्बन्धी कागजों में फिरोजाबाद नाम का कोई स्थान नहीं है। यह नगर मुख्यतः 7 गांवों की भूमि पर बसा है। ये गांव रसूलपुर, मुहम्मदपुर गजलमपुर, सुखमलपुर निजामाबाद, दतौजी, अकबराबाद, प्रेमपुर रैपुरा तथा मिलिक खां जहांपुर।

आज इन गांवों को ढूँढना कठिन है किन्तु कुछ गांव इस वास्तविक नामों से आज भी विद्यमान है। शायद फिरोजाबाद के संस्थापक ने दतौजी गांव की भूमि पर अपनी छावनी डाली और अपराधी तत्वों का दमन प्रारम्भ किया । चन्दवार, आसफाबाद आदि फिरोजाबाद के निकटवर्ती स्थानों के निवासियों ने छावनी के निकट अधिक सुरक्षा समझ लोगों ने यहाँ वसना प्रारम्भ कर दिया होगा और फिर यहां बाजार हाट प्रारम्भ हो गये होंगे। इसी प्रकार फिरोजाबाद कालान्तर में बसा होगा, पर इस स्थान पर 1596 ई0 तक चन्द्रवार को ही प्रमुखता प्राप्त रही है। और फिरोजाबाद को चन्द्रवार परगने के अन्तर्गत माना जाता था । बहुत दिनों तक फिरोजाबाद की अपेक्षा चन्द्रवार अधिक सम्पन्न व्यापारिक केन्द्र बना रहा तथा इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। शायद चन्द्रवार के अधिक सम्पन्न होने के कारण जैन तीर्थ के रूप में चन्द्रवार की प्रसिद्धि तथा प्राचीन चौहान राजवंश की राजधानी का वहाँ होना था। जैन कवि ब्रह्मगुलाल ने भी सम्राट जहाँगीर के शासन काल में चन्द्रवार के राजा कीर्ति सन्धु का अपने ग्रन्थों में उल्लेख किया है।

फिरोजाबाद प्रारम्भ काल में एक बस्ती फिर कस्बा, शनेः शनेः एक शहर और अब तेजी से महानगर जैसा स्वरूप धारण करता जा रहा है। कई गांवों की भूमि को आत्मसात करके यथा दक्षिण में दतौजी यमुना नदी, पूर्व में पेमेश्वर, रसूलपुर आसफाबाद, उत्तर में मुहम्मदपुर, गजमलपुर, सुखमलपुर निजामाबाद, टापा तथा पश्चिम में हिमाँयुपुर, रैना, लालऊ इत्यादि को पार करती हुई इसकी औद्योगिक सीमाएँ पश्चिम में राजा का ताल तथा पूर्व में मक्खनपुर तक फैली हुई है।

स्वतंत्रता की लड़ाई में फिरोजाबाद का एक प्रमुख स्थान है। यहां के लोगों ने अकेले तथा समूहों में स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी है तथा अनेक कीर्तिमान स्थापित किये हैं, तथा इनमें बहुत से स्वतत्रंता सेनानी ऐसे भी है जो ज्यादा प्रसिद्धि नही पा सकें यानि उपेक्षित रहें, तथा ऐसे लोग उपेक्षित व्यक्तित्व कहलाते है।

फिरोजाबाद नगर में 19 वीं शताब्दी तक कांग्रेस की स्थापना नहीं हुयी थी जो स्वतंत्रता की लड़ाई की एक प्रमुख पार्टी थी तथा यह संगठित कार्यक्रमों द्वारा अंग्रेजों को भारत की भूमि से खदेड़ने का प्रयास कर रही थी । बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में जब यहां के कुछ नवयुवक आगरा उच्च शिक्षा के उद्देश्य से गये तो वहां उनमें राष्ट्रीयता की भावना विकसित हुयी तथा इनमें से प्रमुख लोग है– श्री पं0 श्यामलाल, श्री माधुरी प्रसाद तथा श्री रघुवर दयाल गुवरेले इसके बाद इन्हीं लोगों ने अपने कुछ अन्य स्थानीय मित्रों की सहायता से यहाँ काग्रेंस की नींव डाली। 1921 में इस संगठन की शक्ति और बढ़ी तथा इसमें डॉ0 लक्ष्मी दत्त जी, ज्योतीप्रसाद जी, लाला गोपीनाथ आदि ने अपना सक्रिय सहयोग देना प्रारम्भ कर दिया । पं0 रामचन्द्र पालीवाल जो आगे चलकर पूरी तहसील के स्वतंत्रता संग्राम के अग्रणीय नेता बन गये इसी समय कांग्रेस में सम्मिलित हुये। यहाँ पर काँग्रेस संगठन के प्रथम सभापति डा0 लक्ष्मी दत्त जी हुये, परन्तु दो वर्ष बाद ही उन्होंने काँग्रेस छोड़ दी । महात्मा गाँधी ने जब राष्ट्र की राजनीति की बागडोर अपने हाथों में ली तब उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये सत्याग्रह का नवीन अस्त्र देश को दिया उस समय इन नवीन कार्यक्रमों में यहां के सेवाभावी युवकों में राष्ट्रीय विचारधारा का विकास किया इससे लोगों में देश भक्ति की भावना उत्पन्न हुयी। यहां के जागरुक तथा देश भक्त लोग महात्मागाँधी के सत्याग्रह कार्यक्रम को सफल बनाने, झण्डा फहराने तथा विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करने के लिये उन पर धरना देने आदि के कार्यक्रमों को अपनाने लगे तथा गाँधी के प्रथम राष्ट्रव्यापी असहयोग आन्दोलन से ही भाग लेने लगें।

स्वतंत्रता संग्राम के सम्बन्ध में अत्यन्त तीव्र आन्दोलन 1930 में चला जब नमक सत्याग्रह का कार्यक्रम पूज्य बापू ने देश के सामने रखा। नमक सत्याग्रह के सम्बन्ध में फिरोजाबाद जिले में अनेक

गिरफ्तारियां हुयी। इन गिरफ्तारियों में बिना किसी भय एवं आतंक के कई व्यक्ति जेल गये। इसके उपरान्त लगान बन्दी आन्दोलन में भी यहां से कई लोग जत्थे बनाकर आगरा गये तथा वहाँ अपने आप को गिरफ्तार करवाया।

फिरोजाबाद तहसील के ग्रामीण अंचल भी स्वतन्त्रता आन्दोलन की लपट से अपने को पृथक नहीं रख सका। ग्रामीण क्षेत्र का दौरा आगरा के कृष्णचन्द्र पालीवाल सदैव किया करते थे। आपके ओजस्वी एवं भाव भरे भाषणो से ग्रामीण जन प्रभावित होकर स्वतंत्रता संग्राम में कांग्रेस का तन मन धन से साथ देने के लिये प्रतिज्ञ हो गये। अनेक आदमी विभिन्न गाँवों से स्वतंत्रता आन्दोलन में सहर्ष जेल गये। तहसील के उत्तरी क्षेत्र में कई कार्यकर्ताओं ने राष्ट्रीय आन्दोलन में तन, मन, धन से भाग लिया । इनमें श्री मुंशीलाल गोस्वामी का नाम प्रमुख है जो अपने लेख तथा गीतों के माध्यम से जन मानस में देश प्रेम की भावना भरते थे । इन्होंने अपने ग्राम्य गीतों, राष्ट्रीय गीतों, होली तथा ढोला (गीत का एक स्थानीय तरीका) के द्वारा गाँव में घूम–घूम कर राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार किया । सार्वजनिक सभाओं का आयोजन करके कभी पं0 रामचन्द्र पालीवाल भाषण देते तो कभी श्रीकृष्ण दत्त पालीवाल, इन सभी के साथ राष्ट्रीय गीत गाने वाले चलते थे जिससे ग्रामीण क्षेत्र में अभूतपूर्व जागृति हुई। राष्ट्रीय गीत गाने वालों का कौशल इस प्रकार का था कि वे परतंत्रता का ऐसा चित्रण खींचते थे कि लोग आत्मविभोर हो जाते तथा स्वतंत्रता के जनान्दोलन में भाग लेने के लिये बाध्य हो जाते थे। मुंशी लाल गोस्वामी जब गिरफ्तार हुए तो इस क्षेत्र की जनता अत्यधिक असंतुष्ट हो गई और सत्याग्रह आन्दोलन का बिगुल और भी तेजी से बज उठा ।

नगरीय क्षेत्र में स्वतंत्रता आन्दोलन में पं0 रामचन्द्र पालीवाल का साथ सर्वश्री अख्तर हुसैन साहब अंसारी, बांके लाल जी श्रोतीय, मोतीलाल जी वैद्य आदि ने पूर्ण सहयोग दिया। उस समय इन लोगों ने नगर में कई नेता बनाये तथा उन्हें स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने के लिये प्रेरित किया। श्री भगवान जी सेवक जो जनपद की कांग्रेस में अपना स्थान रखते थे वे नगर तथा जिला दोनों समिति के पदाधिकारी रहे थे उनमें भाषण की अभूतपूर्ण शक्ति थी । आपके प्रयत्न से कई व्यक्ति कांग्रेस में आये और नेता बने। आन्दोलन में सक्रिय सहयोग देकर जेल जाने वाले नगर के व्यक्तियों में निम्नलिखित प्रमुख है।

1– श्री भगवान सेवक 2– श्री हेमराज पालीवाल 3– श्री लाल गोपीनाथ जी
4– श्री लाला ज्योति प्रसाद 5– श्री लाला राधारमन 6– श्री मोर मुकुट बादशाह
7– श्री केदारनाथ सिंह 8– श्री श्याम लाल जी आदि ।

जब आन्दोलन ने जोर पकड़ा और बहुत से लोग जेल गये तब बाहर रहने काँग्रेसी नेताओं में चार व्यक्ति यहाँ जन आन्दोलन चलाने के लिये कार्यक्रम बनाते थे और उन्हें क्रियान्वित करते थे। ये चार व्यक्ति पं0 रामचन्द्र पालीवाल, पं0 श्याम लाल, डॉ0 जीवाराम और लाला गुरुदयाल सिंह थे । इन चारों व्यक्तियों ने अपने–अपने जिम्मेदारी से काम बाँटे। पं0 रामचन्द्र पालीवाल जेल जाकर सत्याग्रहियों की सूचना लेते थे। डॉ0 जीवाराम जेल गये व्यक्तियों के परिवारजनों की देखभाल करते थे तथा उन्हें आर्थिक सहायता के साथ–साथ अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मदद करते थे। पं0 श्यामलाल का स्वास्थ्य ठीक नहीं था अतः वह जेल नहीं जा सकते थे इसलिये वे जेल यात्रियों को कानूनी सलाह दिया करते थे। लाला गुरुदयाल सिंह का कार्य धन संग्रह करना था। रात को रोज ठीक आठ बजे डॉ0 जीवाराम के यहाँ इनकी बैठक होती थी और परस्पर विचार विमर्श के उपरान्त कार्यक्रम बनता था। प्रातः उठकर प्रत्येक सदस्य अपनी ड्यूटी पूरी करने में लग जाता था। बहुत दिनों तक इन लोगों का यह कार्यक्रम चलता रहा तथा इससे स्वतंत्रता आन्दोलन में ढिलाई नहीं आने पायी।

नमक सत्याग्रह, लगान बन्दी आन्दोलन एवं अन्य पिकेटिंग आदि की ही भाँति नगर में झण्डा सत्याग्रह भी एक प्रसिद्ध राजनैतिक घटना है। झण्डा सत्याग्रह की घटना यह बताई जाती है कि श्री द्वारिकाधीश के मन्दिर पर कुछ लोग राष्ट्रीय तिरंगा फहराना चाहते थे। मन्दिर के मालिक सेठ कन्हैयालाल जी झण्डा नहीं फहरने देना चाहते थे । इस पर मन्दिर पर धरना देने के उद्देश्य से यहाँ के हजारों नर–नारियों एवं बच्चों तक एकत्रित हुए तथा उन्होंने धरना भी प्रारम्भ कर दिया। इस धरने में भाग लेने आगरा से भी महिलाओं का जत्था आया था काफी गिरफ्तारियां हुई पर सत्याग्रह बन्द नहीं हुआ तब अंत में सेठ जी ने झण्डा फहराने की अनुमति दे दी । आगरा में कोतवाली पर भी एक घटना आयोजत की गयी थी। इन धरने वाली घटनाओं ने यहां राष्ट्रीय जागृति फैलाने में अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य किया। आगरे वाली घटना पहले हुई थी तथा उसी से प्रेरित होकर फिरोजाबाद की घटना का कार्यक्रम बना था ।

जब व्यक्तिगत सत्याग्रह का आन्दोलन छिड़ा उस समय कुछ लोगों को तो पहले ही गिरफ्तार कर लिया गया और कुछ लोग जैसे धनवल सिंह जैन, बनवारी लाल कुलश्रेष्ठ आदि सत्याग्रह करके जेल गये व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय भी इस नगर तथा तहसील ने अपनी जेलयात्रा को कायम रखा और कई आदमी और स्त्रियाँ जेल भी गई। इस प्रकार इस तहसील की जनता ने अपने पराधीनता की बेड़ी को काटने मैं अद्‌भुत साहस और उत्साह का परिचय दिया।

फिरोजाबाद का देहाती क्षेत्र भी स्वतंत्रता संग्राम में पीछे नहीं रहा। सन् 1930 की 6 अप्रैल को जब महात्मा गान्धी ने सत्याग्रह का विगुल बजाया तो सर्वप्रथम पं0 रामचन्द्र पालीवाल तिरंगा झण्डा लेकर एक जरथे के साथ गाँव प्रचार के लिये निकल पड़े। उन्होने गांव–गांव घूमकर सभाओं की और लोगों को सत्याग्रह का केवल महत्व ही नहीं समझाया वरन उन्हें स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने के लिये उकसाया भी। इस जत्थे का स्थान–स्थान पर जोरों से स्वागत हुआ ।

लगान बन्दी आन्दोलन के समय लोकगढ़ी और दतावली ने बहुत बड़ा मोर्चा लिया । लगान वसूली में तहसीलदार का बायकाट किया गया जिससे गांव दतावली दमन का शिकार हुआ । 1930 के आन्दोलन में गांव में प्रचार करने के लिये नगर फिरोजाबाद से पं0 रामचन्द्र पालीवाल, सोमराज पालीवाल, श्री गुरुदयाल सिंह, डॉ0 जीवाराम शर्मा, डॉ प्यारे लाल आदि जाते थे । इनके प्रचार का परिणाम ही था कि सैकड़ों स्वयं सेवक भर्ती हुऐ तथा बड़ी मात्रा में नर नारियों ने जेल की यात्रा की ।

23 मार्च 1931 को क्रान्तिकारी वीर भगत सिंह राजगुरु और सुखदेव की फाँसी की चर्चा जंगल में बाग की तरह घर में फैल गई। नगर तथा देहात दोनों क्षेत्रों में हड़ताले हुयी।

फिरोजाबाद नगर में खादी भंडार की स्थापना की गई इससे नगर में बड़ी जागृति फैली। उस समय खादी राष्ट्रीय कॉंग्रेस की वर्दी समझी जाती थी। इससे हजारों नर नारी केवल शहर के ही नहीं वरन गॉव के भी सभी इस भंडार से खादी खरीद कर पहनते थे।

सरकार ने कांग्रेस को गैर कानूनी घोषित कर दिया । इस समय स्वतंत्रता संग्राम के संचालन के लिये गुप्त रूप से एक संगठन की छावनी खोली गई जिसका नाम ही गुप्त संगठन रखा गया। यह गुप्त संगठन गाँव आतीपुर में खोला गया था गाँव में प्रचार करने के लिये देहाती कार्यकर्ता प0 झम्मन लाल आतीपुर, भोजराज सिंह, आतीपुर, पं0 भूपसिंह शर्मा रूपसपुर, चौ0 गन्दर्भ सिंह गुदाँऊ, श्री रामवरन गुप्ता इटौरा, श्री तुलसीराम कायथा, श्री रामकृष्ण गुप्ता, कोलामई, श्री रामदास गुप्ता ऊँधनी आदि ने प्रचार करके देहाती जनता में बहुत जागृति की इस प्रकार गांव–गांव में घर–घर जाकर सत्याग्रह का मंत्र फूँका गया।

1942 की क्रान्ति में फिरोजाबाद नगर तथा तहसील ने स्वराज्य की लड़ाई में बहुत भारी भाग लिया। इस समय भी सैकड़ों पर नारी जेल गये इस आन्दोलन में बच्चों तक ने भाग लिया तथा वे जेल गये। नगर से जेल जाने वालों की संख्या उस समय 40 थी तथा देहात से जेल जाने वालों की संख्या लगभग 125 थी।

इस आन्दोलन में नगर तथा देहात के कुछ वीर सपूत सपत्नी जेल गये तथा आजादी की लड़ाई में सपरिवार जेल गये। इनमें रामचन्द्र पालीवाल, डॉ0 प्यारेलाल गहलौत, सोमराज पालीवाल, उमाशंकर वैद्य, मुंशीलाल गोस्वामी प्रमुख हैं।''

1942 की क्रान्ति की दो घटना है। इस जनपद में उल्लेखनीय है प्रथम के अन्तर्गत हिरनगांव स्टेशन जलाया गया और दूसरे के अन्तर्गत गुंदा0 गांव से पुलिस को खदेड़ा गया। जब गाँधी जी 1942 को गिरफ्तार कर लिये गये तब उन्होंने देश को संदेश दिया था। ''करो या मरो'' इस संदेश से प्रभावित होकर पं0 सिंह शर्मा गांव रूपसपुर के कुछ क्रान्तिकारी साथियों को साथ लेकर हिरनगाँव स्टेशन गये इनके साथ कुछ ग्रामीण भी हो लिये आप लोगों ने स्टेशन मास्टर तथा अन्य कर्मचारियों को बाहर निकाल कर स्टेशन में आग लगा दी इसके बाद स्टेशन के आस–पास के तार काट डाले गये । इस आरोप में पुलिस ने भूप सिंह शर्मा को गिरफ्तार कर लिया। भूप सिंह शर्मा उग्रवादी नेता थे।

उपरोक्त घटना के बाद जेल से छूट कर आने पर भूप सिंह शर्मा अपने साथियों के साथ गुंदाऊ की यमुना नदी के किनारे वाली धर्मशाला में मीटिंग रखी इस मीटिंग में तहसील फिरोजाबाद के खजाने को लूटने की योजना बनानी थी तथा साथ ही उससे लगे थाने पर भी कब्जा करना था। पुलिस को इस गुप्त सभा की सूचना मिल गयी । तहसीलदार थानेदार तथा सिपाही लोग मीटिंग स्थल पर पहुंच गये । इनके साथ दूर के गाँव के लाइसेंसदार ग्रामीण भी अपने हथियारों के साथ थे। जब वे लोग पहुंचे तो पं0 भूप सिंह शर्मा भाषण दे रहे थे। थानेदार ने घटना स्थल पर ही भूप सिंह शर्मा तथा चौ0 गन्दर्भ सिंह को गिरफ्तार कर लिया, क्षेत्रीय जनता जो वहा उपस्थित थी उसने पुलिस की इस कार्यवाही का जमकर विरोध किया और उन्हें

ललकारते हुये कहा कि आप अपनी खैरियत चाहते है तो हमारे इन नेताओं को छोड़ दीजिये। परिस्थिति काबू से बाहर देखकर पुलिस ने उन्हें छोड़ दिया तथा तहसीलदार सहित चुपचाप वापस आ गई। इस घटना की रिपोर्ट जब जिलाधीश महोदय को मिली तो उन्होंने इसे ब्रिटिश सरकार का अपमान समझा। उसने पं0 भूप सिंह शर्मा और चौ0 गन्दर्भ सिंह को पकड़ने के लिये हैदराबाद रेजीमेंट के 1000 सैनिक तथा 300 पुलिस के सिपाई भेजे। इस सेना तथा पुलिस के जवानों ने रूपसपुर तथा गुदाँऊ दोनों गाँवों को घेर लिया तथा पं0 भूप सिंह शर्मा, चौ0 गन्दर्भ सिंह तथा तेजपाल सिंह निषाद आदि को गिरफ्तार कर लिया। मुकद्दमा न चलने के कारण अन्य साथी तो छोड़ दिये गये परन्तु शर्मा जी तथा चौधरी साहब को धारा 26 भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत जेल भेज दिया गया। चौधरी साहब दो वर्ष बाद तथा पं0 भूपसिंह शर्मा 3½ वर्ष बाद जेल से छूटे।

**जनपद फिरोजाबाद के उपेक्षित स्वतंत्रता सेनानियों का संक्षिप्त परिचय**–

**अकबर सिंह आत्मज श्री मुन्नीलाल** – सिरसागंज, फिरोजाबाद नमक सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान सन् 1930 में 1 मास कैद की सजा पायी ।

**अतराजसिंह आत्मज श्री बिहारीसिंह अहीर** – गुड़ा (अलीपुर) शिकोहाबाद फिरोजाबाद, सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान सन् 1932 में 6 मास कड़ी कैद की सजा पायी गयी ।

**अनन्तराम आत्मज श्री भोले** – ग्राम नूरपुर, थाना शिकोहाबाद, फिरोजाबाद व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान सन् 1941 में 8 मास कड़ी कैद तथा 200 रुपया जुर्माने की सजा पायी ।

**अनोखेलाल चतुर्वेदी आत्मज श्री करनसिंह** – उखरेंड, सिरसागंज, फिरोजाबाद। ''भारत छोड़ो'' आन्दोलन के दौरान सन् 1942 में 2 मास कैद की सजी पायी ।

**अम्बिकाप्रसाद आत्मज श्री ज्वालाप्रसाद** – शिकोहाबाद, फिरोजाबाद नमक सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान सन् 1930 में 3 मास कैद की सजा पायी।

**अमरनाथ आत्मज श्री प्यारेलाल** – मक्खनपुर, शिकोहाबाद, फिरोजाबाद। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान सन् 1933 में 2 वर्ष कैद की सजा पायी ।

**आनन्दीप्रसाद आत्मज श्री अयोध्याप्रसाद** – शिकोहाबाद, फिरोजाबाद। ''भारत छोड़ों' आन्दोलन के दौरान सन् 1942 में कैदी की सजा पायी ।

**इन्द्रजीत आत्मज श्री प्रेमराज लोध** – सिरसागंज, फिरोजाबाद । नमक सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान सन् 1930 में 1 मास कैद की सजा पायी ।

**ऊदलसिंह आत्मज श्री मेवाराम** – ग्राम नगला गुलाल, थाना सिरसागंज, फिरोजाबाद। व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान सन् 1941 में 6 मास कड़ी कैद की सजा पायी ।

**उमरावसिंह आत्मज श्री नारायनसिंह** – दुगुलपुर, एका, फिरोजाबाद। नमक सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान सन 1930 में 1 मास कैद की सजा पायी।

**ओंकारताथ आत्मज श्री पन्नालाल** – शिकोहाबाद, फिरोजाबाद। ''भारत छोड़ो'' आन्दोलन के दौरान सन 1943 में नजर बन्द रहे ।

**कन्हईसिंह आत्मज श्री चेतसिंह**– चिरहुली, थाना सिरसागंज, फिरोजाबाद । ''भारत छोड़ो आन्दोलन दौरान सन् 1952 में 4 वर्ष कड़ी कैद तथा 25 रुपया जुर्माने की सजा पायी ।

**कन्हैयालाल आत्मज श्री दयाराम** – शिकोहाबाद, फिरोजाबाद। नमक सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान 1930 में 1 मास कैंद की सजा पायी।

**किशनलाल आत्मज श्री भूदेव** – शिकोहाबाद, फिरोजाबाद । ताड़ वृक्ष काटने के दौरान 6 मास कड़ी कैद तथा 30 रुपया जुर्माने की सजा पायी ।

**किशोरीदेव आत्मज श्री उमेदराम** – ग्राम एवं थाना एका, फिरोजाबाद। ''भारत छोड़ो'' आन्दोलन के दौरान सन 1942 में पकड़ गये और 13 मास नजर बन्द रहे ।

**कोकाराम आत्मज श्री जसराज** – फतेहपुरा फरिहा, तहसील जसराना, फिरोजाबाद। नमक सत्याग्रह जन आन्दोलन के दौरान सन 1930 में 1 मास कैद की सजा पायी ।

**ख्यालीराम आत्मज श्री कुंजविहारीलाल** – ग्राम सिकन्दरपुर, थाना शिकोहाबाद, फिरोजाबाद । 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दौरान सन 1942 में 2 मास कड़ी कैद की सजा पायी ।

**गजराजसिंह आत्मज श्री गयारामसिंह** – सिरसागंज, फिरोजाबाद। "भारत छोड़ो'' आन्दोलन के दौरान सन 1942 में 1 मास कैद और 50 रुपया जुर्माने की सजा पायी ।

**गयाप्रसाद आत्मज श्री अनेकसिंह** – ग्राम नगला गुलाल, सिरसागंज, फिरोजाबाद। व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान सन 1941 में 6 मास कड़ी कैद और 50 रुपया जुर्माने की सजा पायी ।

**गुरुदत्त आत्मज श्री देव वर्मा** – शिकोहाबाद, फिरोजाबाद। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान सन 1932 में 6 मास कैद और 25 रुपया जुर्माने की सजा पायी।

**गोकुल आत्मज श्री मनसाराम** – नगला सिरसागंज, फिरोजाबाद। ''भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान सन 1942 में 50 रुपया जुर्माना या 1 मास कैद की सजा पायी ।

**गोपी आत्मज श्री अमरसिंह** – ग्राम सलेमपुर, थाना जसराना, मैनपुरी। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान सन 1932 में मास कैद की सजा पायी। इसी आन्दोलन के दौरान सन् 1933 में भी 1 वर्ष कैद की सजा पायी ।

**गोवर्धन** – जहमतपुर, शिकोहाबाद, फिरोजाबाद। नमक सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान सन् 1930 में 1 मास कैद की सजा पायी ।

**गोविन्द वर्मा आजाद आत्मज श्री अच्छेलाल** – शिकोहाबाद, फिरोजाबाद । नमक सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान सन 1930 में 6 मास कैद और 25 रुपया जुर्माने की सजा पायी ।

**चिरौंजीलाल आत्मज श्री किशोरीलाल** – भदारा, थाना सिरसागंज, फिरोजाबाद। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दौरान सन् 1942 में 1 मास नजरबन्द रहे ।

**चिरौंजी सुनार** – हरगनपुर, थाना शिकोहाबाद, फिरोजाबाद । सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान सन् 1932 में 6 मास कड़ी कैद की सजा पायी ।

**छक्कूलाल आत्मज श्री चाहतराम** – सिरसागंज, फिरोजाबाद। नमक सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान सन् 1930 में 2 मास कैद और 52 रुपया जुर्माने या जुर्माना न देने पर 1 मास कैद की सजा पायी।

**छेदालाल आत्मज श्री टीकाराम** – शिकोहाबाद, फिरोजाबाद । व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान सन् 1941 में 1 वर्ष कैद और 50 रुपया जुर्माने की सजा पायी। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दौरान सन् 1942 में 2 मास नजरबन्द रहे ।

**छोटेलाल आत्मज श्री दत्तामल** – दुर्गापुर, सिरसागंज, फिरोजाबाद। व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान सन् 1941 में 6 मास कड़ी कैद तथा 1000 रुपया जुर्माने की सजा पायी ।

**छोटेलाल कायस्थ आत्मज श्री श्यामलाल** – ग्राम अलीपुर, थाना एका, फिरोजाबाद। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान सन् 1931 में 6 मास कैद और 50 रुपया जुर्माने की सजा पायी ।

**जगतकिशोर आत्मज श्री गंधर्व** – सिरसागंज, फिरोजाबाद। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दौरान सन् 1942 में भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत 2 वर्ष कड़ी कैद और 25 रुपया जुर्माने की सजा पायी ।

**जगन्नाथ आत्मज श्री पातीराम**– सिरसागंज, शिकोहाबाद, फिरोजाबाद। 'भारत छोड़ो' अन्दोलन के दौरान सन् 1942 में 4 मास कैद की सजा पायी ।

**जगरूप आत्मज श्री भूपसिंह** – ग्राम फरहाम, एका मैनपुरी । सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान सन् 1931 में 6 मास कैद तथा 30 रुपया जुर्माने की सजा पायी ।

**जसराम सिंह आत्मज श्री गोविन्दलाल** – शिकोहाबाद, फिरोजाबाद । 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दौरान 1943 में कैद की सजा पायी।

**जाहरसिंह आत्मज श्री पिताम्बर सिंह** – नवादा, एका, फिरोजाबाद सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान सन् 1931 मे 1 माह कैद और 30 रुपया जुर्माना की सजा पायी।

**जैसीराम आत्मज श्री सुखराम** – दिवामयी शिकोहाबाद, फिरोजाबाद । 'भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान सन् 1942 मे 50 रुपया जुर्माने या 1 मास कैद की सजा पायी ।

**जोर सिंह आत्मज श्री लाल सिंह** – ग्राम सनहा, शिकोहाबाद, फिरोजाबाद । सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान सन् 1931 में 6 माह कैद और 30 रुपया जुर्माने को सजा पायो ।

**झम्मनलाल आत्मज श्री सीताराम** – ग्राम हाथवन्त फरिहा, फिरोजाबाद। व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान सन् 1941 में 6 मास कैद और 50 रुपये जुर्माने की सजा पायो । 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के सन् 1942 मे 10 माह तक नजरबन्द रहे ।

**टेकचन्द उर्फ तेजपाल सिंह आत्मज श्री करनसिंह** – ग्राम व थाना सिरसागंज, फिरोजाबाद । व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान सन् 1941 में 6 मास कैद तथा 200 रुपया जुर्माने की सजा पायी । 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दौरान सन् 1942 में पकड़े गये और लगभग 13 मास नजरबन्द रहे ।

**टीकाराम आत्मज श्रो भीकमसिंह** – भुरगदा, थाना फरिहा, फिरोजाबाद। व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान सन् 1941 में 6 मास कैद तथा 75 रुपये जुर्माने की सजा पायी 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के दौरान सन् 1942 में भी सजा पायी ।

**तिलक सिंह आत्मज श्री बंशीराम** – सूरजपुर दुजमई, सिरसागंज, फिरोजाबाद। नमक सत्याग्रह के दौरान सन् 1930 में 1 मास कैद की सजा पायी।

**तुलसीराम पालीवाल आत्मज श्री ईश्वरदयाल** – बापन, थाना सिरसागंज, फिरोजाबाद। नमक सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान सन् 1930 में जेल यात्रा की ।

**तुलसीराम पालीवाल आत्मज श्री छदामीलाल** – (ग्राम गढ़ी, थाना सिरसागंज, फिरोजाबाद। भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान सन् 1942 में कैद की सजा पाई।

**तेजपाल आत्मज श्री छदामीलाल** – ग्राम लालई, शिकोहाबाद, फिरोजाबाद । व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान सन् 1941 में 6 मास कैद और 100 रुपया जुर्माने की सजा पायी ।

**तेजसिंह आत्मज श्री रामशरण सिंह** – बड़गांव नगला राकन, थाना जसराना, फिरोजाबाद। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान सन् 1930 में 1 मास कैद की सजा पायी।

**तेजसिंह आत्मज श्री अमर** – ग्राम बैजुआ खास, सिरसागंज, फिरोजाबाद। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान सन् 1932 में 6 मास की कैद की सजा पायी ।

**डा0 दुर्गसिंह आत्मज श्री बीरीसिंह** – ग्राम व थाना शिकोहाबाद, फिरोजाबाद। व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन सन् 1941 में 3 मास कड़ी कैद तथा 100 रुपया जुर्माना की सजा पायी। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दौरान लगभग 14 मास नजरबन्द रहे ।

**देवीदीन आत्मज श्री बुद्धादीन** – ग्राम एवं थाना शिकोहाबाद, फिरोजाबाद। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दौरान सन् 1944 में 50 रुपया जुर्माना या 1 मास कड़ी कैद की सजा पायी।

किसी घटना के बाद वहाँ के समाज पर जो सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिवर्तन होता है वह उसका प्रभाव कहलाता है जैसे कि गाँधी के आन्दोलनों में जनपद फिरोजाबाद के कई लोगों ने बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, परन्तु वे लोग बहुत अधिक प्रसिद्धि नहीं पा सकें। यानि उपेक्षित रहे, परन्तु इन्होने लोगों में बेपनाह आत्मविश्वास और आत्मसम्मान जगाया, तथा फिरोजाबाद जनपद के लोगों में एक नये जोश और उत्साह को भरा।

## संदर्भ ग्रन्थ सूची

डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ द यूनाईटेड प्रोविन्स ऑफ आगरा व फिरोजाबाद, 1921
अमेरिकन स्टेटिस्टिकल एवं ट्रेवल, 1980
टाइम्स ऑफ इंडिया डायरेक्टरी एण्ड बुक्स, 1983
डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ मथुरा।
पेरलल रिसर्च बुलेटिन, 1981
ज्योत्स्ना, डी0पी0वी0 कॉलेज पत्रिका।
कार्मिक पत्रिका (अमृत) पत्रिका पी0डी0 जैन कॉलेज, फिरोजाबाद।
कार्मिक पत्रिका (फिरोजाबाद बैंक) 1971
पत्रिका वैवारिकी भाग–6 बैक–2, 1990
कार्यालय – ग्लास इंडस्ट्रीज।
कार्यालय – बैंग्लिस एसोसिएशन।
कार्यालय – नगर निगम, फिरोजाबाद।
जिला उद्योग केन्द्र
तिलक भवन – सब्जी मंडी
जिला सूचना केन्द्र कार्यालय
ए0जी0टी0 कार्यालय
तहसील कार्यालय
आशीर्वाद लाल श्रीवास्तव – भारत का इतिहास, 1969
डॉ0 तारा चन्द्र – भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास।
रतन लाल बंसल – चंद्रवार तथा फिरोजाबाद।

शिव प्रभु शर्मा – फिरोजाबाद नगर के कुछ गणमान्य।
भारत में सामाजिक परिवर्तन – रवीन्द्रनाथ मुखर्जी
चंद्र बिपिन – आजादी के बाद का भारत हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 2004
सरकार सुमित – आधुनिक भारत (1885–1947) राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली इलाहवाद पटना, 2006
बी0एल0 ग्रोवर – आधुनिक भारत का इतिहास एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0 रामनगर नई दिल्ली, 2005
फिरोजाबाद तहसील से प्राप्त जानकारी के आधार पर रतन लाल बंसल– चन्द्रवार तथा फिरोजाबाद का प्राचीन इतिहास
प्रो0 चिन्तामणी शुक्ल, आगरा जनपद–राजनैतिक इतिहास
क्षेत्र सर्वेक्षण
वार्षिक पत्रिका (फिरोजाबाद अंक–1971) पी0डी0 जैन कॉलेज, फिरोजाबाद

# गुप्त काल में आभूषण, वस्त्र और परिधान

डॉ. नेहा श्रीवास्तव*

**शोध सार**

*गुप्तकाल में अलंकारो के विविध प्रकार और रूप विकसित हो गए थे। समकालीन साहित्य और कला में स्त्री और के पुरूष दोनों के अनेक प्रकार के आभूषणों का चित्रण हुआ है। परिधान की भाँति गुप्तकालीन आभूषण भी कला और साहित्य में समान रूप से अभिव्यक्त हुए हैं। अलंकार प्रियता गुप्तकालीन समाज में दर्शित होता है। गुप्तकालीन अभिलेखों तथा सिक्को से भी विविध प्रकार आभूषणो का ज्ञान प्राप्त होता है।*

**मुख्य शब्द**– आभूषण, अलंकार, रत्याभूषण, सौन्दर्य

**प्रस्तावना**

प्राचीन काल से ही व्यक्ति सौन्दर्य प्रेमी रहा है। स्त्री और पुरूष अपने शरीर को सुन्दर और आकर्षक बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के वस्त्रों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के अलंकारों का प्रयोग करते रहे है। मनुष्य की सौन्दर्य प्रियता, प्राग्वैदिक काल से ही रही है। परन्तु गुप्तकाल तक आकर अलंकारों के विविध प्रकार और रूप विकसित हो गये थे। समकालीन साहित्य और कला में स्त्री पुरूष दोनों के अनेक प्रकार के आभूषणों का चित्रण हुआ है। परिधान की भांति गुप्तकालीन आभूषण भी कला और साहित्य में समान रूप से अभिव्यक्त हुए है।

आभूषण शरीर को सुन्दर और रमणीय बनाने के निमित्त आभूषण का प्रयोग गुप्तकाल में भी प्रचुर परिमाण में किया जाता था। स्त्री तथा पुरूष दोनों ही आभूषण के शौकीन होते थे। आजकल के राजाओं की भांति गुप्त सेश भी आभूषणों के कम प्रेमी नहीं थे। साहित्य में आभूषण आभरण, भूषण, अलंकार, मंडन उसी परिमाण में परिगणित हुए है जिस परिमाण में समकालीन मूर्तियों और चित्रों में वे प्रदर्शित हुए है। दोनों को संयुक्त आधार पर उपस्थित करने पर गुप्तकालीन आभूषणों का संभर इस प्रकार होगा– मस्तक पर चूड़ामणि, रत्नजाल अथवा मुक्ताजाल और राजाओं के सन्दर्भ में किरीट–मुकुट। किरीट मुकुट बोधिसत्व और विष्णु के मस्तकाभरण भी थे। कानों में नर–नारियों दोनों के कर्णफूल, कुण्डल अथवा मणिकुण्डल झूमते या कसे होते थे। गले में निष्कहार, जो निष्क सिक्कों से गुहा होता था।

**वर–वधू के परिधानः–**

वर और वधू के विवाह के अवसर के अपने–अपने परिधान होते थे। जिन्हे 'विवाहनेपथ्य' कहते थे। वर के दुकुल अथवा दोनों वस्त्र विवाह के अवसर पर भी प्रायः वे ही होते थे जो साधारण उपयोग के थे, अन्तर मात्र इतना था कि विवाह के अवसर वाले परिधान रूई के बने न होकर रेशम के बने होते थे। जिसमें चमक थी तथा उन पर हंसों की आकृतियाँ छपी या बुनी होती थी । वधू के वैवाहिक वस्त्र भारत के विविध प्रान्तों में विविध प्रकार के प्रचलित थे। 'मालविकाग्निमित्र' में परिग्राजिका से मालविका को विदर्भ देश के परिधान से सजाने की प्रार्थना की गयी है। वह परिधान ऐसा था, जो रेशम का बना होता था और शरीर पर बहुत नीचे तक नहीं लटकता था, कुछ उटंगा रहता था। वधू के रेशमी जोड़े पर भी वर की भांति हंसों की आकृतियाँ छपी होती थी।

**सन्यासियों के वस्त्रः–**

गुप्तकालीन मूर्तियों से प्रकट होता है कि बौद्ध भिक्षु परम्परागत सन्यासियों के 'त्रिधीवर' धारण करते थे। इनमें से ऊपर का वस्त्र 'उत्तरासंग' कहलाता था, नीचे का वस्त्र 'अन्तवर्सिक' और सबसे ऊपर का लहरिया चुन्नटों से सजा 'संघाटी'। ब्राह्मण ऋषियों अथवा साधुओं के वस्त्रों में एक कौपीन (लंगोट) दूसरा तहमत की तरह की लुँगी और तीसरा ऊपर डालने वाला टुकड़ा जो श्वेत अथवा गेरूआ होता था। बौद्ध भिक्षुओं के वस्त्र सदा गेरूआ होते थे। आश्रमवासी सम्भवतः वल्कल वस्त्र का उपोग करते थे। का उल्लेख नही किया है। किन्तु शकों के प्रवेश के साथ भारत में वारवाण रानी ढंग का लम्बा कोट और पाजामे या सलवार का प्रचलन हो

* असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, डॉ0 राममनोहर लोहिया अवध वि"वविद्यालय, अयोध्या (उ0प्र0)

गया था और उनका प्रचार गुप्तकाल में था ऐसा गुप्त सम्राटों के छवि के अंकन से ज्ञात होता है। इसका उपयोग कदाचित बहुत ही कम होता रहा होगा इनमें आश्चर्य नहीं, कि वह गुप्त सम्राटों तक ही सीमित रहा हो।

सामान्यतः स्त्री और पुरूष केवल दो वस्त्रों का उपयोग करते थे। एक का प्रयोग निम्न भाग को और दूसरे को ऊपरी भाग को ढकने के लिए किया जाता था और वे दुकुम–युग्म या क्षौम–युग्म कहे जाते थे। पुरूषों के वस्त्र में उपरी रख लिया जाता होगा। उत्तरीय का प्रयोग लोग प्रायः अवसर विशेष अथवा स्नान विशेष पर ही करते थे। अन्यथा शरीर का उपरी भाग अनावृत्त ही रहता था। कटि के नीचे लोग धोती पहनते थे। लोग किस प्रकार धोती पहनते थे, इसके विविध रूप सहज ही गुप्तकालीन सिक्कों पर देखा जा सकता है। उनसे यह भी अनुमान होता है कि राजा और प्रजा के वस्त्र धारण करने के ढंग में कोई अन्तर नहीं था। उस समय सिर के ऊपर पगड़ी बाँधने का भी प्रचलन था। कालिदास ने अलक वेष्ठन और शिरसा वेष्ठनशोभिना शब्दों के माध्यम से उसका उल्लेख किया है। सिक्कों को देखने से ज्ञात होता है कि राजाओं के द्वारा सिर पर विविध प्रकार के मुकुट धारण किये जाते था। कालिदास ने पादुका का उल्लेख किया है, जिससे यह अनुमान होता है कि उस समय जूतों का प्रचलन हो गया था और उसका प्रयोग धनी वर्ग किया करता था। परन्तु यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह चमड़े का होता था अथवा अन्य किसी वस्तु का।

**वस्त्र और परिधानः–**

प्राचीन काल से ही व्यक्ति सौन्दर्य प्रेमी रहा है। स्त्री तथा पुरूष अपने शरीर सुन्दर और आकर्षक बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग करते रहे है। मनुष्य की यह सौन्दर्य प्रियता प्राग्वैदिक काल से ही रही है। परन्तु गुप्तकाल तक आकर वस्त्रों के विविध प्रकार और रूप विकसित हो गये थे। कालिदास के वर्णनों से अनुमान होता है कि गुप्तकाल मैं सिले वस्त्रों का प्रयोग नही होता था। उन्होनें स्पष्ट रूप से किसी वस्त्र प्राचीन काल से ही व्यक्ति सौन्दर्य प्रेमी रहा है। स्त्री और पुरूष अपने शरीर को सुन्दर और आकर्षक बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के वस्त्रों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के अलंकारों का प्रयोग करते रहे है। मनुष्य की यह सौन्दर्य प्रियता, प्राग्वैदिक काल से ही रही है। परन्तु गुप्तकाल तक आकर अलंकारों के विविध प्रकार और रूप विकसित हो गये थे। समकालीन साहित्य और कला में स्त्री पुरूष दोनों के अनेक प्रकार के आभूषणों का चित्रण हुआ है। परिधान की भांति गुप्तकालीन आभूषण भी कला और साहित्य में समान रूप से अभिव्यक्त हुए है।

आभूषण शरीर को सुन्दर और रमणीय बनाने के निमित्त आभूषण का प्रयोग गुप्तकाल में भी प्रचुर परिमाण में किया जाता था। स्त्री तथा पुरूष दोनों ही आभूषण के शौकीन होते थे। आजकल के राजाओं की भांति गुप्त नरेश भी आभूषणों के कम प्रेमी नहीं थे। साहित्य में आभूषण आभरण, भूषण, अलंकार, मंडन उसी परिमाण में परिगणित हुए है जिस परिमाण में समकालीन मूर्तियों और चित्रों में वे प्रदर्शित हुए है। दोनों आधार पर उपस्थित करने पर गुप्तकालीन आभूषणों का संभर इस प्रकार होगा–मस्तक पर चूड़ामणि, रत्नजाल अथवा मुक्ताजाल और राजाओं के सन्दर्भ में किरीट–मुकुट। किरीट मुकुट बोधिसत्व और विष्णु के मस्तकाभरण भी थे। कानों में नर–नारियों दोनों के कर्णफूल, कुण्डल अथवा मणिकुण्डल झूमते या कसे होते थे। गले में निष्कहार, जो निष्क सिक्कों से गुहा होता था।

**सन्दर्भ**–

यू0एन0 राय, गुप्त सम्राट एवं उनका काल, पृ० 382
रामायण, 2.6.28
ऋतुसंहार, 5.8
मोतीचन्द्र, भारतीय वेशभूषा, पृ0 387
वही, पृ0 206
हर्षचरित– स्तनमध्य गात्रिका ग्रन्थि।
कामसूत्र–एवं शंखवलय वा धारयेत।

# उत्तर प्रदेश के बाँदा जनपद का भूमि उपयोग प्रतिरूपः एक अवलोकन

**डॉ. विकास यादव***

**सारांश** –

*सर्वविदित है कि हमारा देश एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या की आजीविका का साधन कृषि है। भारत में कृषि, देश की अर्थव्यवस्था और करोड़ों लोगों की आजीविका का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो न केवल खाद्य सुरक्षा प्रदान करती है, बल्कि ग्रामीण रोजगार को भी बढ़ावा देती है।*

*यहाँ भूमि को एक अजैविक संसाधन माना गया है, जो समाज के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक कार्य को संपन्न करती है। हमें परिवर्तनशील भूमि उपयोग प्रतिरूप का अध्ययन कर भूमि की गुणवत्ता तथा क्षमता इत्यादि के बारे में विस्तृत जानकारी ज्ञात हो सकती है। किसी भी क्षेत्र का भूमि उपयोग प्रतिरूप श्रम, पूंजी, संस्थागत कारकों एवं अन्य विभिन्न संसाधनों पर आधारित होता है और उस क्षेत्र के भूमि उपयोग प्रतिरूप का आंकलन कर वहाँ के आर्थिक विकास को भी सुगमता से समझा जा सकता है। यदि कृषि पर निर्भर रहने वाली जनसंख्या में वृद्धि होती है तो यह जनसंख्या निश्चित रूप से अपनी जरूरतों की पूर्ति हेतु चारागाह भूमि एवं वनों को काटकर उनका उपयोग करेगी जिससे पारिस्थितिकीय असंतुलन की समस्या उभरने का खतरा सदैव बना रहता है। अतः भूमि उपयोग का अध्ययन नितान्त आवश्यक है।*

**संकेत–शब्दः** कृषि, भूमि उपयोग, उत्पादन, फसल प्रतिरूप।

**प्रस्तावना** –

''बाँदा'' जनपद उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र का सबसे पूर्वी जिला है। जिले का विभाजन बांदा जिले, तहसील और ब्लॉक–वार को विभाजित करके किया गया है। इस जनपद में वर्तमान में पाँच तहसीलें तथा आठ विकासखंड है। बाँदा जनपद में ग्रामीण जनसंख्या की बहुलता पायी जाती है। यहाँ की अधिकांश जनसंख्या के कृषि कार्य में संलग्न होने के बावजूद भी यहाँ कृषि का समुचित विकास नहीं हो सका है।

**भूमि उपयोग प्रतिरूप** –

भूमि एक आधारभूत प्राकृतिक संसाधन है जिसपर सभी आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्य सम्पन्न होते हैं। भूमि के प्रमुख संघटकों में मृदा एवं वनस्पति है। सभी जैविक समुदाय के जीवन का मूल आधार भूमि ही है। भूमि उपयोग से तात्पर्य मानव द्वारा धरातल के कई रूपों (मरू भूमि, खदान, पर्वत, पठार, यातायात, आवास, कृषि, पशुपालन एवं खनिज इत्यादि) में उपयोग किये जाने वाले समस्त अवयवों से है। भूमि का प्रमुख उपयोग फसलों के उत्पादन के लिये किया जाता है।

जब मनुष्य द्वारा अपनी विभिन्न जरूरतों की पूर्ति हेतु भूमि का उपयोग संसाधन के रूप में किया जाता है, तो उसे भूमि उपयोग प्रतिरूप कहते हैं एवं जब भूमि उपयोग प्रतिरूप का कई समयान्तरालों में अध्ययन किया जाता है तो उसे परिवर्तनशील भूमि उपयोग प्रतिरूप कहते है।

**अध्ययन का उद्देश्य** –

बाँदा जनपद के पिछले 20 वर्षों तक के परिवर्तनशील भूमि उपयोग प्रतिरूप का अध्ययन करना एवं इस क्षेत्र की कृषि भूमि में हो रहे परिवर्तनों को सामने लाना और संबंधित समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना।

**आंकड़ों का स्रोत एवं विधितंत्र** –

प्रस्तुत शोध पत्र में द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक आंकड़ों को जिला सांख्यिकीय पत्रिका (वर्ष 2002–2022) प्रकाशित रिर्पोट से एकत्र किया गया है।

**अध्ययन क्षेत्र** –

ऐसी मान्यता है कि प्राचीन काल में बामदेव ऋषि यहाँ निवास करते थें और इन्हीं के नाम पर इस क्षेत्र का नाम बाँदा पड़ा। यह बुंदेलखंड का सबसे पूर्वी जिला है। जिले का विभाजन बांदा जिले, तहसील और ब्लॉक–वार को विभाजित करके किया गया है। बांदा के वर्तमान जिले में पांच तहसील जैसे बांदा, नरैनी,

* भूगोल विभाग, समता पी.जी. कॉलेज, गाजीपुर सम्बद्ध वी.बी.एस. पूर्वांचल यूनिवर्सिटी, जौनपुर

बबेरू, पैलानी और अतर्रा और आठ ब्लॉक बडोखर–खुर्द, जसपुरा, तिंदवारी, नरैनी, महुआ, बबेरू, बिसंडा और कमासिन शामिल हैं।

**जनसंख्या व क्षेत्रफल –**

इस जनपद की कुल जनसंख्या 17,99,410 है जिसमें पुरूष 9,65,876 एवं महिला 8,33,534 हैं। कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 4413 वर्ग किमी. एवं कृषि भूमि 3,48,259 हेक्टेयर है। इसका अक्षांशीय विस्तार 24°53'–25°55' उत्तरीय अक्षांश व देशांतरीय विस्तार 80°07'–81°34' पूर्वी देशान्तर है।

**स्थलरूप –**

यह क्षेत्र बुंदेलखण्ड के पठारी क्षेत्र में होने के कारण यहां की जमीन काफी उबड़–खाबड़ है जिले में बड़े पैमाने पर अनियमित तराई वाले क्षेत्र हैं, जिनमें ज्यादातर निचले इलाकों के साथ–साथ बारिश के दौरान पानी से नीचे होने वाली चट्टानों के बहिर्वाह होता हैं।

**नदियाँ –**

जनपद के मुख्य नदियों में यमुना, केन, बाघिन नदी प्रमुख हैं। बाघिन नदी जिले के दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व को प्रवाहित होती है। बाघिन इस जिले की दूसरी महत्वपूर्ण नदी है। पन्ना जिले के कोहड़ी के पास एक पहाड़ी से निकलकर, यह मसौनी भरतपुर गाँव (नरैनी) में बांदा जिले में प्रवेश करती है। बाघिन, रंज की प्रमुख सहायक नदी, गुरहा कलां (तहसील नरैनी) में शामिल होती है, लेकिन आगे पूर्व में दक्षिण से कई छोटी सहायक नदियाँ मिलती हैं, जैसे मदार, बरार, करही, बाणगंगा और बरुआ। बरुआ को नहरों के माध्यम से कुछ सिंचाई प्रदान करने के लिए एक बांध बनाया गया है।

**पहाड़ियाँ –**

जिले की पहाड़ियों में विंध्यन पठार का एक भाग शामिल है विंध्याचल श्रेणी के रूप में विंध्य के उत्तरी पार्श्व–भाग, तहसील मऊ के पूर्व में यमुना के पास से शुरू होते हैं। यह यमुना से दक्षिण–पश्चिम दिशा में धीरे–धीरे ऊपर की ओर बढ़ता है, हालांकि इसकी समुद्र तल से 150 मीटर है। यह जिले को नरैनी तहसील के दक्षिण–पूर्वी भाग में गोधरामपुर में फिर से प्रकट होती है। जिले की सीमा से लगती इस बिंदु से पश्चिम की ओर कालिंजर पहाड़ियाँ हैं।

**ढलान –**

जिले का सामान्य ढलान दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व की ओर है, साथ ही पूर्व में उल्लिखित बघेन नदी के अपवाहक्रम के साथ यह जिले को दो भागों में विभाजित करता है। एक पठार कहलाता है, मऊ और करवी तहसीलों के दक्षिण में विंध्यन पठार पर स्थित है (वर्तमान में चित्रकूट जिला के रूप में जाना जाता है), अन्य जलोढ़ की तराई (वर्तमान में बांदा जिले के रूप में जाना जाता है) है।

**झीलें –**

जिले में कोई भी झील मौजूद नहीं है। फिर भी कुछ काफी बड़े गड्ढे हैं जो हमेशा पानी को बनाए रखते हैं। कई टैंक हैं, जिनमें से कुछ काफी आकार के हैं, जैसे कि तहसील बबेरू में खार पर ये अकाल राहत कार्यों के रूप में पानी के भंडारण के लिए खुदाई की गई हैं।

**मानसून एवं मिट्टी –**

यहाँ मानसूनी जलवायु के कारण ही पर्णपाती वनों की उपस्थिति देखी जा सकती है। जिसमें कटीली झाड़ियां, घास एवं झाड़–झंखार आदि प्रमुख है। इस जनपद में मुख्यतया काली एवं लाल मिट्टी पायी जाती है।

**फसलें –**

बाँदा जनपद में जीविका का सबसे प्रमुख स्रोत कृषि है। फसलों में गेहूँ, चावल एवं सब्जियाँ प्रमुख हैं। यहाँ की लगभग 82 प्रतिशत जनसंख्या कृषि से ही अपना जीवन–यापन करती हैं। यहाँ पर मुख्यतया खरीफ, रबी एवं जायद की फसलों का उत्पादन किया जाता है।

**भूमि उपयोग प्रतिरूप के आंकड़े का विश्लेषणात्मक अध्ययन –**

भूमि उपयोग प्रतिरूप से तात्पर्य किसी क्षेत्र में भूमि के विभिन्न प्रयोजनों के लिए उपयोग की प्रणाली से है। यह क्षेत्र की भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय परिस्थितियों पर निर्भर करता है। किसी भी जिले के भूमि उपयोग प्रतिरूप के अध्ययन के लिए उस जिले के कुछ समयान्तराल पर दो आंकड़ों के तुलनात्मक

अध्ययन से किया जा सकता है। अतः बांदा जिले के भूमि उपयोग प्रतिरूप के स्पष्ट परिलक्षण हेतु बीस वर्ष के अन्तराल का तुलनात्मक अध्ययन निम्नवत है :

तालिका

| भूमि उपयोग प्रतिरूप | वर्ष 2002 (%) | वर्ष 2022 (%) | परिवर्तनशील भूमि उपयोग प्रतिरूप (%) |
|---|---|---|---|
| वन | 1.10 | 1.18 | (+0.08) |
| कृष्य बेकार भूमि | 2.67 | 2.30 | (–0.37) |
| परती भूमि | 11.65 | 6.05 | (–5.60) |
| ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि | 2.65 | 2.54 | (–0.11) |
| कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि | 6.63 | 10.21 | (+3.58) |
| चारागाह भूमि | 0.08 | 0.09 | (+0.01) |
| उद्यानों वृक्षों एवं झाड़ियों का क्षेत्र | 0.27 | 0.20 | (–0.07) |
| शुद्ध बोया गया क्षेत्र | 74.90 | 77.39 | (+2.51) |

*स्रोत : जिला सांख्यिकीय पत्रिका (2002–2022)*

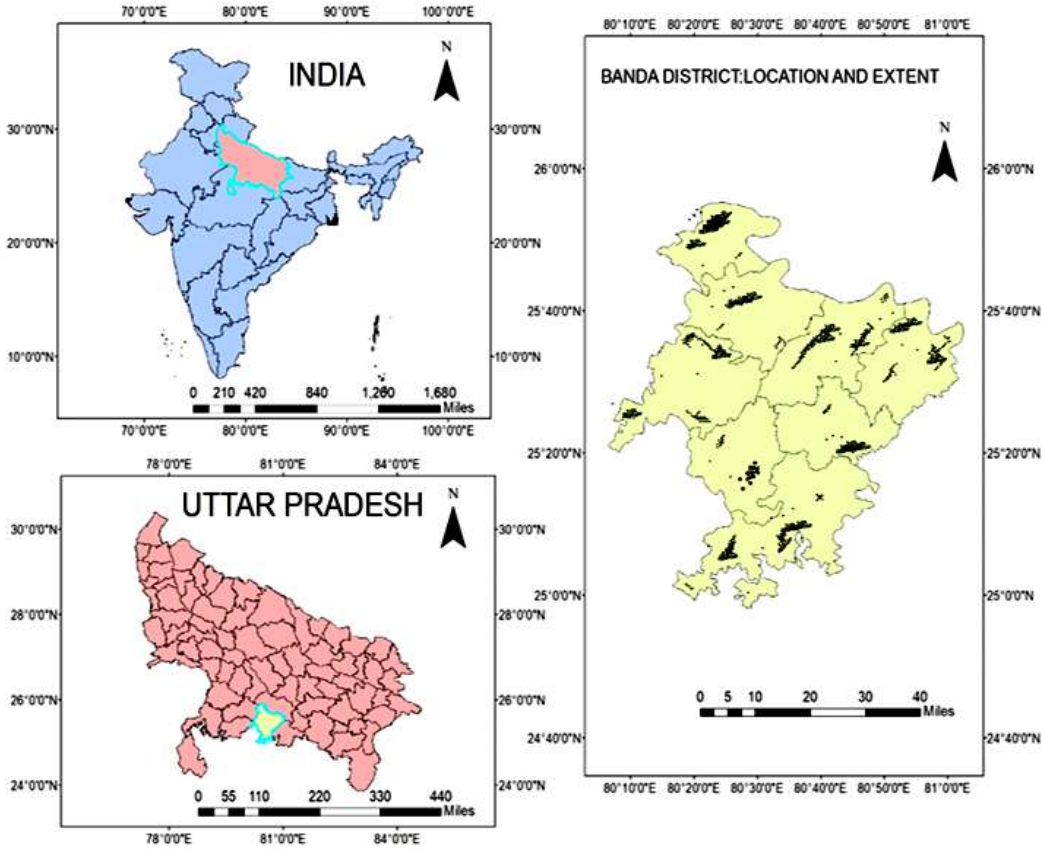


*बांदा जनपद भूमि उपयोग परिवर्तन*

**वन क्षेत्र** – वन एक नवीकरणीय प्राकृतिक संपदा है। यह आर्थिक तथा पर्यावरणीय दोनों ही दृष्टि से अत्यधिक उपयोगी है। भारत में 33 प्रतिशत भूभाग पर वनों का होना आवश्यक माना गया है, परंतु उपर्युक्त आंकड़ों से स्पष्ट परिलक्षित है कि बांदा जिले में वन क्षेत्र कुछ बढ़ा हुआ परिलक्षित है।

**कृष्य बेकार भूमि** – कृष्य बेकार भूमि से तात्पर्य ऐसी भूमि से है जिसमें वर्तमान समय तथा पिछले पाँच वर्षों या उससे अधिक समय से कृषि नहीं की गई जैसे झाड़ियां व जंगल वाली भूमियाँ परंतु भविष्य में वैज्ञानिक अनुसंधान एवं भूमि सुधार कार्यक्रमों द्वारा उसे कृषि योग्य बनाया जा सकता है। अध्ययन क्षेत्र बांदा जिले के कृष्य बेकार भूमि के बीस वर्ष के अंतराल के अध्ययन से पता चलता है कि बांदा जिले का कृष्य बेकार भूमि भी निरंतर घटता जा रहा है।

**परती भूमि** – परती भूमि को सामान्यता दो भागों में विभक्त किया जाता है। प्रथम वर्तमान परती भूमि ,द्वितीय अन्य परती भूमि। वर्तमान परती भूमि उसे कहते हैं जिसे वर्तमान वर्ष में परती रखा जाता है। उदाहरण के तौर पर यदि किसी पौधशाला वाले क्षेत्र को उसी वर्ष में पुनः फसल के लिए उपयोग नहीं किया जाता है तो उसे वर्तमान परती भूमि कहा जाता है। द्वितीय अन्य परती भूमि उसे कहते हैं जिस भूमि में अस्थायी रूप से एक वर्ष से अधिक परंतु पाँच वर्ष से कम अवधि तक कृषि नहीं की जाती है। उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि बांदा जिले की परती भूमि निरन्तर वर्ष–प्रतिवर्ष तेजी से घट रही है।

**ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि** – ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि से तात्पर्य ऐसी भूमि से है जो वर्तमान समय में कृषि योग्य नहीं है। परंतु भविष्य में वैज्ञानिक अनुसंधान ,नवीन कृषि यंत्रों एवं सिंचाई के साधनों का प्रयोग कर भूमि को कृषिगत बनाया जा सकता है। उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि बांदा जिले की ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि घटती परिलक्षित हो रही है।

**कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि** – कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग में लायी गई भूमि के अंतर्गत भवनों, रेल मार्गो, सड़कों, नदियों तथा नहरों आदि कार्यों में लगी भूमि को सम्मिलित किया जाता है। उपर्युक्त तालिका में इस भूमि का परिमाप बढ़ता हुआ स्पष्ट परिलक्षित है।

**चारागाह भूमि** – चारागाह भूमि के अंतर्गत समस्त चराई वाली भूमियों को सम्मिलित किया जाता है जिसमें घास स्थली भूमियाँ प्रमुख होती हैं। उपर्युक्त तालिका के अनुसार बांदा जिले में चारागाह भूमि में निरन्तर परन्तु अल्प विस्तार देख जा सकता है।

**उद्यानों वृक्षों एवं झाड़ियों का क्षेत्र** – उद्यानों वृक्षों एवं झाड़ियों का क्षेत्र के अंतर्गत वह कृषि योग्य भूमि सम्मिलित है जो शुद्ध बोए गए क्षेत्र के अंतर्गत सम्मिलित नहीं की जाती जैसे ईंधन वाली लकड़ी, घासें, बाँस और छोटे पेड़–पौधे इत्यादि। आंकड़ों के अनुसार बांदा जिले में उद्यानों, वृक्षों एवं झाड़ियों का क्षेत्र निरन्तर कम हुआ परिलक्षित हो रहा है।

**शुद्ध बोया गया क्षेत्र** – शुद्ध बोया गया क्षेत्र के अंतर्गत फसल उत्पादन को सम्मिलित किया जाता है। इस क्षेत्र के द्वारा ही मनुष्य को खाद्यान्नों की प्राप्ति होती है तथा यह क्षेत्र उपजाऊ मिट्टी वाला क्षेत्र होता है जो उस क्षेत्र के आर्थिक विकास का सूचक होता है। उपर्युक्त तालिका में बांदा जिले में शुद्ध बोया गया क्षेत्र में पिछले बीस वर्षों में बढ़ाव तो परिलक्षित है परन्तु बढ़ाव का प्रतिशत अत्यन्त अल्प है। अतः यह कहा जा सकता है कि बांदा जिले के आर्थिक विकास में भी जो तेजी अपेक्षित है वह अभी नहीं मिल पा रहा है।

**निष्कर्ष** –

बांदा जिले का भूमि उपयोग प्रतिरूप मुख्यतः कृषि पर केंद्रित है, जिसमें अधिकांश भूमि कृषि कार्यों के लिए उपयोग की जाती है। वन क्षेत्र अपेक्षाकृत कम है, और गैर–कृषि उपयोग की भूमि भी सीमित है। सतत विकास और पर्यावरण संतुलन के लिए वन क्षेत्र के संरक्षण और गैर–कृषि भूमि के योजनाबद्ध विकास पर ध्यान देना आवश्यक है। बीस वर्षों के अंतराल पर बाँदा जनपद के परिवर्तनशील भूमि उपयोग प्रतिरूप का अध्ययन सारणी एवं सांख्यिकीय विधियों के माध्यम से किया गया और यह पाया कि बांदा जिला भी बढ़ती जनसंख्या का दबाव निरन्तर झेल रहा है। यहाँ वर्ष–प्रतिवर्ष निरन्तर बढ़ती जनसंख्या के दबाव के कारण कृषि भूमि क्षेत्र में भी निरंतर परिवर्तन लाजमी है। जनपद के वन क्षेत्र, कृष्य बेकार भूमि, परती भूमि, ऊसर एवं

कृषि के अयोग्य भूमि का कम होना एवं उद्यानों वृक्षों एवं झाड़ियों के क्षेत्र में लगातार कमी स्पष्ट परिलक्षित है। इन सबके विपरीत कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि, चारागाह भूमि तथा शुद्ध बोया गया क्षेत्र में वृद्धि भी देखी जा सकती है।

बाँदा जनपद में निरन्तर कृषि भूमि सुधार कार्यक्रम भी उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा भलीभाँति चलाया जा रहा है। जिसमें मुख्य रूप से प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना, किसान क्रेडिट कार्ड योजना, राष्ट्रीय बागवानी मिशन एवं मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना सम्मिलित है। इन योजनाओं के क्रियान्वयन से बांदा जिले के कृषि सम्बन्धित समस्याओं का समाधान सरकार भलीभाँति कर रही है परन्तु भविष्य में इसमें अभी और भी सुधार की आवश्यकता है। बाँदा जिले में भूमि उपयोग का सुधार जल संरक्षण, कृषि तकनीकों में सुधार, वृक्षारोपण और सतत विकास नीतियों के माध्यम से किया जा सकता है। सरकार, किसान और समाज के समन्वय से भूमि का संतुलित और दीर्घकालिक उपयोग संभव होगा।

**सुझाव –**

बांदा जिले में भूमि उपयोग मुख्य रूप से कृषि पर केंद्रित है, लेकिन जलवायु परिवर्तन, मिट्टी का क्षरण और जल संकट जैसी समस्याएँ इसकी उत्पादकता को प्रभावित कर रही हैं। इसे अधिक प्रभावी और संतुलित बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैंः

कृषि भूमि के लिए सुधार
बहु–फसली प्रणाली अपनाना
मृदा संरक्षण और जैविक खेती
माइक्रो–इरीगेशन (ड्रिप और स्प्रिंकलर सिस्टम)
वन क्षेत्र का विस्तार
सामुदायिक वानिकी और सामाजिक वनीकरण
नदी किनारे वृक्षारोपण
बंजर और अनुपयोगी भूमि का पुनर्विकास
खनन प्रभावित भूमि का पुनर्वास
चरागाह भूमि का विकास
जल संसाधनों का प्रबंधन
जल संचयन और संरक्षण
झीलों और तालाबों का पुनर्विकास

## संदर्भ सूची –

यादव विकास, (2018) जनपद जौनपुर में भूमि उपयोग : एक भौगोलिक समीक्षा, राष्ट्रीय भौगोलिक पत्रिका, बी.एच.यू. वाराणसी, वर्ष 9 अंक 2 पृष्ठ 206–214।

चौहान, बी.सी., (2016) कृषि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त एवं भारत में कृषि विकास, पृष्ठ–240

राजपूत, बी. एस., (2006) बुन्देलखण्ड क्षेत्र में जनसंख्या, खाद्य संसाधन एवं कृषि विकास का स्तर, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, अंक 36, संख्या 1, जून 2006

घोष, संदीप, (2009) कृषि कारोबार और निर्यात समस्याएँ और चुनौतियाँ, पृष्ठ–314

मौर्य, एस. डी., (2008) संसाधन भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन इलाहाबाद, पृष्ठ–305

अस्थाना, श्रीप्रकाश, (2017) कृषि भूमि उपयोग नियोजन, पृष्ठ–184

श्रीवास्तव, मानसी, (2008) सिंचित भूमि एवं सिंचाई गहनता का परिवर्तनशील प्रतिरूप, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, अंक 38, संख्या 1, मार्च, 2008

सिंह, जगदीश एवं सिंह, काशीनाथ, (2003) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर, पृष्ठ–266

तिवारी, आर.सी. एवं सिंह, बी.एन., (2010) कृषि भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन इलाहाबाद, पृष्ठ–76

पाण्डेय, रविन्द्र कुमार, (2004) पूर्वी उत्तर प्रदेश में कृषि आधारित उद्योगों का विकास स्तर, समस्यायें एवं नियोजन, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, अंक 33, संख्या–1, जून, 2004
प्रसाद, राजेन्द्र, (2002) परिवर्तित भूमि उपयोग और भूमि अध्ययन की समस्याएँ, पृष्ठ–60–70
रा०ए०थी० मैपिंग संगठन
जिला सांख्यिकीय पत्रिका, 2002–22
भूलेख अधिकारी, बाँदा
अर्थ एवं संख्या प्रभाग, बाँदा

# भक्तिकाव्य का आध्यात्मिक वैशिष्टय व स्वरूप

रत्ना*
डॉ. प्रिया मुखर्जी**

ईश्वर की भक्ति से ओतप्रोत होकर भक्त ईश्वर की ही नहीं वह मानव धर्म के मूलभूत तत्त्वों को भी अंगीकार करता है और वह मनुष्य की सर्वमंगलकारी मनुष्यता की उस उदात्त भूमि तक जाने के लिए पथ प्रदर्शित करता है ईश्वर जनित भक्ति करने से राग–द्वेष समित, हो जाते है और सत्य शील त्याग विनय स्नेह करुणा आदि का प्रकाश चारो तरफ व्याप्त हो जाता है।

ईश्वर की भक्ति भारतीय जीवनादर्शो की व्याख्या करने वाली और उसकी सर्वोत्कृष्टता को प्रतिपादित करके उसके प्रति स्पृहा जगाने वाली अभूतपूर्व घटना है भक्ति सत्य, शील, नियम और धर्म के गूढ़ रहस्यों को भी उद्‌घाटित करती है भक्त जैसे–जैसे भक्ति के शिखर पर पहुंचता जाता है उसका चरित्र उज्ज्वलता के चित्त में अंकित हो जाता है। जो उसके सात्विक अन्तःकरण की पहचान कराता है।

भक्ति से जनसमूह का भी चित्त निर्मल और कोमल हो गया। और मनुष्यता की वह दिव्य ज्योति फूटी, जो व्यक्ति को आत्म–पहचान कराने में समर्थ होती हैं। भक्त कवियों की भक्ति सामाजिक जीवन को स्वच्छ और निश्छल भाव जागृत करती है। जिसके उत्कर्ष से हृदय की मलिनता का नाश होता है। जो मानव व्यवहार को एक नयी दिशा देने वाला है।

भक्ति ही मानव जीवन को सुख–शान्ति का मार्ग सुझाने वाला है तथा मनुष्य को मनुष्योत्तम बनाने वाला है। भक्ति से शील और नियम आत्मपक्ष और लोक पक्ष के समन्वय द्वारा धर्म की रक्षा भक्ति काव्य का गूढ़ रहस्य है। यह धर्म के किसी एक अंग को भी छोड़ कर दिखाने वाला काव्य नहीं है। भक्ति काव्य में लोकधर्म और स्वधर्म का सफल निर्वाह किया गया है।

भक्तिकाव्य शील–स्वभाव सभ्य समाज की सभ्यता और शिष्टता में बहुत कुछ जोड़ने वाला काव्य है वह मानवीय व्यवहार का स्वर्णिम काव्य है। जो भारतीय जनता की साधुता, सरलता, विनम्रता सहृदयता उदारता और हृदय की पवित्रता का अच्छा उदाहरण है।

भक्तिकाव्य में केवल मानवीय व्यवहारों, शील स्वभावों और तरह–तरह के आदर्शो और कर्तव्यों की ही विवेचना और व्यावहारिक प्रतिष्ठा नही हुई बल्कि अवसरानुकूल पारमार्थिक दर्शन की भी अभिव्यक्ति हुई है। भारतीय जीवन–दर्शन की प्रमुख विशेषता है जिस बिन्दु पर पहुंच कर मनुष्य की सारी शक्ति आगे बढ़ने से जवाब देती है, वहाँ से यह भाग्य और ईश्वर के सहारे आगे बढ़ता है या ज्यादा से ज्यादा जीने का सहारा प्राप्त करता है। शोक और व्यथा के सघन क्षणों में उस अदृश्य सत्ता से ही जीवन शक्ति प्राप्त करके भारतीय जीवन–धारा काल के थपेड़ों को सहती हुई आगे बढ़ती रही है। पराधीनता के क्रूरतम कालखण्ड में इसी आस्था ने उसकी अस्मिता की रक्षा की है।

भक्तिकाव्य में कर्म की प्रधानता और ईश्वर की सर्वशक्तिमानता पर ही बल दिया गया है धर्म दर्शन, सभ्यता, सदाचार, प्रेमव्यवहार, आदर्श, कर्तव्य. जीवन–जगत, समाज, राजनीति आदि जाने कितने प्रसंगों पर दार्शनिक ऊँचाई एवं गहराई के साथ विचार–विमर्शपूर्ण व्यावहारिक निदर्शन के साथ मानव–जीवन के कल्याण के लिए धर्म का सार प्रस्तुत किया है।

भक्तिकाव्य में शील, संकोच और समता की पराकाष्ठा अपने सहज नैतिक आचार से सदैव प्रदर्शित किया है। भक्तकवियों ने भक्ति की अथाह समुद्र में प्रीति की अनन्य लहरियों को प्रवाहित करके प्रतीति की मर्यादा स्थापित करने वाले परम भक्त है।

भक्ति काव्य विशाल और महिमामण्डित है, जो सबसे उज्ज्वल, सबसे निर्मल है मानव समाज उस दिव्य प्रभाव से वंचित हो जाता, जिसके उत्कर्ष से हृदय की मलिनता का नाश होता है। जो मानव–व्यवहार को एक नयी

* शोधार्थी, श्री अग्रसेन महिला महाविद्यालय, आजमगढ़ सम्बद्ध वीर बहादुर पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र.
E-mail:- tripathiratna1986@gmail.com, Mob:- 9569952443
** शोध निर्देशिका, श्री अग्रसेन महिला महाविद्यालय, आजमगढ़ सम्बद्ध वीर बहादुर पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर, उ.प्र.

दिशा देने वाला है। उसके मूल में ही निहित है लोकहित जो भारतीय सभ्यता और संस्कृति को वह गरिमा और ऊंचाई भी प्राप्त हो गयी है, जिसके लिए यह संस्कृति समूचे विश्व में अलग से जानी पहचानी जाती है। मानवीय सभ्यता और संस्कृति की तात्विक व्याख्या करने वाला और मानव–जीवन को नयी दिशा एवं गति देने वाला है। भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता रही है। समय–समय पर इस देश में कितनी ही साहित्यिक और सौन्दर्यमूलक विचार–धाराओं का विकास हुआ, जिसमें एक–दूसरे की ग्राहय मान्यताओं को निःसंकोच भाव से ग्रहण किया और साहित्य तथा जीवन में समन्वय स्थापित करने के विराट प्रयत्न किये गये, अनेकता में एकता की स्थापना की गयी।

भारतीय समाजवाद धर्मनिरपेक्षता पर बल देता है, भक्तिकाव्य में भक्तकवियों ने कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास, एवं जायसी, मीरा, रसखान आदि ने भक्ति को जिस रूप में रक्खा है, वह किसी भी साम्प्रदायिक धर्म से अलग एक मानव धर्म का स्वरूप लिए हुए है। भक्ति का तात्पर्य है– ईश्वर के गुणों में रमना और उनका अनुगमन करना। जो हमारे लिए अनुकरणीय है, उनकी उपासना या भक्ति वास्तव में मानव धर्म है। वह एक जीवन दर्शन है जिसे हम आज भी अपनाने के लिए यत्नशील है। भक्तिकाव्य में किसी भी धर्म के प्रति उपेक्षा नहीं की। मानव–हृदय का यह प्रसार ही सच्चे मानव–धर्म का लक्षण है। जिसका व्यावहारिक रूप भक्तिकाव्य में मिलता है।

भक्ति की साधना तभी सिद्धदायिनी होती है जब साधक के द्वारा पूरी श्रद्धा के साथ किया जाए। सत्कर्म के बिना चित्त निर्मल नहीं हो सकता और बिना चित्त निर्मल हुए भक्ति का उदय असम्भव है। भक्ति ही तत्वतः मुक्ति का साधन है। भक्त कवियों ने ज्ञान से युक्त भक्ति को श्रेष्ठ माना है।

भक्ति रागात्मिका वृत्ति है। वह मानव–मन के अनुकूल और सहज ग्राहय है। भक्ति सर्वोपयोगी है। मनुष्य के लिए सबसे सरल व सहज मार्ग है मनुष्य के मुक्ति का साधन भक्ति ही श्रेयस्कर उपाय है। भक्ति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह निर्गुण व सगुण दोनों में समान रूप से मान्य है।

भक्त कवि तुलसीदास तंदाग्रस्त समाज के उद्‌बोधन के लिए उन्होंने अपने पूर्ववर्ती संतों निर्गुणमार्गी संतों की भाँति चेतावनी तथा दार्शनिक तत्व विवेचन का मार्ग न अपना कर लोकग्राहय कथा पद्धति से राम के लोकपावन चरित का आदर्श प्रस्तुत करके दर्शन को जीवन में उतारने का स्तुत्य प्रयास किया। इस माध्यम से अध्यात्म तत्त्व की प्रतिष्ठा हो जाने पर, सारी समस्याएँ हल हो सकती है, और दुःखदारिद्रय से सहज ही छुटकारा पाया जा सकता है। वे रामचरितमानस में लिखते है–

जग मंगल गुन ग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के।।
मंत्र महामनि विषय व्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के।

अत्याचारी शासन से त्रस्त जनता के लिए उनका यह उद्‌घोष धैर्य बंधाने वाला था। आध्यात्मिक आधार के साथ ही सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा के लिए जनता को सर्वस्य अर्पण करने की प्रेरणा दी। कुंठायें, संत्रास, मानसिक द्वन्द्व और दारिद्रय सबका कारण मनुष्य की वैषयिक, वृत्ति है। उसी के नियंत्रण और उदात्ती करण से भौतिक अभावों एवं भयप्रद परिस्थितियों के बीच संतोष एवं सुख का अनुभव अध्यात्म साधना से प्राप्त होती है। किन्तु इसके लिए जो अर्हताएं अपेक्षित है। वे जन सामान्य के पहुंच से बाहर है। इन सारी बातों को ध्यान में रखकर भक्त कवियों ने भक्ति का लोक ग्राहय स्वरूप प्रस्तुत किया।

ईश्वर के प्रति अमृतस्वरूपा परा अनुरक्ति भक्ति है इसमें श्रवण, कीर्तन आदि साधनों का अवलंबन किया जाता है भक्त भगवान की स्मृति अपने हृदय में धारण करता है और अपने हृदय के स्वाभाविक उद्‌गार प्रस्तुत करता है। भक्त कवियों ने शास्त्र का स्थूल अनुकरण नहीं किया है उनके हृदय में जो भाव उठा है, उसके अनुकुल पदों की रचना की है।

सामान्यतः भक्ति का स्वरूप आराध्या कार की अन्तःकरण की वृत्ति कहा गया है फलतः साध्यरूपा भक्ति की चरम सत्ता के चिद्‌हलादमयी स्वभावशक्ति को ही भक्ति बनाया है। भक्तों की रचनाओं में गो में चरमसत्ता का सविशेष रूप सर्वत्र लक्षित होता है। भक्ति को पंचम पुरुषार्थ कहा गया है वह सभी उपधाराओं में विशिष्ट है। वह मनुष्य के परम पावन उज्ज्वल चरित्र का निर्माण करती है। मधुसूदन सरस्वती ने इसे ब्रम्हानन्द के समान बताया है। भक्ति रस में सुख की पूर्णता होने के कारण यह सभी रसो में श्रेष्ठ है –

कान्तादिविषया वा रसाद्यास्तव ने दृशम
रसत्वं पुण्यते पूर्ण सुखास्पर्शित्वकारणात्
परिपूर्णरसा क्षुद्ररसेभ्यो भगवदतिः
खद्योतेभ्य इवादिव्यप्रभेव बलवत्तराः

भक्तिकाल भारतीय आध्यात्मिक चिंतन और साधना में महत्त्वपूर्ण है इस साहित्य के केन्द्र में भक्ति है इसके माध्यम से समग्र राष्ट्र की विविधता को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।

## सन्दर्भ ग्रंथ सूची

कल्याण पत्रिका सन्तवाणी अंक, पृ० 743
राममूर्ति त्रिपाठीः– अयोध्याकाण्ड में भक्ति का स्वरूप
हिंदी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ० 39
गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस बालकाण्ड
भक्ति रसायन पृ० 21, 27, 28

# भारतीय औद्योगिक विकास के प्रतीक डॉ0 श्यामा प्रसाद मुकर्जी

अंजली कुमारी*
डॉ. विजय नारायण सिंह**

श्यामा प्रसाद मुकर्जी का जन्म 06 जुलाई, 1901 को एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनके पिता श्री आशुतोष मुकर्जी (1864–1924) बंगाल के प्रतिष्ठित लोगों में से एक थे। इनके पितामह गंगा प्रसाद कलकत्ता के प्रसिद्ध चिकित्सक थे। इनकी माता का नाम योगमाया देवी था, जो सनातनी परंपरा की धर्म परायण हिंदू महिला थी।

श्यामा प्रसाद को प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए मित्र इंस्टीट्यूट में दाखिला कराया गया। बालक श्यामा प्रसाद प्रतिमा के धनी और मेधावी थे। 1917 में उन्होंने प्रथम् श्रेणी में मैट्रिक की परीक्षा पास की। 1919 में इंटर आर्ट्स में विश्वविद्यालय में प्रथम रहे। 1921 में बी0ए0 अंग्रेजी आनर्स तथा क्षेत्रीय भाषा बंगला की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। इसके परिणामस्वरूप उन्हें 'बंकिम चन्द्र स्वर्ण तथा रजत पदक' प्राप्त हुए। एम0ए0 की परीक्षा में भी वे प्रथम श्रेणी के साथ 1923 में उत्तीर्ण हुए।

सन् 1924 में श्यामा प्रसाद मुकर्जी ने कलकत्ता उच्च न्यायालय में अधिवक्ता के रूप में पंजीकृत हुए। 1926 में वे लिंकन इन में भर्ती होने के लिए इंग्लैंड गये। इंग्लैंड से लौटने पर वे हाईकोर्ट बार में शामिल हो गये। लेकिन उनका कार्यक्षेत्र मुख्यतः शिक्षा और राजनीति रहा। 33 वर्ष की छोटी आयु में वे 1934 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के उप–कुलपति बने और 1938 तक इस पद पर रहे। स्वतंत्रता के पूर्व वे लंबे समय तक बंगाल विधानसभा के सदस्य और कुछ काल के लिए प्रान्त के वित्तमंत्री भी रहे। आगे चलकर 1946 में वे स्वतंत्र भारत का संविधान बनाने के लिए गठित संविधान सभा के सदस्य बने। 1952 में स्वतंत्र भारत के प्रथम चुनाव संपन्न हुए और वे दक्षिण कलकत्ता से लोकसभा में चुनकर आये।

अंतरिम सरकार में अपने दो सालों से थोड़े ज्यादा के छोटे से कार्यकाल में उद्योग एवं आपूर्ति मंत्री के रूप में डॉ. मुखर्जी ने जो कार्य किये, वे बेहद प्रेरणादायक थे। अविभाजित बंगाल के वित्तमंत्री के रूप में उनका अनुभव तथा चीजों पर उनकी असामान्य पकड़ निर्णायक थी। असल में, इस कार्यकाल में उन्हें भारत की औद्योगिक नीति की नींव डालने का एक अवसर मिला तथा आने वाले वर्षों में देश के औद्योगिक विकास की नींव रखी गई। इस दौरान एक ओर शैक्षिक तथा सांस्कृतिक जीवन की क्षति तो हुई, किन्तु दूसरी ओर आर्थिक तथा उद्योग नीति की प्राप्ति भी हुई थी।[1] पूर्व वर्चस्ववादी रूप से कृषि प्रधान देश में औद्योगिकीकरण की समस्याओं की वास्तविक समझ तथा उनकी ठोस बौद्धिक पकड़ उनके साथ थी। वे मानते थे कि भारत के औद्योगिक विकास को क्रूर विदेशी सरकार द्वारा जान बूझकर रोका गया था।

डॉ. मुखर्जी की बौद्धिक प्रखरता, मानसिक दृढ़ता तथा चट्टानी इरादे, उनके प्रति सहज ही सम्मान की भावना जगाते थे और अधिकारियों के बीच सभी वर्गों की तरफ से उन्हें पूरा समर्थन मिलता था। स्वतंत्र भारत के निर्माण वाले अधिकांश वर्षों में औद्योगिक समस्याओं तथा सूत्रबद्ध औद्योगिक नीतियों का संचालन उन्होंने जिस तरह से किया, उसकी प्रशंसा उनके विरोधी भी किया करते थे। औद्योगिक दिशा को लेकर डॉ. मुखर्जी के पास एक स्पष्ट विचार था कि भारत को आगे ले जाने की आवश्यकता थी और वे इस बात से आश्वस्त थे कि भारत जैसे देश ने सिर्फ राजनीतिक आजादी हासिल की थी, श्देश की रक्षा के लिए खासकर उन आवश्यक वस्तुओं में आत्मनिर्भरता आवश्यक है और इसके लिए निजी तथा सरकारी सभी तरह के संसाधनों को संगठित करना प्राथमिक कार्यों में से एक है ताकि उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सहकारी प्रयास किये जा सकें।[2]

डॉ. मुखर्जी द्वारा की गई भारत के औद्योगिक विकास के प्रारूप की स्थापना जैसे महान् योगदान की चर्चा कभी नहीं की गई और न ही इतिहास की पुस्तकों में उन्हें कोई स्थान मिला। स्वतंत्र भारत के प्रथम उद्योग मंत्री के रूप में उन्होंने जो कुछ किया, उसके कुछ विवरण, आंकड़ों, तथा इस क्षेत्र में उनके प्रयास और कुछ विचारों पर दृष्टि डालना दिलचस्प होगा। डॉ. मुखर्जी, उन शुरुआती वर्षों में, भारत के औद्योगिकीकरण में

* शोध छात्रा, एम0 ए0 (इतिहास), NET 2014, इतिहास विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना
** सेवानिवृत सह प्राध्यापक, इतिहास विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

अपनी भूमिका निभाते हुए, समुचित सरकारी नियमन एवं नियंत्रण के अंतर्गत निजी उद्यमों के विकास की पूरी गुंजाइशश के लिए, जो कुछ उत्कृष्टतम संभव विचार हो सकते थे, उन्होंने दिये। वे चाहते थे कि राज्य अपने छोटे संसाधनों का इस्तेमाल उद्योग क्षेत्र के विकास के लिए करे, जिसका विकास निश्चित रूप से देश की रक्षा के लिए अनिवार्य था। और जिसके लिए निजी पूंजी आसानी से नहीं मिलने वाली थी। वे देश की वास्तविक समस्याओं के उजाले में शीघ्र लेकिन व्यवस्थित रूप से देश के औद्योगिकीकरण के लिए निजी एवं सार्वजनिक उद्यमों के बीच एक तार्किक समन्वय चाहते थे। इस नीति को तैयार करने में वे देश की जरूरतों और परिस्थितियों के एक यथार्थवादी आकलन द्वारा निर्देशित थे, न कि अमूर्त या हठधर्मिता के सिद्धांतों द्वारा, जिनसे उनका कोई लगाव नहीं था।[3]

यह एक ऐसा समय था, जब पश्चिम से प्रशिक्षित साम्यवादी विचारक द्वारा विफल आर्थिक सिद्धांतों का मजबूती से दुष्प्रचार किया जा रहा था। वे भारत में एक सर्वहारा स्वर्ग को विकसित करने के लिए उत्सुक दिख रहे थे। यह वह समय भी था जब साम्यवादियों ने भारत की औद्योगिक गति के खिलाफ हिंसक हड़ताल और बंद के माध्यम से अवरोध उत्पन्न करने शुरू किए। डॉ. मुखर्जी हमेशा उत्पादन को बढ़ाने के हित में श्रमिकों तथा पूंजी के बीच में सहयोग देने के लिए खड़े रहे। प्रगति के उपायों के रूप में वर्ग संघर्ष की धारणा उन्हें कभी प्रभावित नहीं कर पायी। अभी तक उन्होंने सभी नियोक्ताओं के मामले पर श्रम के सहयोग का समर्थन नहीं किया था। वे श्रम और पूंजी के बीच लाभ की साझेदारी के हिमायती थे, ताकि उद्योग में एक वास्तविक हित को विकसित करने के लिए श्रमिकों को सक्षम बनाया जाए। श्रमिकों के लिए श्रमिक कल्याण के माध्यम से उनमें आत्मबल भरने के लिए वे हमेशा व्यग्र और चिंतित दिखे। पूंजी की समस्या के प्रति वास्तविक तथा व्यावहारिक दृष्टिकोण नियोक्ताओं को भरोसा दिलाने वाला था।[4]

खुले दिमाग के साथ डॉ. मुखर्जी लोगों के लिए उपयोगिता तथा उसकी व्यावहारिकता की कसौटी पर सभी योजनाओं तथा नीतियों को आंकते थे। संपूर्ण राष्ट्रीयकरण पर उनकी मूल आपत्ति थी। उनका मानना था, सभी उद्योगों को राष्ट्रीयकृत करने तथा उन्हें पूरी निपुणता के साथ चलाने के लिए भारत के पास आवश्यक संसाधनों, अनुभवों तथा प्रशिक्षित लोगों की कमी है। एक मजबूत आर्थिक ढांचे के विकास तथा युवाओं को कुशल बना कर ही एक सुदृढ़ औद्योगिक आधार का निर्माण कौशलयुक्त करने के वे घोर पक्षधर थे। इस अवधि के उनके भाषणों में इन विचारों तथा दृष्टिकोण की झलक मिलती है। 1949 में दिल्ली पॉलिटेक्निक के साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी एसोसिएशन के कार्यक्रम में उन्होंने कहा, लोगों की, बड़ी संख्या में आर्थिक सुरक्षा और उनकी जीवनशैली में सुधार ही वह आधार है, जिसपर सभी प्रकार की राजनीतिक संस्थाएं निर्भर करती हैं। इसलिए राजनीतिक स्वतंत्रता का न तो तब तक कोई अर्थ है और न ही उसमें स्थायित्व है, जब तक कि उसके आर्थिक पक्ष को गहराई से महसूस न किया जाए। इस दृष्टि से वे कृषि तथा उद्योग में एक व्यापक तकनीकी क्रांति को आवश्यक मानते थे ताकि आम लोगों की जीवनशैली को उन्नत किया जा सके।[5]

औद्योगिक मोर्चे पर किये जा रहे प्रयासों का उल्लेख करते हुए डॉ. मुखर्जी ने कहा कि बड़ी संख्या में बहुत महत्त्वपूर्ण उद्योगों की स्थापनाश के लिए खुदाई की जा रही है तथा श्जब ये उद्योग सही अर्थों में स्थापित हो जायेंगे, तभी वह ठोस जमीन बन पायेगी, जिस पर हमारे देश का आर्थिक विकास आगे बढ़ेगा। 1948 में भारत सरकार की औद्योगिक नीति की घोषणा में डॉ. मुखर्जी के इस विचार का प्रतिबिंब दिखता है। इस प्रपत्र में योजनाबद्ध विकास को सुनिश्चित करने की सरकार का दायित्व तथा राष्ट्रीय विकास में सरकार के साथ मिलकर उद्योगों के नियमन के साथ उनकी भूमिका के साथ मिश्रित अर्थव्यवस्था की परिकल्पना थी।[6]

डॉ. मुखर्जी ने भारत के लघु तथा कुटीर उद्योगों को पुनर्व्यवस्थित तथा विकसित किये जाने पर बल दिया तथा 1948 और और 1950 के बीच उनके कार्यकाल के दौरान अखिल भारतीय हस्तशिल्प बोर्ड, अखिल भारतीय हस्तकरघा बोर्ड तथा खादी एवं ग्रामीण उद्योग बोर्ड स्थापित किये गए ताकि इन लघु एवं कुटीर उद्योगों के बचे रहने तथा उन्हें विकसित होने के लिए इन संगठनों के माध्यम से उन्हें आवश्यक वित्त पोषण किया जा सके। उन्हीं के कार्यकाल में वस्त्र अनुसंधान संस्थान ने अपना आकार लिया। जुलाई 1948 में एक सरकार प्रायोजित संस्थान औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना की गई। जिसका कार्य एक निवेश बैंक की तरह पुनर्भुगतान की सरकारी गारंटी पर निजी बचत का संग्रह करना तथा अग्रिम राशि के रूप में उत्ते वितरित करना और साथ ही औद्योगिक ऋण धारियों को लंबी अवधि के लिए ऋण देना था।

एक मंत्री के रूप में डॉ. मुखर्जी को स्वतंत्र भारत की आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ने वाली सबसे सफल अनेकों परियोजनाओं की शुरुआत करने का श्रेय जाता हैः–

1948 में, पश्चिम बंगाल के चित्तरंजन में स्वचालित इंजन कारखाने की शुरुआत हुई जिसमें 1950 में देशबंधु नाम से एसेंबल किये गए पार्टस से देश के प्रथम भारतीय स्वचालित इंजन का निर्माण किया गया।
डॉ. मुखर्जी ने हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट फैक्ट्री को लिमिटेड कंपनी के रूप में पुनर्गठित किया, जिसने शानदार काम करते हुए इंडियन एयर फॉर्स के लिए जेट एयरक्राफ्ट की एसेंबलिंग की।
नागरिक तथा रक्षा उद्देश्यों के प्रशिक्षण के लिए एचटी 2 का, भारतीय रेलवे के लिए स्टील रेल कोच का, तथा विभिन्न राज्यों तथा निजी परिवहन प्राधिकरण के लिए बसों के बाहरी ढांचे का निर्माण किया गया।
भिलाई में स्टील प्लांट की कल्पना डॉ. मुखर्जी ने ही की थी। परियोजना को लेकर उनका सकारात्मक दृष्टिकोण तथा विस्तृत सर्वेक्षण कि निर्धारित परिवेश में उसको चलाना संभव था या नहीं, आदि इससे उनकी प्रशासकीय क्षमता का पता चलता है। भारत में इस्पात उत्पादन की गुणवत्ता तथा मात्रा की मांग को पूरा करने के लिए उन्होंने 1955 में एक नये स्टील प्लांट की स्थापना का कार्य तभी संभव हो पाया था ,जब पूर्व में डॉ. मुखर्जी द्वारा भिलाई स्टील प्लांट की स्थापना को लेकर की गई संधि सामने आयी।
न्यूजप्रिंट के उत्पादन के लिए कदम उठाये गए। इसके लिए मध्य प्रांत, (मध्यप्रदेश) में राष्ट्रीय न्यूजप्रिंट तथा पेपर मिल्स लिमिटेड की स्थापना की गई।
बिहार में धनबाद के नजदीक सिंद्री में खाद कारखाने की स्थापना डॉ. मुखर्जी की ही कोशिश का नतीजा था। डॉ. मुखर्जी चाहते थे कि भारत खाद उत्पादन में आत्मनिर्भरता हासिल करे। हमेशा की तरह इस मोर्चे पर भी उनकी दीर्घकालिक दृष्टि के कारण इस विशाल और आधुनिक कारखाने में अक्टूबर 1951 से उत्पादन शुरू हो गया।[7]
इस प्रकार, डॉ. मुखर्जी की कुशल और योग्य नेतृत्व में 1947–48 तथा 1948–49 में विश्वयुद्ध के दौरान हुई क्षति को लाभ में बदल दिया गया। कंपनियों का विक्रय 1949–50 में लगभग 2 करोड़ तक हो गया। उस समय हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट कारखाने द्वारा निर्मित भारतीय रेलवे के नये मॉडल थर्ड क्लास कोच का निर्माण सही मायने में डॉ मुखर्जी की व्यक्तिगत रूचि का ही परिणाम था।
डॉ. मुखर्जी के कार्यकाल में ही इसी प्रकार, बहु प्रयोजन दामोदर घाटी निगम (डीवीसी) डॉ मुखर्जी की एक और बड़ी उपलब्धि था। उनके कुशल प्रबंधन का ही चमत्कार था कि उन्होंने केन्द्र सरकार तथा बिहार एवं बंगाल सरकार को विकास के लिए आपस में सहयोग करने के लिए एक साथ ला दिया। दामोदर घाटी निगम बिहार व बंगाल दोनों राज्यों में फैली एक संयुक्त परियोजना थी। यह डॉ. मुखर्जी की दूरदर्शिता के प्रति एक श्रद्धांजलि है कि डीवीसी अपने अस्तित्व में आया तथा सिंचाई, जल आपूर्ति, उत्पादन और ऊर्जा का संचरण के लिए योजनाओं को बढ़ावा देना तथा उसका संचालन–पन बिजली और तापीय बिजली जिसके प्रमुख कार्यों में से थे। साथ ही डीवीसी वाले आस–पास के क्षेत्रों में दामोदर नदी में बाढ़ नियंत्रण के लिए योजनाओं का क्रियान्वयन, जनस्वास्थ्य तथा कृषि, औद्योगिक एवं आर्थिक स्वास्थ्यश को स्थापित करना, इसके अन्य उद्देश्य थे।[8]
इन बड़े और विशाल औद्योगिक योजनाओं के साथ–साथ डॉ. मुखर्जी लघु उद्योगों के प्रति भी बेहद संवेदनशील थे तथा उनकी समस्याओं को समाप्त करने, उनकी स्थिति को सुदृढ़ बनाने तथा उनकी नींव को मजबूत करने के लिए कठोर श्रम किया। तमिलनाडु स्थित माचिस का निर्माण करने वाले लगभग 200 लघु कुटीर उद्योगों में उन्होंने हस्तक्षेप किया। पूरे भारत में स्थित, बड़े पैमाने पर फैले माचिस निर्माण करने वाली स्वीडिश कंपनी तथा कुटीर उद्योगों में काम करने वालों की दयनीय दशा जो कि दोनों कंपनियों के बीच की जबरदस्त प्रतिस्पर्धा तथा विभाजन के कारण, पश्चिमी पाकिस्तानी बाजार के हाथ से चले जाने के कारण हुई थी सुधारने के लिए उन्होंने हाथ से निर्मित माचिस पर उत्पाद शुल्क में उल्लेखनीय कटौती कर जबरदस्त राहत दी। उन्होंने सभी जगह पर लघु स्तर के उत्पादकों को अपने माल पहुंचाने के लिए परिवहन व्यवस्था को आसान बनाया तथा कच्चे माल की आयात के लिए सुविधा देकर उन्होंने कई और राहतें उपलब्ध करायी। उनके मंत्रालय ने मद्रास सरकार को निर्देश दिया कि वे इन कुटीर उद्योगों के श्रमिकों को सहकारी संगठनों के अंतर्गत लाये तथा कच्चे माल की आपूर्ति एवं तैयार माल के वितरण को सहज बनाने के लिए उसकी राशि का उपयोग करते हुए उनका वित्तीय पोषण करे, क्योंकि इससे उनकी 90 प्रतिशत समस्याओं का समाधान हो जाता है।[9]
इसी तरह, उन्होंने न सिर्फ भारत के आयात व्यापार में वृद्धि के लिए आवश्यक, अपितु निरंतर रोजगार पाते रहने के लिए भी ऊनी हथकरघा उद्योग की समस्याओं तथा सामना कर रही चुनौतियों से निपटने में भी रुचि दिखायी। इस उद्योग का 75 प्रतिशत हिस्सा उत्तर प्रदेश, पंजाब, कश्मीर तथा राजस्थान में केन्द्रित है। डॉ.

मुखर्जी ने सबसे पहले उनकी समस्याओं को चिह्नित किया, फिर ठोस तरीके से उनका निदान किया। इस क्षेत्र में श्रमिकों को तकनीकी मार्गदर्शन उपलब्ध कराने की समस्या को हल करने के लिए उन्होंने केन्द्रीय ऊन प्रौद्योगिकी संस्थान की शुरुआत की, जो संस्थान विनिर्माण के सभी चरणों में छात्रों को बारी–बारी से प्रशिक्षित कर उन्हें उन्नत उपकरणों में ग्रामीण श्रमिकों को प्रशिक्षित कर तैयार कर सके। विपणन के मुद्दे को हल करने के लिए डॉ. मुखर्जी ने दिल्ली में सेंट्रल कॉटेज एम्पोरियम के विचार को बढ़ावा दिया। इस इम्पोरियम का उद्देश्य प्रांतों में बनाये जा रहे सामानों को बाजार उपलब्ध कराना तथा उनका प्रचार–प्रसार करना था। विदेशों में भारतीय व्यापार आयुक्तों को निर्देश दिया गया कि वे प्रदर्शनियों, विक्रय तथा प्रचार–प्रसार कार्यक्रमों का आयोजन करवायें ताकि भारतीय हथकरघा उत्पाद को बढ़ावा मिल सके। सदियों से चल रहे भारतीय रेशम उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए, डॉ. मुखर्जी ने 1949 में केन्द्रीय रेशम बोर्ड की स्थापना की, जिससे इस उद्योग को उत्प्रेरणा मिली। इसी तरह, उन्होंने भारत में सूती हथकरघा तथा सूती वस्त्र उद्योगों को उन्नत करने तथा उसे आगे बढ़ाने के लिए आवाज मुखर की।[10]

डॉ0 श्यामा प्रसाद मुकर्जी औद्योगिक विकास के लिए वृहत औद्योगिक प्रतिष्ठान के साथ–साथ लघु एवं कुटिर उद्योग को बढ़ावा दिया।

## संदर्भ

ऋतु कोहली, डॉ0 श्यामा प्रसाद मुकर्जी और कश्मीर समस्या, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016
वही
वही
आचार्य मायाराम'पतंग', एकात्म भारत के प्रणेता डॉ0 श्यामा प्रसाद मुकर्जी, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022
वही
वही
डॉ0 श्यामा प्रसाद मुकर्जी एक संक्षिप्त जीवनी, पं0 दीनदयाल उपाध्याय प्रशिक्षण महाभियान 2015
वही
विश्वमित्र प्रसाद चौधरी, आधुनिक भारत के निर्माता डॉ0 श्यामा प्रसाद मुकर्जी,
तथागत राय, अप्रतिम नायक, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली

# मौर्यकालीन सामाजिक गतिविधियाँः एक अध्ययन

डॉ. सत्यजीत सारंग*

**सारांश**

सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन की वैचारिक पृष्ठभूमि में आजीविकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। बाशम ने आजीविकों के विकास की पृष्ठभूमि में कई आधारों को स्वीकार किया है जैसे- आर्यों के पूर्वी प्रसार के कारण गंगा-घाटी में प्रचलित आर्येत्तर जीवन पद्धति से उनका सामंजस्य मगध विदेह आदि में परिव्राजक भ्रमणशील सन्तों की रूढ़िवादी विचारवादी परम्परा जिसे विदे राजा जनक एवं अन्य राजाओं का संरक्षण प्राप्त था, अनार्यों के प्रकृतिवासी विश्वासों से उद्भूत कर्म एवं पुनर्जन्म और आत्मा के आवागमन आदि से सम्बन्धित विचार जिसमें परिवर्तन को एक विशिष्ट नैतिकवादी मानसिकता का आवरण मिला, साम्राज्यवाद का विकास एवं गणतन्त्रात्मक राज्य पद्धति सहित, छोटी-छोटी सत्ताओं का हनन, नगरीय सभ्यता का चलन जिसके कारण समाज में एक ओर साधन सम्पन्न धनी वर्ग (राजा, धनिक, श्रेष्ठी आदि) के प्रति विलासितापूर्ण जीवन साध्य हो गया था। मौद्रिक प्रणाली का चलन स्थापित हो गया था एवं समाज में धनी एवं निर्धन की कोटियाँ स्थापित हो गयी थी। ये सभी कारण छठी शताब्दी ईसा पूर्व में जनमानस में वैचारिक उद्वेलन का कारण बने। इस विकासमान परिस्थितियों से उत्पन्न नैराश्य भी कठिन तप अपरिग्रह तथा नियतिवाद जैसी जीवन पद्धति एवं मानसिकता का कारण रहा होगा। वैसे तो बदलती हुई सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में कई विचारकों ने अपने-अपने सिद्धान्तों के प्रचार द्वारा योगदान दिया लेकिन जनमानस को सबसे अधिक प्रभावित किया। बौद्ध तथा जैन धर्म ने विशेष रूप से बौद्ध धर्म अधिक लोकप्रिय हुआ। बौद्ध धर्म में ब्राह्मणों द्वारा निर्धारित वर्णव्यवस्था पर सीधा प्रहार किया तथा संघ में ऊँच-नीच सभी को समान स्थान देकर महाभारत की कथा में पशुओं की अकाल मृत्यु के कारण मक्खलि का नियतिवादी बन जाना इस विचार की पुष्टि में किंचित सहायक है। मक्खलिपुत्र गोसाल का समय ऐसे राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तन का युग था जब साम्राज्यवादी राजव्यवस्था का पदार्पण हो रहा था। नियतिवाद की आजीविक अवधारणा एक केन्द्रीभूत शासन व्यवस्था का आधार बनी। आजीविकों के धार्मिक विश्वासों एवं वैज्ञानिक सिद्धान्त से प्रकट होता है कि तत्कालीन समय में मुख्य धारा से हटकर एक भिन्न जीवन पद्धति का अनुमान इन्होंने, प्रतिपादित किया जो न तो यज्ञ एवं बलि की समर्थक थी, न ही उपनिषदीय एक सत्तावादी दार्शनिक धारा की पक्षधर थी।

**प्रस्तावना-**

किसी भी देश की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने में उस देश की राजनीतिक परिस्थितियों एवं तत्वों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। ठीक उसी प्रकार से छठी शताब्दी ई.पू0 से लेकर द्वितीय शताब्दी ई. की राजनीतिक परिस्थितियों, तत्वों एवं घटनाओं ने भी उक्त युग की सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों की पृष्ठभूमि में कार्य किया। हम प्रारम्भिक वैदिक काल की राजनीतिक परिस्थितियों को उनके भौतिक एवं सामाजिक जीवन के सन्दर्भ में अलग रखकर नहीं देख सकते क्योंकि उनका जीवन बहुत हद तक खानाबदोश था आर्थिक दृष्टि से वे मुख्यतः पशुपालन की अवस्था में थे। उनके सामाजिक तथा सैनिक संगठन पर पशुपालन का प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए एक गोष्ठ (गुहाल) में रहने वाले लोग एक गोत्र के हो गये। चूंकि गोधन जनजाति युद्धों का मुख्य कारण हुआ करता था। इसलिए युद्ध के पर्याय के रूप में गविष्टि अर्थात् गाय की खोज शब्द का चलन हुआ। खानाबदोशी व्यवस्था होने के कारण उन्हें सदा अपने स्थान बदलते रहने पड़ते थे। इसी कारण उनके द्वारा स्थिर सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था दे पाना कठिन था। वैदिक काल के अन्तिम चरण तक लोगों के मानस में प्रदेश का महत्व प्रतिष्ठित हो गया था और नये सामाजिक ढाँचे का उदय हो रहा था। इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्गों

* सहायक प्रोफेसर (अतिथि अध्यापक), इतिहास विभाग, रोहतास महिला कॉलेज, सासाराम सम्बद्ध वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

के लोग रहते थे। जिनका उदय वैदिक जनजातियों के विघटन और अवैदिक जनों के वैदिक समाज में शामिल किये जाने के परिणामस्वरूप हुआ था।

छठी शताब्दी ई.पू. तक जनों के संचरण और सन्निवेश का युग बीत चुका था और राज्य के संघटन में साजात्य की अपेक्षा देश तत्व अधिक प्रभावशाली हो गया था। फलतः जनों का स्थान जनपदों ने लिया था जिनमें कुछ राजाधीन थे कुछ गणाधीन राजाओं का पारस्परिक संघर्ष उतना ही तीव्र था जितना की राजधानी तथा गणाधीन जनपदों का जैसा कि राजघाट (बनारस) तथा चिरांद (छपरा) के उत्खननों से प्रमाणित होता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बिहार में इन दिनों लोहे का व्यापक उपयोग होता था, इसके फलस्वरूप बड़े-बड़े प्रादेशिक राज्यों की स्थापना हुई जो सैनिक दृष्टि से भली-भाँति सज्जित थे और जिनमें मुख्य भूमिका क्षत्रिय वर्ग ने निभाई। सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की राजनीतिक पृष्ठभूमि में जाने के लिए छठी शताब्दी ई.पू. की राजनीतिक परिस्थितियों का संक्षिप्त वर्णन वहाँ अपेक्षित रीज डेविड्स पहला विद्वान था जिसने बुद्ध तथा बिम्बिसार के समकालीन गणतंत्रों तथा राजतंत्रों पर प्रकाश डाला। इसमें सबसे महत्वपूर्ण उत्तरी बिहार का वृजियन, कुशीनारा का मल्ल राज्य तथा पावा के मल्ल राज्य थे। छोटे गणतंत्रों में हमें कपिलवस्तु के शाक्य देवदह और रामगाम के कोलिय, सुम्सुमार पहाड़ियों के भग्ग (भर्ग) राज्य, अलकप्प के बुलि राज्य, केसपुत्र के कलाम और पिप्पलिवन के मोरिय राज्य के उल्लेख मिलते हैं।

तत्पश्चात् इन बड़े राज्यों में कोसल तथा मगध सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य बन चुके थे। बुद्ध के समय तक काशी, कोशल के साम्राज्य का अंग बन चुकी थी। ऐसे ही बिम्बिसार के समय अंग जनपद को आत्मसात कर लिया था। शाक्यगण कोसल की अधीनता स्वीकार करता था, फिर भी विडूडूभ ने उस पर संघटित हमला किया और अजातशत्रु ने लिच्छवियों से संग्राम ठाना। इन घटनाओं में गणराज्यों का ह्रास, राजतंत्र का उत्कर्ष तथा मगध साम्राज्य का उत्कर्ष देखे जा सकते हैं।

अतः स्पष्ट है कि इस काल में उत्तरी भारत में सार्वभौमिक सत्ता का पूर्णतया अभाव था। यह राजनीतिक विश्रृंखला का युग था। सम्पूर्ण प्रदेश अनेक स्वतंत्र राज्यों में विभक्त था। कालान्तर से या तो सही गणतंत्र राजतंत्रों मं परिवर्तित हो गये या इनको समाप्त करके अनेक राजतंत्रों ने इनके सीन पर अपने को प्रतिष्ठित कर लिया। लगभग सभी गणतंत्र जनजातीय थे जिनका भारतीय समाज में सम्मिलन हुआ। उदाहरणार्थ, हिमालयपारीय जनजातियाँ उत्तरकुरू और उत्तरमद्र ''जो वैराज्य शासन प्रणाली से शासित बतलाये गये हैं।'' पौराणिक, अनुश्रुतियों में गणों के अस्तित्व का उल्लेख मिलता है। उनमें एक हजार क्षत्रियों वाले एक गण का उल्लेख है जिसका प्रधान नाभाग था। पुराणों में नाभाग के वंशजों का कोई जिक्र नहीं मिलता। पाटिल का तर्क है कि चूंकि नाभाग गणतंत्री जनजाति थे इसलिए पुराणों में उनकी वंशावली सुरक्षित रखने की चिन्ता नहीं की। फिर भी यदि अशोक के एक अभिलेख में आये एक उल्लेख से यह माना जाये कि इसमें नाभागों का ही जिक्र हुआ है तो ऐसा प्रतीत होता है कि ये दीर्घकाल तक गणतंत्री जनजाति के रूप में बने रहे।

अतः हमारा विचार है कि अनेक जनजातीय राजवंशों के स्थापित होने पर ब्राह्मणीय आदर्शों पर आधारित आनुवांशिक राजपद से वंचित रखने वाली व्यवस्था से छुटकारा मिला होगा। साध्य एवं अंधविश्वास युक्त कर्मकाण्डों का अंत हुआ होगा, जिससे पशुधन को नष्ट होने से बचाया गया होगा क्योंकि बढ़ते हुए कृषि के महत्व में इनकी बहुत बड़ी उपयोगिता थी।

वैदिक युग में क्षत्रिय का स्थान दूसरा रहा है, किन्तु बौद्ध युग में उसने अपना प्रमुख स्थान बना लिया, अन्य वर्गों के साथ उसका उललेख सर्वप्रथम हुआ है। तत्कालीन समय सामाजिक संघर्ष श्रेष्ठता और विशिष्टता प्राप्त करने का था जिसमें क्षत्रिय वर्ग ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। बुद्ध ने ब्राह्मण अम्बष्ट से कहा, ''क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है, ब्राह्मण हीन।'' यह कथन इस बात का प्रमाण है कि क्षत्रिय अपने को उत्कृष्ट समझता था तथा प्रशासन एवं रचनात्मक कार्यों से अपने को सम्बद्ध करके समाज में उसने सर्वश्रेष्ठ स्थान बना लिया था। बौद्ध युग में वर्गों में निर्दिष्ट कर्म पर भी आघात किया गया।

मगध राष्ट्र की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि वहाँ के लोगों के व्यवहार में एक प्रकार का लचीलापन था। यह गुण सरस्वती व दृ पद्धति के तटवर्ती प्रदेशों के लोगों में नहीं था। इन प्रान्तों में ब्राह्मण लोग व्रात्य वर्ग का सम्पर्क स्वीकार कर लेते थे तथा राजा लोग अपने महलों में शूद्र कन्याओं को भी स्थान दे देते थे। वैश्यों व यवनों को भी शासकीय पदों पर नियुक्त कर दिया जाता था। यही नहीं कभी-कभी नगर शोभिनी की सन्तान के कारण ऊँचे घरानों का पैतृक राजवंशों के शासकों को भी राज्य से निकाल दिया जाता रहा। राजा का सिंहासन एक साधारण नाई की भी पहुँच के अन्दर होता था।

प्राचीन भारतीय साहित्य से पता चलता है कि राजा क्षत्रिय वर्ण का होना चाहिए। राजन्य और क्षत्रिय शब्द पर्यायवाची है। धर्मसूत्रों और अर्थशास्त्र से लेकर ब्राह्मण विचारधारा के सभी ग्रन्थों में इस बात पर जोर दिया गया। कौटिल्य के अनुसार धर्म प्रवर्तन के रूप में राजा चतुवर्ण व्यवस्था का रक्षक है। शान्तिपर्व में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि जाति, धर्म या वर्ण धर्म का आधार क्षात्रधर्म अर्थात् राज्य शक्ति है। मनु की घोषणा है कि राज्य तभी तक फल-फूल सकता है जब तक वर्णों की शुद्धता कायम रहती है। यदि मिश्रित वर्णों के वर्ण शंकर लोग वर्णों को दूषित करेंगे तो राज्य अपने निवासियों सहित नष्ट हो जायेगा। शान्तिपर्व में राजपद को वर्ण व्यवस्था का रक्षक कहा गया है। इसमें राजा के विरूद्ध विद्रोह करने वाले के लिए यही दण्ड निहित किया गया है जो समाज व्यवस्था में गड़बड़ी फैलाने वाले के लिए निर्धारित किया गया है।

फिर भी हमें जातकों एवं जैन, बौद्ध ग्रन्थों में ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं जिन्होंने राजनीतिक शक्ति प्राप्त कर सर्वोच्च सामाजिक वर्ण में दाखिला लिया। चन्द लोग जिन्होंने शिशुनाग वंश से सिंहासन छीना था। नीच कुल के थे। पुराणों के अनुसार महामद्म या महापद्मपति नन्द वंश का प्रथम नन्द था जो शूद्र कन्या का पुत्र था। (शूद्रागर्भोद्भव) जैन ग्रन्थ परिशिष्टपर्वन के अनुसार नन्द गणिका माँ तथा नाई पिता का पुत्र था। उक्त कथन की पुष्टि सिकन्दर के समकालीन मगध के शासकों की वंशावली से भी हो जाती है। इस राजकुमार की चर्चा करते हुए कर्टियस ने लिखा है कि ‘‘पिता नाई या बेचारा अपनी रोजाना की कमाई से किसी तरह जीवन-यापन करता था। लेकिन चूंकि देखने सुनने में काफी खूबसूरत था इसलिए रानी उसे बहुत मानती थी। रानी के प्रोत्साहन के फलस्वरूप ही वह राजा के समीप पहुँच गया और राजा का विश्वासपात्र बन गया। एक दिन उसने छल से राजा की हत्या कर दी। अपने को राजकुमारों का अभिभावक घोषित करते हुए उसने राजा के सभी अधिकार अपने हाथ में कर लिए।’’

चन्द्रगुप्त मौर्य जैन अनुश्रुतियों के अनुसार मयूरपालक का पुत्र था और इस प्रकार शूद्र की कोटि में था। पर मध्यकालीन अभिलेखों में वह सूर्यवंशी के रूप में महिमान्वित हुआ है। प्लूटार्क ने लिखा है कि चन्द्रगुप्त ने छः लाख की सेना लेकर समूचे भारत को अपने साम्राज्य का अंग बना लिया। जस्टिन के अनुसार समूचा भारत चन्द्रगुप्त के कब्जे में था।

जैसा कि आर.सी. मजूमदार ने अपनी पुस्तक प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास में लिखा है कि उत्तर बिम्बिसार काल के राजनीतिक इतिहास की विशेषता यह रही है कि उस समय दो विरोधी अंतर्मुखी तथा बहिर्मुखी शक्तियाँ साथ-साथ काम कर रही थी अर्थात् एक ओर तो स्थानीय जनपदों के स्वायत्त शासन के प्रति प्रेम की और दूसरी ओर समूचे देश को एक राजतंत्र के अधीन एकता के सूत्र में बांधने की भावना थी। पहला आदर्श मनु ने शब्दों में इस प्रकार किया था-

सर्वम् परवशम् सुखम्, सर्वम् आत्मवंशम् सुखम्। दोनों ही विरोधी विचारधाराएँ घड़ी के पेंडुलम की भाँति उत्तरोत्तर एक दूसरे का स्थान ग्रहण करती रही भारतीय राजनीति में बाह्य आक्रमणों के भय का तत्व सदैव प्रभावशाली रहा है, परन्तु समूचे देश की एकता इस तत्व के कारण नहीं थी, वरन् ‘‘जब पृथ्वी को बर्बर जातियों ने भयभीत किया तो उसने चन्द्रगुप्त मौर्य की शरण ली। भारतीय इतिहास में चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रथम ऐतिहासिक सम्राट कहा जाता है और निःसंदेह उसके राज्य की सीमायें आर्यावर्त की सीमाओं के पार फैली हुई थी।’’

मौर्यकाल में राजनीतिक केन्द्रीयकरण के फलस्वरूप बढ़ी हुई नियमन की शक्ति ने वर्ण संकरता के उद्भव व विकास को विशेष प्रोत्साहन दिया। जनजातीय समुदायों को एक विशेष सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत रखने का प्रयास किया गया। महाभारत के अनुशासन पर्व में भी मिश्रित जातियों का उल्लेख मिलता है। अर्थशास्त्र में आयोगव, अम्बष्ठ, क्षत्ता, चाण्डाल, मागध, वैदेहक, सूत, कुक्कुट, उग्र निषाद, पुल्कस, वैण, कुशीलव तथा श्वपाक का उल्लेख हुआ है। इनमें अधिकतर जातियाँ-जनजातियाँ समुदायों के सम्मिश्रण के फलस्वरूप उत्पन्न हुई। व्यावसायिक जनजातीय एवं विदेशी जातियों के सम्मिश्रण के फलस्वरूप इस काल में जातियों की संख्या में अभूतपूर्वक वृद्धि हुई। पहली बार कौटिल्य में ने ही वैश्यों और शूद्रों से गठित सेना को उसके संख्या बल के कारण महत्वपूर्ण माना।

न केवल शूद्र राजाओं के उदाहरण हमें प्राप्त होते हैं बल्कि ब्राह्मण राजाओं के भी उदाहरण प्राप्त हैं। जातकों से कम से कम चार ब्राह्मण राजाओं के भी उदाहरण प्राप्त है। जातकों में कम से कम चार ब्राह्मण राजाओं के उदाहरण मौजूद है। आगे चलकर मौर्योत्तर काल में हमें आन्ध्रों, शुंगों, कण्वों के उदाहरण प्राप्त होते हैं।

लगभग द्वितीय शताब्दी ई.पू. से द्वितीय शताब्दी ई. तक का काल राजनीतिक उथल-पुथल का काल था। विदेशी शासन स्थापित हुआ तो विदेशी शासक वर्ग की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में स्वयं ही ह्रास हो गया। विदेशी शासकों के अन्तर्गत वे शासित के रूप में अपने विशेष अधिकार खो बैठे। इस सन्दर्भ में तत्कालीन साहित्य में प्राप्त शूद्र तथा म्लेच्छ शासकों के उल्लेख विचारणीय है। चूंकि इन शूद्र राजाओं का कोई ऐतिहासिक साक्ष्य द्वितीय शताब्दी ई.पू. से द्वितीय शताब्दी ई. के मध्य प्राप्त नहीं होता है। अतः बार.एस. शर्मा का यह निष्कर्ष ठीक प्रतीत होता है कि इन शूद्र शासकों से तात्पर्य विदेशी शासकों से हो रहा होगा। विदेशी शासकों को वृषल की संज्ञा मनु ने स्वयं प्रदान की है।

मनु ने स्नातक के लिए शूद्र राज्य में निवास का निषेध प्रस्तुत किया है। इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि उस काल में शूद्र शासक होते थे। ये प्रायः ग्रीक, शक, पार्थियन, कुषाण शासकों का निर्देश देते हैं जो बौद्ध धर्म और वैष्णव धर्म के अनुयायी थे और जिन्हें मनु ने इसे पतित क्षत्रिय बताया है, जो ब्राह्मणों से परामर्श न लेते और बताये गये वैदिक कृत्यों सम्पादन में चूक के कारण शूद्रत्व की स्थिति में पहुँच गये थे। कलियुग वर्णन के सन्दर्भ में भी शूद्र शासकों का प्रसंग प्राप्त होता है।

मनु ने ब्राह्मणों के लिए क्षत्रियेत्तर राजाओं से दान लेने का निषेध किया है। इस निषेध का निर्धारण करते समय सम्भवतः उनके मस्तिष्क में वृषतत्व को प्राप्त विदेशी क्षत्रिय राजाओं का ही चित्र रहा होगा। दान लेने के सम्बन्ध में मनु ने राजा को अत्यधिक निम्न श्रेणी प्रदान की है। इसका कारण भी सम्भवतः विदेशी शासक रहे होंगे जो कभी-कभी ब्रह्म हत्या करने और उनकी स्त्री तथा सम्पत्ति का हरण करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं दिखाते थे। मिलिन्दपन्ह में भी वंश परम्परा से हीन राजा को सिंहासन के अयोग्य बताया गया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि विदेशी शासकों का सहयोग पाकर कुछ शूद्रों ने शासन व्यवस्था में उच्च अधिकार प्राप्त कर लिये थे। मनु ने उस राज्य के नष्ट हो जाने की सम्भावना प्रकट की है जहाँ शूद्र धर्म प्रवक्ता (न्यायाधीश) नियुक्त किया जाता था।

महाभारत के शान्तिपर्व में एक स्थल पर कहा गया है कि जो शूद्र दस्युओं के आक्रमण के समय लोगों की रक्षा करे वह विशेष सम्मान का पात्र हो जाता था।

**सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन की वैचारिक, धार्मिक तथा शैक्षिक-**

इस काल में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की दिशा देने वाले अनेक विचारधाराओं का जन्म हुआ। जो विभिन्न धार्मिक, आन्दोलनों एवं सम्प्रदायों के रूप में विकसित हुए। ये पूर्ववर्ती विचारधाराओं की प्रतिपक्षी परम्परा को प्रस्तुत करती है। इन परिवर्तनों के भौगोलिक क्षेत्र भी भिन्न थे। जैसे ब्राह्मण एवं ब्राह्मणेतर ग्रन्थों का ज्ञान अधिकांशतः गंगा, यमुना की घाटी या पूर्वी भारत तक ही सुनिश्चित था, यद्यपि इनमें आर्यावर्त की कल्पना भी मिलती है जो कभी गंगा-यमुना दोआब तक तो कभी हिमालय से लेकर विन्ध्य और पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्र के भी भाग तक विस्तृत कहा गया है। स्पष्टतः इनमें दो भिन्न संस्कृतियों के मूल्यों की स्थापना है।

एक संस्कृति कुरू दृ पांचाल प्रदेश की यज्ञ एवं देवता प्रधान तथा पुरोहितों के वर्चस्व की पक्षधर थी, दूसरी संस्कृति गंगा की घाटी के क्षेत्र में पनपी नयी संस्कृति थी जो नगरीय जीवन के मूल्यों के अधिक निकट थी। लेकिन जिनमें कृषि व्यवस्था से सम्बन्धित सामाजिक सम्बन्धों एवं ग्रामों का नवीन रूप उभरा था। दोनों में ही परस्पर भेद स्पष्ट होता है। इस युग के नवीन धार्मिक आन्दोलनों में भी वैदिक परम्पराओं के प्रतिपक्षी स्वरूप स्पष्ट होते हैं, जैसे अनीश्वरवाद यज्ञों का विरोध, वेदों की महत्ता पर सन्देह लोकधर्मों की पुष्टि आदि।

उपनिषदों से तथा प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों से यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि छठी शताब्दी ई.पू. एक बौद्धिक और आध्यात्मिक क्रान्ति का युग था जबकि ब्राह्मण और श्रमण आचार्य और भिक्षु अनेकों धार्मिक, दार्शनिक, मतों की उद्भावना और नाना नवीन मार्गों और सम्प्रदायों का प्रचार कर रहे थे। परिव्राजकों का तत्कालीन समाज में महत्व इस व्यापक बौद्धिक आध्यात्मिक जिज्ञासा के कारण ही था। प्रचलित वैदिक परम्परा के अनुसार मनुष्य यज्ञादि के अनुष्ठान से देवताओं के प्रसाद और फलतः सुखी जीवन तथा स्वर्ग की आशा कर सकते हैं। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि छठी शताब्दी ई.पू. के प्रायः सभी विचारक पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार करते थे और मृत्यु तथा क्षय से अनिवार्य तथा ग्रस्थ लौकिक और पारलौकिक जीवन को एक दुःखमय विभीषिका मानते थे। भोग के स्थान पर मोक्ष चाहते थे। उनमें विचार और मतभेद इस बात पर था कि बन्धन और मोक्ष

के कारण क्या है, श्रमण परम्पराएं कुछ सीमा तक वैदिक परम्परा के विरूद्ध भी थी। इन नयी परम्पराओं में अनेक वादों का जन्म हुआ जैसे कर्मवाद, क्रियावाद, नियतिवाद, उच्छेदवाद, तपवाद, अज्ञानवाद आदि इससे सम्बन्धित विचार भी इस युग में प्रसिद्ध हुआ।

इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण माध्यम बने। बौद्ध धर्म को अंगीकार करने के कारण ही मातंग नामक चाण्डाल ने 'महाब्रह्म' पद की प्राप्ति की। एक अन्य मंत्रवत से युक्त 'महाचाण्डाल' का उल्लेख अम्ब जातक में प्राप्त होता है। इस जातक के अन्त में कही गयी गाथा विशेष उल्लेखनीय है- क्षत्रिया, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल, पुदकुस में से जिस किसी मनुष्य से किसी को धर्म का ज्ञान प्राप्त हो वही उसके लिए उत्तम नर है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शूद्र चाण्डाल तथा पुक्कुस भी धर्मोपदेश देने में समर्थ बन सकते थे। एक अन्य धार्मिक चाण्डाल तथा चम्मसाटक, परिव्राजक का विवरण भी प्राप्त होता है। हिरिजातक में जाति तथा वर्ण के स्थान पर शील तथा श्रेष्ठता पर बल देते हुए कहा गया है कि अधार्मिक क्षत्रिय हो, चाहे अधार्मिक वैश्य, वे दोनों लोकों (देव लोक, मानव लोक) को छोड़ दुर्गति को प्राप्त होते हैं। क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल तथा पुक्कुस सभी इसी लोक में धर्माचरण करने से देवताओं के समान होते हैं। गंगमाल जातक में गंगमाल नाई के द्वारा प्रत्येक बुद्धत्व प्राप्त किये जाने पर राजा ने राजमाता तथा राजपरिषद के सहित उसे प्रणाम किया। थेर तथा थेरी गाथाओं में दस थेर तथा आठ थेरियाँ शूद्र वर्ग से सम्बद्ध थी। इनमें नट, चाण्डाल, डालिया बनाने वाले तथा शिकारी के अतिरिक्त दासी एवं नर्तकी का उल्लेख भी प्राप्त होता है। एक गृह शिक्षक के भिक्षु हो जाने का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

**सन्दर्भ सूची-**


1. लूडर्स लिस्ट, नं0 14
2. सुवीरा जायसवाल, द ओरिजिन एण्ड डेवलपमेंट आव वैष्णविज्म, पृ0 79 तथा 83
3. अष्टाध्यायी- 5.2.76 पर भाष्य 130 बी.एन. पुरी, इण्डिया इन द टाइम आफ पतंजलि, पृ0 188
4. महाभारत शान्ति पर्व 349.64
5. सांख्ययोग पारचरात्रं वेदाः पाशुपतंतथा ज्ञानान्येतानि राजर्षे विद्धि नानामतानि वै।
6. वही, 349.67, उमापतिर्भूतपति श्रीकण्डो ब्राह्मण सुत्रः।
7. उक्तावानिदमत्यग्रो ज्ञान पाशपतं शिव।

# धार्मिक उग्रवाद और राजनीति पर इसका प्रभाव

सरिता कुमारी*

**सारांश**

धार्मिक उग्रवाद एक वैश्विक चुनौती बन गया है, जिसका प्रभाव न केवल समाज पर, बल्कि राजनीति की दिशा और नीतियों पर भी गहराई से पड़ा है। यह उग्रवाद प्रायः धार्मिक पहचान, असहिष्णुता, और सांस्कृतिक टकराव के कारण उत्पन्न होता है। उग्रवादी समूहों द्वारा धर्म का उपयोग एक ऐसे उपकरण के रूप में किया जाता है, जिससे वे अपनी वैचारिक एवं राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं को आगे बढ़ा सकें। इस प्रक्रिया में, ये समूह विभाजनकारी राजनीति को बढ़ावा देते हैं, जिससे समाज में ध्रुवीकरण और अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न होती है। धार्मिक उग्रवाद का राजनीति पर प्रभाव कई स्तरों पर देखा जा सकता है। सबसे पहले, यह लोकतांत्रिक व्यवस्था को चुनौती देता है, क्योंकि यह एकल धार्मिक दृष्टिकोण को थोपने का प्रयास करता है। दूसरा, उग्रवाद के कारण राज्य को कठोर सुरक्षा नीतियाँ अपनानी पड़ती हैं, जिससे नागरिक स्वतंत्रता पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त, राजनीतिक दल कभी-कभी उग्रवादी समूहों के समर्थन या विरोध में नीतिगत फैसले लेते हैं, जिससे उनके राजनीतिक एजेंडे में धर्म का महत्व बढ़ जाता है। इसके प्रभाव को कम करने के लिए, समावेशी राजनीति और धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा देना आवश्यक है। साथ ही, शिक्षा, संवाद, और सहयोग जैसे माध्यमों से समाज में जागरूकता लाना भी महत्वपूर्ण है।

**मुख्य शब्द-** धार्मिक उग्रवाद, राजनीति, विभाजनकारी राजनीति, असहिष्णुता, ध्रुवीकरण, लोकतंत्र, नागरिक स्वतंत्रता, धार्मिक सहिष्णुता, नीतिगत फैसले, सुरक्षा नीतियाँ, सांस्कृतिक टकराव।

**परिचय**

धार्मिक उग्रवाद एक जटिल और गंभीर वैश्विक समस्या है, जो सामाजिक, सांस्कृतिक, और राजनीतिक जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करती है। धार्मिक उग्रवाद का अर्थ है धर्म के नाम पर हिंसक गतिविधियाँ करना, जिसमें धर्म को अपने व्यक्तिगत, राजनीतिक, या वैचारिक हितों के लिए एक उपकरण के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह केवल एक धार्मिक समस्या नहीं है, बल्कि एक सामाजिक-राजनीतिक चुनौती भी है, जो विभाजनकारी राजनीति को बढ़ावा देती है और लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न करती है।

**धार्मिक उग्रवाद: एक परिभाषा**

धार्मिक उग्रवाद का तात्पर्य उन चरमपंथी विचारधाराओं और क्रियाकलापों से है, जो धर्म के नाम पर की जाती हैं। इन गतिविधियों में हिंसा, आतंकवाद, सामूहिक नरसंहार, और विभाजनकारी प्रवृत्तियाँ शामिल होती हैं। उग्रवादी समूह प्रायः धार्मिक प्रतीकों और सिद्धांतों का उपयोग कर अपनी विचारधारा को वैध ठहराने का प्रयास करते हैं। धार्मिक उग्रवाद की समस्या तब और गंभीर हो जाती है, जब इसका राजनीतिकरण किया जाता है। धार्मिक उग्रवाद के मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं-

1. धार्मिक असहिष्णुता- दूसरों के धार्मिक विश्वासों को स्वीकार न करना।
2. हिंसक प्रवृत्ति- अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए हिंसा का सहारा लेना।
3. धर्म का राजनीतिक उपयोग- राजनीतिक लाभ के लिए धर्म का इस्तेमाल करना।
4. सामाजिक ध्रुवीकरण - धार्मिक आधार पर समाज को विभाजित करना।

**धार्मिक उग्रवाद के कारण:**

धार्मिक उग्रवाद एक जटिल और बहुआयामी समस्या है, जिसके कारण विभिन्न स्तरों पर समाज में अस्थिरता और संघर्ष उत्पन्न होते हैं। इसे समझने के लिए हमें इसके विभिन्न पहलुओं को गहराई से देखना आवश्यक है। इसके प्रमुख कारणों को विस्तार से समझते हैं-

* शोध छात्रा, समाजशास्त्र, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

तब होता है जब उग्रवादी समूह अपनी गतिविधियों को छिपकर और गुमनाम तरीके से ऑनलाइन मंचों पर फैलाते हैं। इसके अलावा, युवा वर्ग तकनीकी साधनों के माध्यम से उग्रवादी विचारों से प्रभावित हो सकता है, जो उन्हें अन्य समुदायों के खिलाफ हिंसा या आतंकवाद की दिशा में प्रेरित कर सकता है। इन कारणों के अलावा, सामाजिक-राजनीतिक अस्थिरता, धार्मिक उन्माद, और शिक्षा की कमी भी धार्मिक उग्रवाद को बढ़ावा देने वाले महत्वपूर्ण कारक हैं। इन समस्याओं का समाधान केवल समग्र दृष्टिकोण और सहयोगात्मक प्रयासों से ही संभव है, ताकि समाज में शांति, सहिष्णुता और सद्भावना बनी रहे।

**1. सामाजिक और सांस्कृतिक कारण**

धार्मिक उग्रवाद का एक प्रमुख कारण समाज में धार्मिक पहचान और सांस्कृतिक विविधता को लेकर उत्पन्न होने वाली असुरक्षा की भावना है। जब एक धार्मिक समूह को लगता है कि उसकी पहचान और परंपराएं खतरे में हैं, तो वह अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए उग्रवादी विचारधारा को अपना सकता है। धार्मिक और सांस्कृतिक भिन्नताएँ समाज में असहमति और संघर्षों को जन्म देती हैं। कभी-कभी यह संघर्ष स्थानीय या राष्ट्रीय स्तर पर हिंसक रूप ले लेता है, जिससे उग्रवाद को बढ़ावा मिलता है। इसके अलावा, धार्मिक और सांस्कृतिक असहमति के कारण अक्सर सामाजिक ध्रुवीकरण भी होता है, जिसमें एक समुदाय दूसरे समुदाय के खिलाफ असहमति, शत्रुता और आक्रोश बढ़ाता है।

**2. आर्थिक कारण**

एक और महत्वपूर्ण कारण जो धार्मिक उग्रवाद को बढ़ावा देता है, वह है आर्थिक असमानता। जब लोग आर्थिक रूप से पिछड़े होते हैं और उनके पास रोजगार, शिक्षा और जीवनयापन के साधन नहीं होते, तो वे असंतुष्ट हो जाते हैं। उग्रवादी संगठन इन असंतुष्ट लोगों को अपने पक्ष में लाने के लिए धार्मिक नारे लगाते हैं, जिससे उनके बीच एक तरह का सशक्तिकरण की भावना जागृत होती है। गरीबी, बेरोजगारी, और अन्य आर्थिक समस्याएँ उग्रवादी समूहों को बढ़ावा देती हैं क्योंकि ये समूह लोगों को यह आश्वासन देते हैं कि वे उन्हें आर्थिक रूप से सशक्त करेंगे या उनके लिए बेहतर जीवन की उम्मीद प्रदान करेंगे। यह स्थिति विशेषकर उन क्षेत्रों में होती है जहां सरकारी योजनाएँ और संसाधन उचित रूप से वितरित नहीं होते। इसके अलावा, आर्थिक शोषण और क्षेत्रीय असमानता भी उग्रवाद को प्रोत्साहित करती है। जब कुछ समुदायों को मुख्यधारा के आर्थिक विकास से बाहर रखा जाता है, तो वे विरोध में खड़े होकर अपने अधिकारों की रक्षा के लिए उग्रवादी विचारधारा को अपना सकते हैं।

**3. राजनीतिक कारण**

धार्मिक उग्रवाद का एक और कारण राजनीति है। विभिन्न राजनीतिक दल अक्सर अपनी सत्ता को बनाए रखने और अपने विरोधियों को कमजोर करने के लिए धर्म का उपयोग करते हैं। कई बार, धर्म के नाम पर चुनावी समर्थन जुटाने के लिए नेता धार्मिक उग्रवादी समूहों का समर्थन करते हैं या उनका इस्तेमाल करते हैं। इस प्रकार, राजनीति और धर्म का मिश्रण उग्रवाद को बढ़ावा देता है। कुछ राजनीतिक दल धार्मिक उग्रवाद को अपने फायदे के लिए वैधता प्रदान करते हैं, जो अंततः समाज में भेदभाव और हिंसा की स्थिति उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए, जब सरकार या राजनीतिक नेता किसी धार्मिक समूह के पक्ष में खड़े होते हैं, तो यह अन्य धार्मिक समुदायों को उपेक्षित या प्रताड़ित करने का कारण बन सकता है।

**4. वैश्विक प्रभाव**

धार्मिक उग्रवाद के कारण केवल स्थानीय या राष्ट्रीय स्तर तक सीमित नहीं रहते, बल्कि यह वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भी देखे जा सकते हैं। अंतरराष्ट्रीय राजनीति, धार्मिक विचारधाराओं का फैलाव, और विदेशी हस्तक्षेप भी धार्मिक उग्रवाद को बढ़ावा देते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ देशों में धार्मिक संघर्षों और उग्रवाद के लिए विदेशी शक्तियों का हस्तक्षेप जिम्मेदार हो सकता है, जो अपने राजनीतिक और आर्थिक हितों के लिए स्थानीय धार्मिक संघर्षों का फायदा उठाते हैं। वैश्विक प्रभाव जैसे आतंकवाद, सांप्रदायिक संघर्ष और धार्मिक असहमति, धार्मिक उग्रवाद को एक अंतरराष्ट्रीय समस्या बना देते हैं, जिससे उसका समाधान और भी जटिल हो जाता है।

**5. तकनीकी और डिजिटल प्रभाव**

आधुनिक तकनीकी और डिजिटल प्लेटफॉर्मों के प्रसार ने धार्मिक उग्रवाद को तेजी से फैलने में एक नई दिशा दी है। इंटरनेट और सोशल मीडिया जैसे प्लेटफॉर्मों के माध्यम से उग्रवादी समूह अपनी विचारधारा को फैलाते हैं और युवाओं को अपने पक्ष

में आकर्षित करते हैं। सोशल मीडिया पर प्रचारित धार्मिक विचारधाराएँ, गलत सूचना और अफवाहें उग्रवाद को बढ़ावा देने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण बन चुकी हैं। यह खासकर

**राजनीति पर धार्मिक उग्रवाद का प्रभाव :**

धार्मिक उग्रवाद का राजनीति पर गहरा और व्यापक प्रभाव पड़ता है। यह लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं, नागरिक स्वतंत्रता, और समाज की एकता को प्रभावित करता है। जब धार्मिक उग्रवाद समाज में फैलता है, तो इसके राजनीतिक परिणाम भी दीर्घकालिक होते हैं। इसे विस्तार से निम्नलिखित बिंदुओं में समझा जा सकता है-

**1. लोकतंत्र पर खतरा**

धार्मिक उग्रवाद लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न करता है। लोकतंत्र में प्रत्येक नागरिक को अपनी बात कहने और अपने धर्म का पालन करने की स्वतंत्रता होती है। लेकिन जब उग्रवादी समूह धार्मिक दृष्टिकोण को थोपने का प्रयास करते हैं, तो इससे लोकतंत्र कमजोर होता है। यह नागरिकों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समानता के अधिकारों का उल्लंघन है, जिससे समाज में असहमति और असंतोष पैदा होता है। इस तरह की स्थिति में सरकार की ओर से जनहित की उपेक्षा होती है और समाज में असंतुलन बढ़ता है।

**2. विभाजनकारी राजनीति का उदय**

धार्मिक उग्रवाद के कारण विभाजनकारी राजनीति को बढ़ावा मिलता है। कई राजनीतिक दल अपने स्वार्थ के लिए विभिन्न धार्मिक समूहों को आपस में बांटने का प्रयास करते हैं, ताकि उनका समर्थन हासिल किया जा सके। इससे न केवल समाज में ध्रुवीकरण होता है, बल्कि विभिन्न समुदायों के बीच नफरत और तनाव का माहौल भी उत्पन्न होता है। इससे समाज की एकता और समरसता को क्षति पहुंचती है और विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच विश्वास की कमी बढ़ जाती है।

**3. कठोर नीतियों का निर्माण**

धार्मिक उग्रवाद के कारण राज्य को सुरक्षा संबंधी कठोर नीतियाँ अपनानी पड़ती हैं। इन नीतियों का उद्देश्य उग्रवाद को नियंत्रित करना और समाज में शांति बनाए रखना होता है। हालांकि, इन नीतियों का प्रभाव नागरिक स्वतंत्रता पर पड़ता है। सुरक्षा बलों की तैनाती, आंदोलन और विरोध प्रदर्शन पर प्रतिबंध, और व्यक्तिगत स्वतंत्रता में कटौती जैसी नीतियाँ लागू होती हैं, जिससे नागरिकों को असुरक्षा और डर का सामना करना पड़ता है। यह स्थिति लंबे समय में लोकतांत्रिक प्रक्रिया और जन अधिकारों की रक्षा में बाधा उत्पन्न करती है।

**4. राजनीतिक ध्रुवीकरण**

धार्मिक उग्रवाद राजनीतिक दलों के बीच ध्रुवीकरण का कारण बनता है। राजनीतिक दल अपनी विचारधारा के अनुसार उग्रवादी समूहों का समर्थन या विरोध करते हैं, जिससे समाज में टकराव की स्थिति उत्पन्न होती है। एक ओर जहां कुछ दल धार्मिक समूहों को अपने पक्ष में करने के लिए उनके धर्म से जुड़ी समस्याओं का समर्थन करते हैं, वहीं दूसरी ओर कुछ दल ऐसे उग्रवादी समूहों का विरोध करते हैं जो समाज के अन्य वर्गों के लिए खतरनाक हो सकते हैं। इससे चुनावी राजनीति में और सामाजिक स्तर पर भी बंटवारा बढ़ता है, जो देश की सामाजिक-राजनीतिक स्थिति को नाजुक बना देता है।

**5. अंतरराष्ट्रीय संबंधों पर प्रभाव**

धार्मिक उग्रवाद का प्रभाव अंतरराष्ट्रीय संबंधों पर भी पड़ता है। कई देशों में उग्रवादी समूहों के कारण बाहरी हस्तक्षेप होता है। यह हस्तक्षेप सुरक्षा कारणों से होता है, जिससे अंतरराष्ट्रीय दबाव और संघर्ष उत्पन्न हो सकते हैं। इसके साथ ही, उग्रवाद के कारण शरणार्थियों की समस्या भी बढ़ती है, क्योंकि धार्मिक उग्रवादी हमले के कारण लोग अपने देश छोड़ने को मजबूर होते हैं। इससे दुनिया भर में मानवाधिकार, शरणार्थी संकट, और आपसी मतभेदों को लेकर तनाव पैदा होता है। यह अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक माहौल में अस्थिरता का कारण बनता है।

**6. चुनावी राजनीति पर प्रभाव**

धार्मिक उग्रवाद का चुनावी राजनीति पर गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। राजनीतिक दल अक्सर धार्मिक भावनाओं को भड़काकर वोट बैंक की राजनीति करते हैं। कुछ दल धार्मिक मुद्दों को प्रमुख बनाकर जनता को अपनी तरफ आकर्षित करते हैं,

जिससे चुनावी परिणामों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इस तरह की राजनीति लोकतांत्रिक प्रक्रिया को विकृत करती है, क्योंकि इसमें मुद्दों की बजाय भावनाओं का उपयोग किया जाता है। इससे राजनीति में पारदर्शिता की कमी होती है और सत्ताधारी दलों की नीतियों में पक्षपाती दृष्टिकोण बढ़ता है। यह राजनीति के लिए खतरे की घंटी होती है, क्योंकि चुनावी प्रक्रिया में विचारधारा की जगह धार्मिक उन्माद को बढ़ावा मिलता है।

**धार्मिक उग्रवाद के प्रभाव को कम करने के उपाय :**

धार्मिक उग्रवाद के प्रभाव को कम करने के लिए व्यापक और सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता है, जो विभिन्न क्षेत्रों और स्तरों पर किए जा सकते हैं। इन प्रयासों में राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षिक, और सांस्कृतिक पहलें शामिल हो सकती हैं। यहाँ पर कुछ प्रमुख उपाय दिए गए हैं जो धार्मिक उग्रवाद के प्रभाव को कम करने में सहायक हो सकते हैं-

**1. समावेशी राजनीति को बढ़ावा देना**

राजनीतिक दलों को अपनी नीतियों में समावेशिता और समानता पर जोर देना चाहिए। विभाजनकारी राजनीति और समुदायों के बीच असहमति को बढ़ावा देने वाली रणनीतियों से बचना चाहिए। इसके बजाय, समग्र राष्ट्रीय पहचान और विविधता को सम्मान देने वाली नीतियाँ अपनानी चाहिए। इससे समाज में शांति और सौहार्द्र बनाए रखने में मदद मिलेगी। जब राजनीतिक नेता सभी समुदायों को समान रूप से सम्मान देते हैं, तो धार्मिक उग्रवाद को पनपने का मौका कम मिलता है।

**2. शिक्षा और जागरूकता**

शिक्षा के माध्यम से युवा पीढ़ी को धार्मिक और सांस्कृतिक सहिष्णुता की शिक्षा दी जा सकती है। स्कूलों और कॉलेजों में बहुसांस्कृतिक और विविधता-आधारित शिक्षा को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। साथ ही, सामाजिक और ऐतिहासिक संदर्भों में धार्मिक सहिष्णुता के उदाहरणों को पाठ्यक्रम में शामिल करना चाहिए। यह छात्रों को न केवल उनके स्वयं के धर्म की बल्कि अन्य धर्मों की भी समझ बढ़ाने में मदद करेगा, जिससे पूर्वाग्रह और घृणा को कम किया जा सकेगा।

**3. धार्मिक संवाद**

विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के बीच संवाद और सहयोग स्थापित करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। धार्मिक नेताओं को इस दिशा में अग्रणी भूमिका निभानी चाहिए। यदि विभिन्न धार्मिक समुदाय आपस में संवाद करते हैं, तो यह न केवल धार्मिक उग्रवाद को कम करेगा, बल्कि सामाजिक समरसता को भी बढ़ावा देगा। इसके लिए इंटर-फेथ संवाद, सम्मेलन, और कार्यशालाओं का आयोजन किया जा सकता है, जहां विभिन्न धर्मों के अनुयायी आपस में मिलकर एक दूसरे की परंपराओं, विश्वासों और दृष्टिकोणों का सम्मान करना सीखेंगे।

**4. आर्थिक सुधार**

धार्मिक उग्रवाद और आतंकवाद का एक बड़ा कारण गरीबी, बेरोजगारी और आर्थिक असमानताएँ हो सकती हैं। जब लोगों को रोजगार के अवसर मिलते हैं और वे अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं, तो वे उग्रवादी विचारधाराओं के प्रभाव से बच सकते हैं। सरकार को ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में आर्थिक विकास योजनाओं को लागू करना चाहिए, जिससे गरीब और पिछड़े वर्गों को सशक्त बनाया जा सके और उनका ध्यान सकारात्मक गतिविधियों में लगा रहे।

**5. सुरक्षा तंत्र को मजबूत बनाना**

धार्मिक उग्रवाद को रोकने के लिए एक सशक्त सुरक्षा तंत्र की आवश्यकता है। पुलिस, सेना और खुफिया विभागों को उग्रवादी गतिविधियों की पहचान करने और उन्हें प्रभावी रूप से नष्ट करने के लिए उन्नत तकनीकी साधनों और प्रशिक्षण की आवश्यकता है। इंटरनेट और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स के माध्यम से उग्रवाद फैलाने वाले समूहों पर कड़ी निगरानी रखी जानी चाहिए।

**6. वैश्विक सहयोग**

धार्मिक उग्रवाद एक वैश्विक समस्या है, जिसे केवल एक राष्ट्र के प्रयासों से नहीं निपटा जा सकता। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर देशों को एकजुट होकर इस समस्या से निपटने के लिए मिलकर काम करना चाहिए। इसके लिए संयुक्त राष्ट्र जैसे अंतरराष्ट्रीय संगठनों का सहयोग और देशों के बीच जानकारी साझा करना जरूरी होगा। इससे वैश्विक स्तर पर उग्रवाद के नेटवर्क और उनकी गतिविधियों पर अंकुश लगाया जा सकेगा।

### 7. मीडिया की भूमिका

मीडिया का एक बड़ा प्रभाव होता है, और इसे जिम्मेदारी से काम लेना चाहिए। उग्रवादी विचारधारा को बढ़ावा देने वाली सामग्री को प्रकाशित करने से बचना चाहिए। इसके बजाय, मीडिया को समाज में शांति, सहिष्णुता, और सहयोग की भावना को बढ़ावा देने वाली सकारात्मक कहानियाँ और कार्यक्रम प्रस्तुत करने चाहिए। मीडिया के माध्यम से धार्मिक सहिष्णुता और सामाजिक एकता को बढ़ावा दिया जा सकता है।

### 8. युवा पीढ़ी को सही दिशा देना

युवा वर्ग उग्रवाद के सबसे बड़े लक्षित समूह होते हैं। अगर उन्हें सही दिशा में मार्गदर्शन नहीं दिया गया, तो वे उग्रवादी विचारधाराओं के प्रभाव में आ सकते हैं। युवाओं को कौशल विकास, रोजगार के अवसर, खेलकूद और अन्य सकारात्मक गतिविधियों में संलग्न करना चाहिए। इससे न केवल वे अपनी आजीविका कमाने में सक्षम होंगे, बल्कि समाज में अच्छे नागरिक के रूप में उनकी भूमिका भी सुदृढ़ होगी।

### 9. तकनीकी निगरानी

आज के डिजिटल युग में, उग्रवादी विचारधारा और नफरत फैलाने वाले संदेश इंटरनेट और सोशल मीडिया के माध्यम से तेजी से फैल रहे हैं। इस पर नियंत्रण पाने के लिए एक मजबूत तकनीकी तंत्र विकसित करना आवश्यक है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स पर धर्म आधारित घृणा और हिंसा भड़काने वाले पोस्ट और कंटेंट को मॉनिटर और हटाने की प्रक्रिया को तेज और प्रभावी बनाना चाहिए।

### 10. समुदाय आधारित पहल

स्थानीय समुदायों को धार्मिक उग्रवाद के खिलाफ कार्रवाई में शामिल करना चाहिए। जब स्थानीय लोग इस मुद्दे को सुलझाने में अपनी भूमिका निभाते हैं, तो यह समस्या के समाधान में अधिक प्रभावी हो सकता है। समुदाय आधारित अभियानों, कार्यशालाओं और जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से धार्मिक उग्रवाद को रोकने में मदद मिल सकती है।

इन उपायों को लागू करके हम धार्मिक उग्रवाद के प्रभाव को कम कर सकते हैं और समाज में शांति, सहिष्णुता, और समरसता को बढ़ावा दे सकते हैं।

## निष्कर्ष

धार्मिक उग्रवाद एक गंभीर समस्या है, जिसका प्रभाव समाज और राजनीति पर गहराई से पड़ता है। यह समस्या केवल सुरक्षा का मुद्दा नहीं है, बल्कि सामाजिक एकता और लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए भी एक बड़ी चुनौती है। धार्मिक उग्रवाद के कारण लोकतांत्रिक व्यवस्था कमजोर होती है, विभाजनकारी राजनीति को बढ़ावा मिलता है, और समाज में ध्रुवीकरण की स्थिति उत्पन्न होती है। इस समस्या से निपटने के लिए समावेशी राजनीति, शिक्षा, धार्मिक संवाद, और आर्थिक सुधार जैसे उपायों की आवश्यकता है। साथ ही, सुरक्षा तंत्र को मजबूत बनाकर उग्रवादी गतिविधियों पर नियंत्रण रखा जा सकता है। यदि इन सभी उपायों को सही तरीके से लागू किया जाए, तो धार्मिक उग्रवाद के प्रभाव को कम किया जा सकता है और एक समावेशी एवं शांतिपूर्ण समाज की स्थापना की जा सकती है।

## संदर्भ

कासवान, एस. (2018). धार्मिक उग्रवाद और राजनीति का द्वंद्व. नई दिल्ली : भारत प्रकाशन।

शर्मा, पी. (2020). लोकतंत्र में उग्रवाद के प्रभाव. मुंबई : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।

वर्मा, ए. (2019). सांस्कृतिक विविधता और सामाजिक एकता. लखनऊ : विश्वविद्यालय प्रकाशन।

Khan, R.(2017).*Religious Extremism and Political Instability:A Global Perspective*. Oxford University Press.

United Nations Reports (2021). *Countering Violent Extremism: Global Challenges and Solutions*.

Ahmed, S. (2020). *Digital Radicalization: A New Age Threat*. Cambridge University Press.

Singh, T. (2021). *Economic Inequality and Its Impact on Social Stability*. Harvard Review.

# परिवार संरचनाओं का बदलता स्वरूप

डॉ. कुमारी भावना*

**सारांश**

परिवार किसी भी समाज की सबसे बुनियादी और महत्वपूर्ण इकाई है। यह केवल रिश्तों का समूह नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मूल्यों का वाहक भी है। परंतु समय, परिस्थितियों और समाज के विकास के साथ परिवार की संरचना और स्वरूप में महत्वपूर्ण बदलाव देखने को मिले हैं। पारंपरिक संयुक्त परिवार, जहां दादा-दादी, माता-पिता, और बच्चे एक साथ रहते थे, अब धीरे-धीरे एकल परिवारों में परिवर्तित हो रहे हैं। इसका मुख्य कारण औद्योगीकरण, शहरीकरण, शिक्षा का बढ़ता स्तर, और महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता में वृद्धि है। आज के समय में लिव-इन रिलेशनशिप, सिंगल पेरेंट परिवार, और समलैंगिक परिवार जैसी नई परिवार संरचनाएं समाज में अपनी पहचान बना रही हैं। ये संरचनाएं व्यक्तिगत स्वतंत्रता, आर्थिक स्वावलंबन और आधुनिक सोच का परिणाम हैं। हालांकि, इन परिवर्तनों ने जहां व्यक्तिगत विकास और स्वतंत्रता को प्रोत्साहित किया है, वहीं परिवार के सामूहिक और भावनात्मक पक्ष पर भी असर डाला है। परिवार संरचनाओं में आए इन बदलावों ने कई सामाजिक चुनौतियां उत्पन्न की हैं, जैसे बुजुर्गों की देखभाल में कमी, बच्चों की परवरिश में भावनात्मक कमी, और पारिवारिक मूल्यों का ह्रास। इसके साथ ही, करियर के प्रति बढ़ती प्राथमिकता और तकनीकी प्रगति ने परिवार के सदस्यों के बीच संवाद और जुड़ाव को भी प्रभावित किया है। इन परिवर्तनों के बावजूद, परिवार आज भी सामाजिक ताने-बाने का अभिन्न हिस्सा बना हुआ है। यह आवश्यक है कि बदलते समय के साथ परिवार अपनी संरचना में लचीलापन लाए और नई पीढ़ियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए पुराने पारिवारिक मूल्यों को संरक्षित करे।

**मुख्य शब्द -** परिवार संरचना, पारंपरिक संयुक्त परिवार, एकल परिवार, लिव-इन रिलेशनशिप, सिंगल पेरेंट परिवार, समलैंगिक परिवार, औद्योगीकरण, शहरीकरण, आर्थिक स्वतंत्रता, व्यक्तिगत विकास

**परिचय**

परिवार किसी भी समाज की सबसे मूलभूत इकाई होती है। यह केवल खून के रिश्तों और भावनात्मक संबंधों का समूह नहीं है, बल्कि यह समाज के आर्थिक, सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों का संरक्षक भी है। बदलते समय, औद्योगीकरण, शहरीकरण और वैश्वीकरण के प्रभाव ने परिवार की संरचना और स्वरूप को गहराई से प्रभावित किया है। आधुनिक समाज में संयुक्त परिवार से एकल परिवार की ओर झुकाव, लिव-इन संबंध, सिंगल पेरेंट परिवार और समलैंगिक परिवार जैसी नई संरचनाएं तेजी से उभर रही हैं। इन परिवर्तनों ने न केवल पारिवारिक जीवन पर, बल्कि सामाजिक ताने-बाने पर भी व्यापक प्रभाव डाला है।

**परिवार का पारंपरिक स्वरूप**

पारंपरिक भारतीय समाज में संयुक्त परिवार की संरचना भारतीय संस्कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक रही है। इसमें दादा-दादी, माता-पिता, बच्चे, चाचा-चाची, ताऊ-ताई और अन्य करीबी रिश्तेदार एक ही छत के नीचे रहते थे। यह संरचना परिवार के सदस्यों के बीच सामूहिकता और आपसी सहयोग के आदर्शों पर आधारित थी। संयुक्त परिवार में हर सदस्य की जिम्मेदारी तय होती थी और संसाधनों का साझा उपयोग किया जाता था। यह प्रणाली आर्थिक स्थिरता प्रदान करने के साथ-साथ सामाजिक और भावनात्मक सुरक्षा का भी माध्यम थी।

संयुक्त परिवार बच्चों की परवरिश के लिए एक आदर्श वातावरण तैयार करता था, जहां उन्हें न केवल माता-पिता, बल्कि पूरे परिवार से स्नेह और मार्गदर्शन मिलता था। वहीं, बुजुर्गों के लिए यह उनकी देखभाल और सम्मान का स्रोत था। पारंपरिक परिवार समाज में नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों का संवाहक होता था, जहां पीढ़ी दर पीढ़ी संस्कार और परंपराओं का आदान-प्रदान होता था। यह परिवार प्रणाली संकट के समय आपसी सहयोग की भावना को बढ़ावा देती थी और समाज में एकता और

* पूर्व शोध छात्रा, समाजशास्त्र, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

स्थिरता बनाए रखने में सहायक होती थी। हालांकि, समय के साथ शहरीकरण, रोजगार के बदलते स्वरूप और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बढ़ती चाह ने पारंपरिक संयुक्त परिवार की इस संरचना को काफी प्रभावित किया है।

**परिवर्तन के कारण**

समाज में पारिवारिक संरचना में परिवर्तन के पीछे कई प्रमुख कारण हैं, जो समय और परिस्थितियों के साथ विकसित हुए हैं। सबसे पहले, औद्योगीकरण और शहरीकरण ने इस बदलाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसरों के चलते लोग अपने ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन करने लगे। इस प्रक्रिया में, संयुक्त परिवारों के स्थान पर छोटे और एकल परिवारों का उदय हुआ। लोग बेहतर जीवन स्तर, सुविधाओं और रोजगार की तलाश में अपने बड़े परिवारों से दूर जाकर अलग घर बसाने लगे। महिलाओं की स्थिति में भी महत्वपूर्ण बदलाव आया है। शिक्षा के बढ़ते स्तर और महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता ने पारिवारिक संरचना को प्रभावित किया है। पारंपरिक भूमिकाओं में बदलाव के साथ, महिलाएं अब केवल गृहिणी की भूमिका तक सीमित नहीं रहीं। वे अब परिवार की मुख्य निर्णायक और आर्थिक सहयोगी बन गई हैं, जिससे परिवार में भूमिका और जिम्मेदारियों के बंटवारे में बड़ा बदलाव आया है।

इसके अलावा, आधुनिक सोच और व्यक्तिगत स्वतंत्रता ने पारंपरिक पारिवारिक ढांचे को चुनौती दी है। नई पीढ़ी अब व्यक्तिगत स्वतंत्रता, निजता और अपने निर्णयों की प्राथमिकता देती है, जिसके कारण संयुक्त परिवारों में रहने की इच्छा कम होती जा रही है। तकनीकी प्रगति ने भी इस बदलाव को तेज किया है। डिजिटल तकनीक और सोशल मीडिया ने पारिवारिक संवाद के पारंपरिक स्वरूप को बदल दिया है, जहां अब शारीरिक उपस्थिति की आवश्यकता कम महसूस होती है। यह स्थिति परिवार के सदस्यों के बीच आपसी जुड़ाव और सामूहिकता को कमजोर कर रही है।

इन सब कारणों ने मिलकर पारंपरिक संयुक्त परिवारों की जगह छोटे, एकल परिवारों को जन्म दिया है। हालांकि, यह बदलाव आधुनिक जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करता है, लेकिन इसके साथ ही समाज में सामाजिक सुरक्षा और सामूहिकता की भावना में कमी भी देखने को मिल रही है।

**परिवार की नई संरचनाएं**

आज के आधुनिक समाज में पारिवारिक संरचना में बड़े बदलाव देखने को मिल रहे हैं। पारंपरिक संयुक्त परिवार की जगह अब विभिन्न प्रकार की नई पारिवारिक संरचनाएं उभर रही हैं, जो सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का परिणाम हैं। ये संरचनाएं आधुनिक जीवनशैली, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और नई सामाजिक स्वीकृतियों को दर्शाती हैं।

**1. एकल परिवार**

शहरीकरण और आधुनिक जीवनशैली ने एकल परिवारों को बढ़ावा दिया है। इन परिवारों में पति-पत्नी और उनके बच्चे शामिल होते हैं। बेहतर रोजगार अवसरों और व्यक्तिगत प्राथमिकताओं के चलते लोग अब छोटे घरों में रहना अधिक पसंद करते हैं। एकल परिवारों में स्वतंत्रता और गोपनीयता को प्राथमिकता दी जाती है। हालांकि, यह संरचना परिवार के अन्य सदस्यों से दूरी बढ़ाती है, जिससे बुजुर्गों की देखभाल और सामूहिकता की भावना कमजोर हो सकती है।

**2. लिव-इन रिलेशनशिप**

समाज में आधुनिक सोच और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बढ़ते प्रभाव ने लिव-इन रिलेशनशिप को बढ़ावा दिया है। इसमें बिना विवाह के जोड़े एक साथ रहते हैं। यह संबंध पारंपरिक विवाह बंधनों से बाहर निकलकर समानता, स्वतंत्रता और आपसी समझ के आधार पर बनाए जाते हैं। हालांकि, इस प्रकार की संरचना को पारंपरिक समाज में अभी भी पूरी तरह से स्वीकृति नहीं मिली है, लेकिन युवाओं के बीच इसका प्रचलन तेजी से बढ़ रहा है।

**3. सिंगल पेरेंट परिवार**

तलाक, पति-पत्नी के बीच अलगाव, या व्यक्तिगत पसंद के कारण सिंगल पेरेंट परिवारों की संख्या में वृद्धि हो रही है। इस संरचना में माता या पिता अकेले बच्चों की परवरिश करते हैं। यह पारिवारिक स्वरूप विशेष रूप से चुनौतीपूर्ण होता है क्योंकि अकेले माता-पिता को आर्थिक, सामाजिक और भावनात्मक जिम्मेदारियां निभानी पड़ती हैं। फिर भी, यह संरचना समाज में अपनी जगह बना रही है और इसे धीरे-धीरे स्वीकृति मिल रही है।

**4. समलैंगिक परिवार**

LGBTQ समुदाय के अधिकारों की बढ़ती स्वीकार्यता और कानूनी मान्यता के साथ समलैंगिक परिवारों का स्वरूप समाज में उभर रहा है। समलैंगिक जोड़े अब अपने बच्चों के साथ परिवार बना रहे हैं, चाहे वे बच्चे गोद लिए गए हों या सरोगेसी के माध्यम से पैदा हुए हों। यह संरचना समाज में समानता और विविधता का प्रतीक है, लेकिन इसे व्यापक रूप से स्वीकृति प्राप्त करने में अभी भी समय लग सकता है।

इन सभी नई पारिवारिक संरचनाओं ने समाज के मूल ढांचे को बदल दिया है। यह परिवर्तन आधुनिक जीवनशैली की आवश्यकताओं और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बढ़ती मांग को प्रतिबिंबित करता है। हालांकि, इन परिवर्तनों के साथ-साथ समाज को नई चुनौतियों का सामना भी करना पड़ रहा है, जैसे कि सामूहिकता और भावनात्मक समर्थन में कमी। इसके बावजूद, ये नई संरचनाएं बदलते समय की आवश्यकता और समाज में नई संभावनाओं को दर्शाती हैं।

**सकारात्मक प्रभाव**

परिवार की नई संरचनाओं ने समाज में कई सकारात्मक प्रभाव डाले हैं, जो समाज के विकास, समावेशिता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बढ़ावा देने में सहायक हैं। पारंपरिक परिवार संरचनाओं से हटकर इन नई संरचनाओं ने कई सामाजिक, मानसिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से बदलाव लाए हैं।

**1. व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता**

नई पारिवारिक संरचनाओं ने व्यक्तियों को अधिक स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता का अनुभव कराया है। एकल परिवारों, लिव-इन रिलेशनशिप्स और सिंगल पेरेंट परिवारों में हर सदस्य को अपनी प्राथमिकताएं तय करने और जीवन को अपनी शर्तों पर जीने का मौका मिलता है। यह स्वतंत्रता व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत निर्णयों में अधिक आत्मविश्वास और संतोष का अनुभव कराती है। इसके अलावा, यह समाज में हर व्यक्ति को अपनी इच्छाओं और जीवनशैली के अनुसार जीने का अधिकार प्रदान करती है।

**2. महिलाओं का सशक्तिकरण और आर्थिक स्वतंत्रता**

महिलाओं की स्थिति में इस बदलाव के कारण महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। पहले जो महिलाएं केवल गृहिणी की भूमिका निभाती थीं, अब वे परिवार की प्रमुख आर्थिक सहयोगी और निर्णय लेने वाली व्यक्तित्व बन गई हैं। महिलाओं के बढ़ते सशक्तिकरण और आर्थिक स्वतंत्रता ने उन्हें सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में नई पहचान दिलाई है। वे अब अपने सपनों को पूरा करने में सक्षम हैं और समाज में बराबरी की स्थिति प्राप्त कर रही हैं।

**3. समाज में विविधता और समावेशिता का बढ़ावा**

नई पारिवारिक संरचनाओं ने समाज में विविधता और समावेशिता को बढ़ावा दिया है। समलैंगिक परिवार और सिंगल पेरेंट परिवार जैसे पारिवारिक ढांचे अब अपनी पहचान बना रहे हैं और धीरे-धीरे समाज में स्वीकृत हो रहे हैं। इस बदलाव ने समाज में उन लोगों के लिए स्वीकार्यता और सम्मान की भावना उत्पन्न की है, जो पारंपरिक परिवार संरचनाओं से बाहर हैं। समलैंगिक और सिंगल पेरेंट परिवारों के अधिकारों की स्वीकृति ने एक समतामूलक समाज की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम बढ़ाया है।

**4. व्यक्तिगत प्राथमिकताओं के सम्मान की संस्कृति**

नई परिवार संरचनाओं के माध्यम से समाज में व्यक्तिगत प्राथमिकताओं और स्वीकृति की संस्कृति को बढ़ावा मिला है। लोग अब पारंपरिक ढांचे से बाहर जाकर अपनी इच्छाओं और आदर्शों के अनुसार परिवार बना रहे हैं। इस प्रकार, विभिन्न पारिवारिक रूपों की स्वीकृति से समाज में सहिष्णुता और समझदारी का माहौल बन रहा है, जहां हर व्यक्ति को अपने जीवन को अपनी शर्तों पर जीने की आजादी है।

इन बदलावों के साथ, परिवारों की नई संरचनाओं ने समाज में प्रगति, समानता और इंसानियत को बढ़ावा दिया है। हालांकि, इस दौरान चुनौतियाँ भी आई हैं, लेकिन इन सकारात्मक बदलावों ने समाज को ज्यादा खुला, लचीला और समावेशी बना दिया है। यह बदलते समय के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने की एक मजबूत दिशा है।

**चुनौतियां और नकारात्मक प्रभाव**

परिवार संरचनाओं में बदलाव ने समाज में कई सकारात्मक प्रभाव डाले हैं, लेकिन इसके साथ ही कुछ महत्वपूर्ण चुनौतियाँ और नकारात्मक प्रभाव भी उत्पन्न हुए हैं। इन बदलावों के परिणामस्वरूप पारंपरिक परिवार ढांचे की कई कमजोरियाँ उजागर हुई हैं, जो सामाजिक और भावनात्मक दृष्टिकोण से नई समस्याओं को जन्म दे रही हैं।

**1. बुजुर्गों की देखभाल में कमी**

संयुक्त परिवारों में बुजुर्गों की देखभाल पारिवारिक ढांचे का महत्वपूर्ण हिस्सा थी, जहां वे न केवल मानसिक बल्कि शारीरिक रूप से भी परिवार के सहयोग और देखभाल का हिस्सा होते थे। लेकिन एकल परिवारों और छोटे परिवारों के बढ़ने से बुजुर्गों की देखभाल में कमी आई है। आजकल के जीवनशैली में युवा परिवार अपने कैरियर और व्यक्तिगत जीवन में इतने व्यस्त हो गए हैं कि बुजुर्गों के लिए समय निकालना मुश्किल हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप बुजुर्गों को अकेलापन और स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसके समाधान के लिए विशेष योजनाओं और वृद्धाश्रमों की आवश्यकता महसूस हो रही है।

**2. बच्चों की परवरिश में चुनौतियाँ**

बच्चों की परवरिश अब पहले जैसी आसान नहीं रही। माता-पिता की व्यस्त दिनचर्या और तकनीकी उपकरणों का बढ़ता उपयोग बच्चों को पर्याप्त भावनात्मक समर्थन और मार्गदर्शन देने में बाधा उत्पन्न कर रहा है। आजकल, बच्चों के पास माता-पिता से संवाद करने का कम समय होता है और वे अधिकतर समय डिजिटल उपकरणों में व्यस्त रहते हैं। यह बच्चों के मानसिक विकास और सामाजिक कौशल के विकास में बाधा डाल सकता है। पारंपरिक परिवारों में संयुक्त प्रयास से बच्चों की परवरिश की जाती थी, जहां दादी-नानी, चाचा-चाची जैसे अन्य परिवार के सदस्य भी उनकी देखभाल करते थे। अब बच्चों को इस तरह के सामूहिक समर्थन का अभाव महसूस हो रहा है।

**3. पारंपरिक पारिवारिक मूल्य और संस्कारों का कमजोर होना**

नई पारिवारिक संरचनाओं के कारण पारंपरिक पारिवारिक मूल्यों और संस्कारों में भी कमी आई है। पहले जहां संयुक्त परिवारों में परिवार के बुजुर्गों से संस्कार, नैतिक शिक्षा और जीवन के महत्वपूर्ण सबक मिलते थे, वहीं अब यह प्रक्रिया कमजोर हो गई है। नए परिवार ढांचे में हर सदस्य अपनी स्वतंत्रता को प्राथमिकता देता है, जिससे बच्चों को पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों का सही तरीके से प्रशिक्षण नहीं मिल पाता है। यह समाज में नैतिक बुराइयों और अपराधिक प्रवृत्तियों को बढ़ावा दे सकता है।

**4. सामाजिक अलगाव**

सामाजिक अलगाव और मानसिक एकांत की समस्या भी बढ़ रही है। जबकि परिवार के सदस्य शारीरिक रूप से एक ही घर में रहते हैं, लेकिन तकनीकी प्रगति और आधुनिक जीवनशैली ने उनके बीच संवाद और संबंधों को सीमित कर दिया है। लोग अपने स्मार्टफोन, लैपटॉप और अन्य तकनीकी उपकरणों में इतने व्यस्त हो जाते हैं कि वे एक-दूसरे के साथ वास्तविक संवाद और संबंध स्थापित नहीं कर पाते। इसके परिणामस्वरूप परिवार के सदस्य मानसिक रूप से एक दूसरे से अलग हो सकते हैं, और यह अकेलेपन और सामाजिक असंवेदनशीलता का कारण बन सकता है। इस बदलाव के कारण पारिवारिक सदस्य एक-दूसरे के प्रति अपनी भावनाओं और विचारों को व्यक्त करने में कम सक्षम होते हैं, जो लंबे समय में रिश्तों में दरार पैदा कर सकता है।

**5. मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रभाव**

नई पारिवारिक संरचनाओं के कारण मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। शहरी जीवन की तेजी और एकल परिवारों की संरचना ने तनाव और चिंता की समस्याओं को बढ़ावा दिया है। बुजुर्गों के अकेलेपन, बच्चों की मानसिक विकास की चुनौतियाँ और पारिवारिक संवाद की कमी मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बन सकती हैं। इसके अतिरिक्त, परिवार के भीतर सामूहिक देखभाल और सहयोग का अभाव शारीरिक स्वास्थ्य के मुद्दों को भी जन्म दे सकता है, जैसे कि बुजुर्गों और बच्चों की उचित देखभाल का न होना।

इन चुनौतियों के बावजूद, समाज में बदलाव की प्रक्रिया को रोकना संभव नहीं है। हालांकि, इन समस्याओं का समाधान खोजने के लिए सरकारों, समाज और परिवारों को मिलकर काम करना होगा, ताकि एक स्वस्थ और संतुलित पारिवारिक जीवन की दिशा सुनिश्चित की जा सके।

**समाधान**

परिवार संरचना में परिवर्तन समाज के विकास का स्वाभाविक हिस्सा है, और यह बदलते समय के अनुरूप एक अनिवार्य प्रक्रिया है। पारंपरिक संयुक्त परिवारों की जगह अब छोटे परिवारों, सिंगल पेरेंट परिवारों, लिव-इन रिलेशनशिप्स जैसी नई संरचनाओं ने ली है। हालांकि, इन परिवर्तनों ने समाज में कई सकारात्मक बदलाव लाए हैं, जैसे व्यक्तिगत स्वतंत्रता, महिलाओं का सशक्तिकरण, और विविधता का सम्मान, लेकिन इसके साथ कुछ चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। बुजुर्गों की देखभाल, बच्चों की परवरिश, और परिवार के भीतर संवाद की कमी जैसी समस्याएं इन बदलावों के साथ आई हैं।

इन समस्याओं का समाधान खोजना अत्यंत आवश्यक है, ताकि परिवारों के भीतर संतुलन और सामूहिकता बनी रहे और साथ ही नई पीढ़ी की आवश्यकताओं को भी पूरा किया जा सके। परिवारों को बदलते समय के अनुसार अपनी संरचना और दृष्टिकोण में लचीलापन लाना चाहिए। यह जरूरी है कि पारंपरिक मूल्यों और संस्कारों को संरक्षित रखते हुए, नई पीढ़ी की जीवनशैली, सोच और स्वतंत्रता का सम्मान किया जाए।

**1. बुजुर्गों और बच्चों के लिए विशेष योजनाएं**

सरकार और समाज को बुजुर्गों और बच्चों के लिए विशेष योजनाएं और सेवाएं विकसित करनी चाहिए। बुजुर्गों के लिए वृद्धाश्रमों के अलावा, देखभाल की योजनाएं और समुदाय आधारित सहायता प्रणाली स्थापित करनी चाहिए। बच्चों के लिए भी सुरक्षा, मानसिक और भावनात्मक सहयोग प्रदान करने वाली योजनाएं बनानी चाहिए। इसके अतिरिक्त, बच्चों को माता-पिता और परिवार के अन्य सदस्य से भावनात्मक समर्थन और मार्गदर्शन देने के लिए परिवारों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

**2. परिवार के सदस्यों के बीच संवाद और जुड़ाव बढ़ाना**

परिवार के भीतर संवाद और जुड़ाव को बढ़ावा देने के लिए सामूहिक गतिविधियों और समय बिताने की आदतें विकसित की जानी चाहिए। परिवारों को एक-दूसरे के साथ गुणवत्ता समय बिताने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, ताकि वे आपस में भावनात्मक रूप से जुड़े रहें। तकनीकी उपकरणों के बढ़ते उपयोग को संतुलित करने के लिए परिवार के सदस्यों को आमने-सामने बातचीत और सामाजिक गतिविधियों को प्राथमिकता देने की आवश्यकता है।

**3. पारंपरिक और आधुनिक मूल्यों का संतुलन**

परिवारों को पारंपरिक मूल्यों और संस्कारों को संरक्षित रखते हुए आधुनिक समय की आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास करना चाहिए। यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि परिवार के हर सदस्य को अपने निर्णयों में स्वतंत्रता मिले, लेकिन साथ ही उन्हें पारिवारिक और सामाजिक जिम्मेदारियों का भी अहसास हो। इससे न केवल परिवारों में सामूहिकता बनी रहेगी, बल्कि समाज में सामूहिक जिम्मेदारी का बोध भी होगा।

**4. समाज में समावेशिता को बढ़ावा देना**

सरकार और समाज को समलैंगिक और सिंगल पेरेंट परिवारों जैसे नए परिवार ढांचे को भी स्वीकार करना चाहिए और उन्हें समाज में समान अधिकार देने चाहिए। परिवारों की विविधता को समझते हुए, समाज को एक ऐसे वातावरण की ओर बढ़ने की आवश्यकता है जहां हर परिवार का सम्मान किया जाए, चाहे उनकी संरचना कैसी भी हो।

समाज के विकास के साथ परिवार संरचनाओं में बदलाव स्वाभाविक है, लेकिन इसके साथ उत्पन्न होने वाली चुनौतियों का समाधान ढूंढने के लिए सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता है। सरकार, समाज और परिवारों को मिलकर इन समस्याओं पर ध्यान देना चाहिए, ताकि बदलते समय में परिवार संरचनाओं का संतुलित और समृद्ध रूप स्थापित किया जा सके।

**निष्कर्ष**

परिवार संरचनाओं में परिवर्तन समाज के विकास और बदलते मूल्यों का स्वाभाविक परिणाम है। पिछले कुछ दशकों में पारंपरिक संयुक्त परिवार की जगह छोटे परिवारों, एकल माता-पिता परिवारों, लिव-इन रिलेशनशिप्स और समलैंगिक परिवारों जैसी नई संरचनाओं ने ली है। यह बदलाव समाज के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के साथ जुड़ा हुआ है। हालांकि, इन परिवर्तनों के बावजूद, परिवार आज भी समाज की सबसे महत्वपूर्ण और आधारभूत इकाई बना हुआ है, जो व्यक्तियों के मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक विकास के लिए आवश्यक है। परिवार संरचना में बदलाव ने जहां समाज में व्यक्तिगत स्वतंत्रता, महिलाओं का सशक्तिकरण और विविधता को बढ़ावा दिया है, वहीं इसके साथ कुछ  से व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता, और तकनीकी प्रगति, को भी स्वीकार करना और उनका सम्मान करना आवश्यक है। यह संतुलन ही परिवारों और समाज के स्वस्थ विकास का आधार बन सकता है। परिवार की यात्रा समाज के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के साथ निरंतर जारी रहेगी। समय के साथ परिवारों की संरचना बदल सकती है, लेकिन परिवार का मौलिक उद्देश्यकृव्यक्तिगत और सामूहिक भलाई, प्यार, और सहयोगकृहमेशा कायम रहेगा। इस बदलाव के साथ हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि परिवार की भूमिका समाज में सकारात्मक बनी रहे और प्रत्येक सदस्य को समान अवसर और सम्मान मिले। यही परिवार और समाज के समृद्ध और समतामूलक विकास की दिशा होगी।

## संदर्भ

सिंह, आर. (2020). भारतीय समाज में परिवार की संरचना का बदलता स्वरूप. नई दिल्लीरू प्रकाशन भवन।

शर्मा, पी. (2018). आधुनिक समाज और पारिवारिक मूल्य. मुंबईरू यूनिवर्सिटी प्रेस।

गुप्ता, एस. (2019). परिवार संरचना और समाजशास्त्र. चेन्नईरू नेशनल पब्लिशर्स।

Government of India. (2021). *Family Welfare Statistics in India*. Ministry of Health and Family Welfare.

World Bank. (2022). *Urbanization and Family Structure*. Retrieved from worldbank.org

# भारतीय एवं पाश्चात्य रंगमंच की प्रमुख अवधारणाएँ

**शैलजा दुबे***

**प्रस्तावना**

केवल भारतवर्ष में ही नहीं वरन् विश्व के सभी सभ्य देशों में नाटक सदा से लोकानुरंजन का प्रमुख साधन रहा है। वाङ्मय के विभिन्न रूपों में नाटक ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसी लिए कहा गया है-

**काव्येषु नाटकं रम्यम्**

[काव्य के सब रूपों में नाटक ही सबसे अधिक रमणीय है] और उसका कारण यह है कि नाटक में काव्य के अतिरिक्त गीत, वाद्य, नृत्य, नृत्त, आलेख्य, वेश-विन्यास, दृश्य, अभिनय आदि अनेक कलाओं का एक साथ रस मिलने के अतिरिक्त काव्यानन्द भी प्राप्त होता चलता है। सब प्रकार की रुचिवाले लोग नाटक से समान आनन्द प्राप्त कर लेते हैं, इसी लिए महाकवि कालिदास ने अपने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक के प्रथम अंक में नाट्याचार्य गणदास से नाटक की प्रशंसा में कहलाया है-

**नाटचं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम् ।**

[भिन्न रुचिवाले लोगों के लिए प्रायः नाटक ही ऐसा मनोरंजन है जिसमें सबको समान रूप से आनन्द मिलता है।]

शारदातनय ने अपने 'भावप्रकाशन' के अष्टम अधिकार में विस्तार से बताया है कि सब प्रकार के लोगों को नाट्य से किस प्रकार आनन्द मिलता है। उसने कहा है- लोग अनेक रुचि और स्वभाव के होते हैं और इसी मानव-स्वभाव के आधार पर नाट्य की रचना भी की जाती है। इसीलिए लोग अपना-अपना काम करते हुए भी नाटक में अपने शिल्प, श्रृंगार, व्यवसाय, क्रिया और वाणी सब कुछ पा लेते हैं। यही कारण है कि कामी, चतुर, सेठ, विरागी, शूर, ज्ञानी, बड़े-बूढ़े लोग, रस और भाव के पारखी गुणी-जन, यहाँ तक कि बालक, मूर्ख और स्त्रियों को भी नाट्य में रस मिलता है, क्योंकि नाटक में उन्हें भी अपनी-अपनी रुचि के अनुसार सामग्री मिल जाती है। तरुणों को काम-विलास की बातों में, चतुर लोगों को नीति की बातों में, धनिकों को द्रव्योपार्जन की बातों में, विरागियों को मोक्ष की बातों में, वीरों को बीभत्स, रौद्र और युद्ध की बातों में, बड़े-बूढ़ों को धर्म की कथाओं में और विद्वानों को सब प्रकार की सात्त्विक बातों में आनन्द मिलता है, यहाँ तक कि बालक, मूर्ख तथा स्त्रियों को हँसी-विनोद की बातें सुनने और नटों की वेश-भूषा देखने से ही आनन्द प्राप्त हो जाता है।

**बीज शब्द:** नाट्यशास्त्र, लोकानुरंजन, मानवीय संवेदना, कलात्मक अभिव्यक्ति, नानाविद् अनुभूतियाँ, नाट्याभिनय, यथार्थ अनुकरण, रंगशिल्प, प्रेक्षक, साधारणीकरण।

**शोध प्रविधि:**

प्रस्तुत शोध आलेख में विश्लेष्णात्मक और तुलनात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है।

* पीएच.डी (हिंदी), हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, मोबाइल नंबर- 8851921058, 8527598347

ईमेल - shailjadubey25101997@gmail.com

**शोध आलेख:**

**भारतीय रंगमंच:**

भारत में रंगमंच का इतिहास बहुत पुराना है। ऐसा माना जाता है कि नाट्यकला का विकास सर्वप्रथम भारत में ही हुआ। ऋग्वेद के कतिपय सूत्रों में यम और यमी, पुरुरवा और उर्वशी आदि के कुछ संवाद हैं। इन संवादों में लोग नाटक के विकास का चिह्न पाते हैं। अनुमान किया जाता है कि इन्हीं संवादों से प्रेरणा ग्रहण कर लोगों ने नाटक की रचना की और नाट्यकला का विकास हुआ। नाटक मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम है और रंगमंच संवदेनाओं को प्रेक्षक तक पहुंचाने का एक समर्थ साधन। मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति रही है कि वह अपने भावों, विचारों को एक दूसरे तक पहुंचाये। सम्भवतः रंगमंच के मूल में यही अवधारणा है। भारतीय रंगमंच पर प्रकाश डालने वाला भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' सर्वप्रथम कृति है।

रंगमंच जीवन की घटनाओं को सजीव रूप मे उपस्थित करता है।

प्रेक्षक के समक्ष घटनायें वास्तविक रूप से घटित होती है। रंगमंच के माध्यम द्वारा प्रेक्षक की भावनायें मुख्य रूप से उत्तेजित होती है और उसमें तत्सम्बन्धी संवेदनायें उभर आती हैं जिसे भरतमुनि ने साधारणीकरण कहा है जिसके मूल में विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों का संयोग रहता है जिससे प्रेक्षक के हृदय में रस की निष्पत्ति होती है। इसी आशय का समर्थन दशरूपककार ने भी किया है।

रंगमंच के संबंध में अपना मत व्यक्त करते हुए नेमिचन्द्र जैन ने लिखा है कि- "रंगमंच कलात्मक अभिव्यक्ति का ऐसा माध्यम है जिसमें मनोरंजन का अंश अन्य कलाओं की तुलना में अपेक्षाकृत सबसे अधिक है। रंगमंच पर प्रदर्शित नाटक प्रेक्षकों का रंजन करके ही सम्पूर्ण और सफल होता है और अपना उद्देश्य पूरा करता है, किन्तु वह मनोरंजन का ऐसा साधन और कलात्मक अभिव्यक्ति का ऐसा रूप है जिसके द्वारा हम जीवन की नानाविद् अनुभूतियों का श्रृद्रतम भावोवेगों तथा भावदशाओं और उनके विविध शारीरिक तथा अन्य मानसिक प्रभावों का, लगभग प्रत्यक्ष रूप से सामना करते है। एक प्रकार से यह सभी कलात्मक अभिव्यक्तियों के अनुशीलन द्वारा होता है, पर जितनी तीव्रता से, तथा जितने व्यापक रूप में, अधिक से अधिक व्यक्तियों का एक साथ, यह रंगमंच पर नाट्याभिनय द्वारा होता है उतना और कहीं नहीं।"

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ने रंगमंच को मानव की एक आदिम प्रवृत्ति माना है जिसके बिना वह कभी नहीं रह सकता है, "रंगमंच एक मानव प्रवृत्ति है- अनिवार्य, आदिम सत्य जिसकी तुलना मानव संस्कृति में उपलब्ध कोई अन्य विभूति नहीं कर सकती।" लक्ष्मीनारायण लाल ने रंगमंच को एक अमूर्त सत्य माना है। रंगमंच पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा है कि "रंगमंच एक भाव है, एक अनुभूति है, जिसकी अपनी असीम व्यापकता और गहराई है। इसके मूल भाव और इसकी सम्पूर्ण प्रवृत्ति के साथ मनुष्य जन्म लेता है।" साथ ही लक्ष्मीनारायण लाल ने रंगमंच की प्रकृति को भी स्पष्ट करने की चेष्ठा की है, अपने प्रत्यक्ष अर्थों में रंगमंच किसी विशेष वस्तु को अभिनय द्वारा प्रदर्शन करने की कला है। इसके लिए न किसी विशेष रंगभवन की आवश्यकता है न मंच की, न किसी रंगशिल्प की। क्योंकि रंगमंच की प्रतिष्ठा, इसकी रचना, इसका प्रयोग कहीं भी किसी भूमिखण्ड पर हो सकता है। वस्तुतः यही रंगमंच की मूल प्रकृति है।

**भारतीय रंगमंच का उद्भव -** भारतीय रंगमंच पर प्रकाश डालने वाला भरत मुनि कृत "नाट्यशास्त्र' सर्वप्रथम कृति है। उनकी रंगमंचीय अवधारणा के मूल में धार्मिक भाव प्रेरक तत्व है। इसके उद्भव में यज्ञों का प्रमुख योगदान रहा है।

भरत का 'नाट्यशास्त्र इस प्रमाण की पुष्टि करता है।' उनके वर्णनों के अनुसार जब सर्वप्रथम नाटक का अभिनय प्रारम्भ हुआ तब वहां एकत्रित दानव क्रुद्ध हो गये एवं उसे असफल बनाने के लिये विभिन्न प्रकार का उत्पात मचाना प्रारम्भ कर दिया। अभिनय में बाधा उत्पन्न हो गई। सूत्रधार एवं अन्य अभिनयकर्ता की चेतना ही जाती रही। तत्पश्चात इन्द्र ने अपने उत्तम ध्वज के द्वारा रंगपीठ पर उपस्थित असुरों को मार-मार कर जर्जर कर दिया। तदुपरान्त ब्रह्मा के पास सभी देवता गये और तब ब्रह्मा ने सर्वगुण सम्पन्न नाट्य गृह की रचना का आदेश दिया। विश्वकर्मा ने सर्वगुण युक्त नाट्य-मण्डप की रचना की। तदन्तर ब्रह्माजी ने नाट्यगृह की रक्षा के लिये विभिन्न देवताओं को विभिन्न स्थानों पर नियुक्त किया। यथा मण्डप की रक्षा के लिये चन्द्रमा को, नेपथ्य भूमि की रक्षा के लिये सूर्य को, आकाश में वरूण, रंगवेदी में अग्नि एवं वाद्यों की रक्षा के लिये मेघों को नियुक्त किया।

इसी वर्णन में भरत ने रंगशालाओं की स्थिति की ओर भी प्रकाश डाला है। 'नाट्यशास्त्र' के अन्तर्गत आकार और परिमाण के आधार पर तीन प्रकार की रंगशालाओं (रंगमंच) का वर्णन किया है। इनमें भिन्न-भिन्न प्रकार के नाटकों के अभिनय किये जाने का संकेत भी है। यथा देवताओं के अभिनय के लिये ज्येष्ठ मण्डप (प्रेक्षागृह) राजाओं के लिये मध्यम और सामान्य लोगों के अभिनय के लिये कनिष्ठ प्रेक्षागृह का उल्लेख किया है। उपर्युक्त नाट्य-मण्डलपों की परिमाण भी नाट्यशास्त्र प्रस्तुत करता है। परिमाणों की आवश्यकता इसलिए हुई कि अपरिमाणिक रंगमंच में दृश्यों का स्पष्ट न होने तथा स्वरों के उचित निधार्रण न होने का भय बना रहता।

आकार के आधार पर ये रंगशालाएं तीन प्रकार की होती थी- विकृष्ट (आयताकार), चतुश्र (वर्गाकार), त्रयश्र (त्रिभुजाकार) और इन प्रकार के ज्येष्ठ, मध्यम तथा अवर तीन प्रकार के परिणाम है। ज्येष्ठ मण्डप, एक सौ आठ हाथ, मध्यम चौसठ हाथ और कनिष्ठ बत्तीस हाथ का होता है।

**पाश्चात्य रंगमंच:**

पाश्चात्य देशों में 'रंगमंच' थियेटर के नाम से जाना जाता है। थियेटर मे यथार्थ अनुकरण का प्रेक्षक को बोध होता है जिससे वह साधारणीकृत होता है।

क्रोंचे ने रंगमंच को अधिक महत्व नहीं दिया है। उसका कथन है कि मन पर ही नाटक का प्रभाव मूलरूप से पड़ता है। प्लेटो, अरस्तू इत्यादि प्राचीन विद्वान रंगमंच और नाटक के पारस्परिक सम्बन्ध को स्वीकार करते हैं। आधुनिक पाश्चात्य नाटककारों ने और नाट्य समीक्षकों ने रंगमंच को मानव जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता बताया है। उनकी दृष्टि में इतना सरल कोई भी माध्यम नहीं जो समग्र रूप से शीघ्रातिशीघ्र मानव जीवन को प्रभावित कर सके। इससे जीवन के हर मोड़ पर कुछ ऐसी आकृतियां उभर आती हैं जो जीवन और जगत की वास्तविक समीक्षा प्रस्तुत करती हैं।

पाश्चात्य देशों में जिस प्रकार नाटक का विकास हुआ उसी प्रकार रंगमंचीय टेकनिक का भी। फलस्वरूप आज दुनिया के हर कोने में रंगमंच का एक अनोखा रूप दिखाई पड़ता है। यूरोपीय देशों में 'थियेटर' की सफलता में प्रेक्षक (ऑडियन्स) का योगदान महत्वपूर्ण माना गया है। फ्रैन्सिस फर्गुसन ने भी इसी महत्व को अपनी पुस्तक 'द आइडिया ऑफ थियेटर' में प्रतिपादित किया है। वस्तुतः रंगमंच की सफलता में नाटक, नाटककार, कलाकार, प्रेक्षक की भूमिकायें समुचित रूप से आवश्यक है।

आज का 'थियेटर' मानव जीवन के आन्तरिक संघर्ष के साथ ही सांसारिक सम्बन्धों एवं घुटन का चित्रण करता है। केवल चरित्रों का ही अध्ययन नही करता। संभवतः इसी मत की पुष्टि राबर्ट डब्ल्यू कैरिगन ने अपनी पुस्तक 'द माडर्न थियेटर' में की है। शेक्सपीयर ने रंगमंच को दर्पण की संज्ञा प्रदान की है। इसी प्रकार पाश्चात्य देशों में रंगमंच' के लिये

ही 'थियेटर' शब्द का प्रयोग किया गया जो नाटक (ड्रामा) की तरह ही व्यापक अर्थ रखता है। इसी आधार पर 'हिन्दू रंगमंच' या 'ग्रीक थियेटर' नाम पड़ा। वस्तुतः रंगमंच में उस समूचे युग के नाटककार अभिनेता, प्रस्तुतकर्ता, निर्देशक, सूत्रधार और सामाजिक रसभोगी और उनके देशकाल सभी कुछ यहाँ समन्वित हैं।

**रोम के नाटक**

रोम के नाटकों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कथा है कि जब ३६४ ई० पू० में रोम में महामारी का प्रकोप हुआ उस समय रोमवालों ने इत्रूरिया के लूदियों को नृत्य और अभिनय के द्वारा महामारी दूर करने का निमंत्रण दिया। यह बात सत्य न भी हो तब भी रोम के नाटकों पर इत्रूरियावालों का बड़ा प्रभाव था और यह बहुत सम्भव है कि वहाँ की नाटकीय कृतियाँ फेसेनाइन पद्यों से ही प्रादुर्भूत हुई हों। इसी प्रकार अतेला के तास्तन नगर में सम्भवतः यूनानी प्रभाव से ही 'फ़ेबुला अतेलाना' नाम का एक ऊटपटाँग प्रकृति का नाटक प्रचलित हुआ और इत्रूरिया के लूदियों के बेढंगे विनोद से भरे हुए फेसेनाई पद्यों के मेल से 'सतूरा' नामक नाटकीय रूप विकसित हुआ जिसमें वंशी के साथ अन्य वाद्यों और अभिनय की शैलियों का प्रयोग हुआ। किन्तु ये सभी अटकलें ही हैं।

**चीनी नाटक**

एक मत यह है कि चीनी नाटक ईसा से अठारह शताब्दी पहले प्रयुक्त किये जाते रहे। दूसरा मत यह है कि ५८० ईसवी में वांग ते नामक चीनी सम्राट् ने नाटक का आविष्कार किया। किन्तु अधिकांश विद्वान् इसका श्रेय ७२० ईसवी के सम्राट् यूवेन्तशून को देते हैं। त-आङ परिवार के (७२०-९०० ईसवी) सम्राटों ने त्साव, वेनखि नाम के वीर नाटक लिखवाये थे। इसके पश्चात् शुंग परिवार वालों ने खिव नाम के नाटक लिखवाये। चीनी नाटकों की उत्पत्ति नृत्य और गीत के संयोग से मानी जाती है। आठवीं शताब्दी ईसवी में चीन में फ-आऊ परिवार के एक सम्राट् ने 'नाशपाती का उद्यान' नाम की एक संगीत-परिषद् भी स्थापित की थी जिसमें बाद को नाटक की भी चर्चा होने लगी किन्तु वास्तविक नाट्यकला वहाँ बहुत पीछे प्रवर्तित हुई। वहाँ के सभी नाटक सद्गुणों का प्रचार और उच्च आदर्शों की प्रशंसा के लिए लिखे गये, इसलिए वे सब रूढ बने रहे।

**जापानी नाटक**

जापानियों का कथन है कि सन् ८०५ ई० में ज्वालामुखी के फटने से जब पृथ्वी धंसने लगी तब उसकी रक्षा के लिए जो सम्बासों नामक नृत्य प्रचलित किया गया वही जापानी नाटक का मूल है, किन्तु प्राचीन विषयों के लेख (कोंजिके ७१२ ईसवी) में एक कबूरा नाम के दैवी संगीत का वर्णन दिया हुआ है जो सम्भवतः परस्पर देवताओं के बीच या उनके सम्मुख गाया जानेवाला गीत रहा होगा। यद्यपि जापानी नाटकों में कथाएँ जापानी ही रहती हैं किन्तु कहा जाता है कि छठी शताब्दी के अन्त में हादाकावत्सु नाम के एक चीनी ने जापानियों के निमंत्रण पर विनोदात्मक उत्सव के रूप में तेतीस नाटक लिखकर जापानी नाटक का श्रीगणेश किया। सन् ११०८ में इस्सोनो लोलजी नाम की जापानी स्त्री ने भी नाटक का एक रूप चलाया था, जिसके कारण जापानी लोग उसे जापानी नाटक की माता कहते हैं। वह पुरुषों का वेष धारण करके नृत्य या अभिनय (बोरेकोमाइ) किया करती थी। किन्तु सर्वसम्मति से जापानी नाटक के प्रथम प्रयोग का श्रेय सरुवाका काडबुरो को दिया जाता है, जिसने १६२४ में ये-दो नगर में पहली रंगशाला स्थापित की।

**पाश्चात्य रंगमंच का उद्भव -** पाश्चात्य रंगमंच के प्रादुर्भाव के मूल में भी धार्मिक उत्सवों का ही प्रमुख योगदान है। यूनान में भी रंगमंच का अविर्भाव धार्मिक उत्सवों से हुआ। धार्मिक उत्सवों के अवसर पर डायोनिसस और बेकस देवता की पूजा होती थी। लोग बसंत और शीतकाल में पूजा के ये उत्सव मनाया करते थे। पुरोहित देवता का रूप

धारण करता था और कोरस प्रारम्भ होता था। धीरे-धीरे कोरस संवाद रूप में परिवर्तित हो गया और साथ ही उसमें पात्रों और गीतों का समावेश हो गया। नाटकों के प्रदर्शन के लिये "थियेटर ऑफ डायोनिसस' का निर्माण हुआ तथा स्काइलस, सोफोक्लीज, यूरोपीडिज और एकरिस्टोफेन्स के नाटकों का अभिनय होने लगा। आगे चलकर नाटकों का विकास कामदी और त्रासदी दो नाट्य रूपों में होने लगा।

**भारतीय और पाश्चात्य रंगमंच की अवधारणा:**

**देव संस्कृति:**

भारतीय रंगमंच को देव संस्कृति से जोड़कर देखा जाता है अर्थात् भारतीय रंगमंच के उद्भव की जो कथा है वह इस प्रकार है कि, सतयुग बीत जाने पर त्रेतायुग का प्रारंभ हुआ जिसमें देवताओं ने इन्द्रादि को नेता बनाकर ब्रह्मा जी के पास जाकर प्रार्थना की, कि हमें मनोविनोद का ऐसा साधन चाहिए जो दृश्य होने के साथ-साथ श्रव्यात्मक हो, तब ब्रह्मा जी ने 'नाट्यशास्त्र' की रचना की जिसे 'पंचमवेद' कहा जाता है।

पश्चिम में डायनोसिस देवता के सम्मान में नाट्य की उत्पत्ति हुई। डायनोसिस वहाँ के प्रमुख देवता हैं। यूनान के लोग डायनोसिस की समाधि के चारों ओर समूह में नृत्य करते थे, उसके जीवन से जुड़े मंत्रों प्रसंगों का उच्चारण करते थे जिसे 'डिथिरैम्ब' मंत्र कहा जाता था। किसी दिन एक व्यक्ति समूह से बाहर निकल आया और उन मंत्रों का अपने अभिनय से दृश्य रूप रचने लगा और इस तरह पश्चिम में नाट्य की उत्पत्ति हुई।1

**अनुकीर्तनम:**

भारतीय रंगमंच में माना जाता है कि नाटक में तीनों लोकों के भावों का समावेश होता है। ब्रम्हा जी ने कहा है कि नाटक में 'त्रैलोकस्यभावानुकीर्तनम' अर्थात् जिसमें तीनों लोकों के भावों का समावेश हो। धर्म परायणों के लिए इसमें धर्म है, काम के प्रयोजनों में प्रवृत्ति रखने वालों के लिए इसमें काम है, दुर्विनीतो के लिए दंड व्यवस्था तथा मदमत्त व्यक्तियों को दमन करने की क्रियाएँ हैं, यह नपुंसकों में धृष्टता का तथा अपने को वीर समझने वाले मनुष्यों में उत्साह का उत्पादक है, अबोध जनो को ज्ञान प्रदान करने वाला तथा विद्वानों के ज्ञान को बढ़ाने वाला है, यह ऐश्वर्यशाली प्रभुओं के लिए विलास, दुख से पीड़ित व्यक्तियों के लिए स्थिरता, अर्थाश्रित व्यक्तियों के लिए अर्थ तथा विकल चित्त व्यक्तियों के लिए धीरज देने वाला है। यह अनेक प्रकार के भावों से समन्वित विभिन्न अवस्थाओं वाला तथा लोक व्यवहार का अनुकरण करने वाला है।

पश्चिम में इसे अनुकरण सिद्धांत से जोड़कर देखा जाता है। वहाँ माना जाता है कि जीवन मूलतः अनुकरण है। इसलिए अरस्तु ने अपने ग्रंथ 'पोएटिक्स' में अनुकरण सिद्धांत पर बहुत बल दिया है। वहाँ के प्रमुख साहित्यकार या नाटककार इसी अवधारणा को मूल मानते हैं। पश्चिम में मनुष्य केंद्र है। हमारे यहाँ समग्र केंद्र में है, सर्व का समावेश होता है। इसलिए सबका हित हो ऐसा भाव लेकर ही नाटककार नाटक लिखता है।

**कलाएँ:**

नाट्य में 64 कलाएँ हैं। भरतमुनि नाट्यशास्त्र में लिखते हैं कि- ऐसा कोई ज्ञान नहीं, कोई शिल्प नहीं, कोई विधा नहीं, कोई कला नहीं, कोई योग नहीं, कोई कर्म नहीं, जो नाटक में ना हो।

**न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।**

**नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन्न यन्न दृश्यते।।**

पश्चिम में विज्ञान को महत्व दिया गया है, वहाँ सत्य प्रमुख नहीं है, वहाँ विज्ञान ने जो कहा वही सत्य माना जाता है।

**रस और त्रासदी:**

भारतीय रंगमंच में नाटक का परिसीमन रस से होता है। हमारे यहाँ मनुष्य का जन्म भी पुण्य कर्मों से होता है, इसलिए जब हम किसी की मृत्यु पर जाते हैं तो सफेद रंग के वस्त्र धारण करते हैं क्यूंकि सफेद रंग शांति का प्रतीक माना जाता है। यहाँ मृत्यु के पश्चात भोज का आयोजन किया जाता है, क्योंकि माना जाता है कि मृत्यु के पश्चात पुनर्जन्म हो जाता है। परन्तु पश्चिम में मृत्यु को दुख या त्रासदी का कारण माना जाता है इसलिए जब वहाँ किसी की मृत्यु पर जाते हैं तो काले रंग के वस्त्र धारण करते हैं। उनका मानना है कि पुनर्जन्म नहीं होता इसलिए वे शरीर के अवशेषों को भी ताबूत में गाढ़ कर रखते हैं। पश्चिम में मनुष्य संघर्ष करते-करते टूटता हुआ मृत्यु को प्राप्त होता है, इसलिए पश्चिमी रंगमंच में त्रासदी को महत्व दिया गया है।

**कालगणना:**

भारतीय रंगमंच और उसकी प्राचीनता का कोई अनुमान नहीं है। ग्रीक लोग भी भारत से सीख-सीखकर जाते रहें हैं। पश्चिमी रंगमंच की कालगणना केवल 600 ईसापूर्व की है। जिस तरह हमारे यहाँ 'नाट्यशास्त्र' को आधार बनाया गया है उसी प्रकार वहाँ अरस्तू के 'पोएटिक्स' को आधार बनाया गया है, जिसकी प्राचीनता ज्यादा पुरानी नहीं लगती है।

उपयुक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय एवं पाश्चात्य रंगमंच की अवधारणा कहीं-कहीं सामान्यतः तो कहीं-कहीं असामान्यतः सी प्रतीत होती है। रंगमंच बुनियादी तौर पर जीवन और जगत की व्याख्या करता है यह मनुष्य की भावात्मक एकता का सबल एवं सशक्त माध्यम है। रंगमंच वास्तव में हमारे मूल आदिम आवेगों और प्रवृत्तियों को जागृत करके उन्हें एक सामूहिक सूत्र में बांधता है और इस प्रकार किसी भी समाज को एकीकृत और संगठित करने में उसका बड़ा योग हो सकता है। जबकि पाश्चात्य रंगमंच में 'थियेटर' की सफलता में प्रेक्षक का योगदान महत्वपूर्ण माना गया है।

अंततोगत्वा यह कहा जा सकता है कि, पाश्चात्य रंगमंच प्रायः भारतीय रंगमंच से प्रभाव ग्रहण करता हुआ प्रतीत होता है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची:**

१. भरत: नाट्य शास्त्र (हिंदी अनुवाद), पृ. 8
२. सुरेन्द्रनाथ दीक्षित: भरत और भारतीय नाट्यशास्त्र, पृ. 30
३. पं. सीताराम चतुर्वेदी: भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच, पृ. 50
४. देवेन्द्र राज अंकुर: रंगमंच की कहानी, पृ. 31
५. नेमिचंद्र जैन: रंग-दर्शन, प्र. सं. 1976, पृ. 10
६. बलवंत गार्गी: रंगमंच, पृ. 62
७. श्रीकृष्णदास: हमारी नाट्य परम्परा, पृ. 122, प्रथम संस्करण 1956
८. डॉ. शान्ति मलिक: हिंदी के नाट्य शिल्पी, पृ. 9
९. दशरथ ओझा: हिंदी नाटक उद्भव और विकास, पृ. 118
१०. बाबूलाल शुक्ल शास्त्री: हिंदी नाट्यशास्त्र, पृ. 60
११. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल: रंगमंच और नाटक की भूमिका, प्र. सं. 1965, पृ. 11

# छत्तीसगढ़ी लोक संस्कृति में पर्व–उत्सव

डॉ. दीपशिखा पटेल*

भारत वर्ष के प्राचीनतम आवर्त उत्तरापथ तथा दक्षिणापथ के मध्य मार्ग में विन्ध्य और सतपुड़ा की श्रृंखलाओं की चोटियों, घाटियों और उपत्यकाओं के बीच स्थित छत्तीसगढ़ प्रकृति के इष्ट देव की क्रीड़ा भूमि सा प्रतीत होता है। जिसके मस्तक पर पुण्य सलिला सोन और नर्मदा का मंदर प्रवाह है वहीं शीर्ष भाग पर रानीदाह, राजपुरी, रक्सगण्डा, अमृतधारा जैसे जल प्रपात शंखनाद कर रहे हैं। दक्षिण भाग में पतित पावनी गोदावरी के साथ इन्द्रावती, अपने उर्मिल प्रवाह से दण्डकारण्य की पर्वतमालाओं और अबूझमाड़ को विदीर्ण करती हुई घाटियों में बल खाती हुई समुद्र से मिलने के लिये बहती चली जा रही है। पूर्वी भाग में आदि मानव के द्वारा बनाए गए अद्‌भूत शैलचित्र हैं। जहाँ भारतीय संस्कृति के अमिट छवि के प्रतीक रामगढ़ की तपोभूमि की अनेक गुफाएँ हैं। पश्चिम दिशा में चिल्फी घाटी की नयनाभिराम दृश्य और मध्यभाग महानदी के प्रवाह के कारण छत्तीसगढ़ को ''धान का कटोरा'' कहा गया है।

छत्तीसगढ़ क्षेत्र एक आदर्श भौगोलिक प्रदेश है। प्राकृतिक एवं खनिज सम्पदा की दृष्टि से यह देश का सबसे समृद्ध भू–भाग है। पौराणिक काल में वर्तमान छत्तीसगढ़ का भाग दक्षिण कोसल के नाम से अभिहित था। ''वास्तव में कोसल देश इतना विस्तृत और महान था कि इसे सात खण्डों में विभाजित करने की आवश्यकता पड़ गई थी जिसका उल्लेख वायु पुराण में है। इन सात खण्डों के नाम इस प्रकार हैं 1. मेकल कोसल, 2. क्रान्ति कोसल 3. चेदि कोसल 4. दक्षिण कोसल 5. काशी कोसल 6. पूर्व कोसल 7. कलिंग कोसल से उल्लेखित किया गया है।''[1]

''लक्ष्मीनिधि राय सुना चित्त दै
गढ़ छत्तीसगढ़ में न गढ़ैया रही
मरदुमी रही नहि मरदन के,
केर हिम्मत से न लड़ैया रही।''[2]

विविध परम्पराओं और सामाजिक रीति–रिवाजों से रचा–बचा आदिवासी बाहुल्य छत्तीसगढ़ राज्य जो अपने आप में अनूठा हैं। यहाँ प्रचलित रीति–रिवाज एवं परम्पराएँ शताब्दियों पुरानी हैं जिन्हें आज के आधुनिक दौर में आधुनिकता छू भी नहीं पाई है। तीज त्यौहार, मेले मड़ाई, पर्व उत्सव, लोकगीत, लोकनृत्य की अपनी एक विशेषता है, अलग पहचान है। छत्तीसगढ़ी लोकसंस्कृति में त्यौहार को ''तिहार'' कहा जाता है। हरेली, भोजली, पोरा, तीजा, कमरछठ, जंवारा, गौरा–गौरी, देवारी, सकट, फागुन, नवाखाई प्रमुख त्यौहार है।

**हरेली**

सावन माह के पूर्णिमा को छत्तीसगढ़ में हरेली त्यौहार मनाते हैं। कृषि प्रधान राज्य होने के कारण लोग कृषि पर निर्भर रहते हैं। हरेली मुख्य रूप से पशुधन एवं कृषि कार्य में उपयोग में लाये गये कृषि औजारों की पूजा–पाठ का त्यौहार है। कृषि कार्य में उपयोग में लाये गये औजारों को नष्ट होने से बचाने के लिए उसे पानी से धोकर सूखे जगह में रखकर पूजा अर्चना किया जाता है जिससे आने वाले वर्षों में फिर से उसे कृषि कार्य में उपयोग में लाया जा सके। पशुधन को बीमारी से बचाने के लिये हरेली त्यौहार के दिन आटे की गोली में औषधि डाल कर पशुधन को खिलाया जाता है, ''जिसे लोंदी खिलाना कहते है''। सावन के महीने में चारों तरफ हरी हरी घांस की हरितिमा बिखरे रहती है। पषुधन हरी घास को चरते हैं, चारे के साथ कई प्रकार के मौसमी संक्रमण का खतरा भी बढ़ जाता है। पशुधन को निरोग रखने की यह लोक सषक्त उपाय हो सकती है जिससे पशुओं की होने वाली बीमारी की रक्षा हो सके। इस दिन घर के मुख्य दरवाजे पर नीम के डंगाल खोंचने की परम्परा है। इसी अवसर पर गेड़ी का भी प्रचलन है। बांस के डंडे से बने गेड़ी पर चढ़कर मनमोहक नृत्य भी किया जाता है।

**2. भोजली**

* सहायक प्राध्यापक, लोकसंगीत एवं कला संकाय, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़

सावन माह में नागपंचमी के दिन भोजली बोई जाती है। मुख्य रूप से छोटे बांस से बनी टोकनी में मिट्टी डालकर उसमें गेहूं या जौ, चना, उड़द, धान और कोदो को अंकुरित कर बो देते हैं। उस पर हल्दी छिड़क देते हैं। भोजली को विसर्जित होने की तिथि तक भोजली माता की खूब सेवा महिलाओं एवं बालिकाओं के द्वारा की जाती है। भोजली गीतों में देवी की प्रार्थना, महत्ता तथा पारिवारिक जीवन का चित्रण रहता है। विशेष कर भाई–बहन के स्नेह समाहित रहता है।

''छत्तीसगढ़ में भोजली को आराध्य देवी या प्रकृति देवी के रूप में पूजा जाता है। मन भावन सावन का महीना आते ही छत्तीसगढ़ की ग्राम ललनाओं तथा बालाओं के मधुर कण्ठ से भोजली गीत फूट पड़ते हैं,

अहो देवी गंगा, अहो देवी गंगा, लहर तुरंगा,
हमर भोजली दाई के भीजें आठों अंगा, अहो देवी गंगा.....''[3]

**जंवारा**

क्वांर माह में छत्तीसगढ़ के मैदानी भाग में नवरात्रि के समय जंवारा गीत का खूब बोल–बाला रहता है। सभी गावों में शीतला मंदिर में जंवारा बोया जाता है और माता की अराधना में जस–पचरा गाते हैं।

''जंवारा गीत देवी माँ के प्रति आत्मिक साधना के वे गीत हैं, जिनमें जन–जन की भक्ति भावना निहित होती है। इन गीतों के भावार्थों में मनुष्य शक्ति से शक्ति प्राप्त कर सद्वृत्ति जागृत करने तथा राक्षसी भावनाओं को नष्ट करने की मनोकामना पूर्ण करने का प्रयास करता है। अधर्म पर धर्म की विजय का सूत्र इन गीतों का परम लक्ष्य होता है। जंवारा गीतों में दुर्गा का काली रूप जन मानस के हृदय पटल पर उभर कर आता है।''[4]

''माता फूल गजरा, गूंथव हो मालिन के देहरी, फूल गजरा।
काहेन फूल के अजरा गजरा, काहेन फूल के हार,
काहेन फूल के माथ मटुकिया सोलहों सिंगार, माता फूल गजरा.....''[5]

**गौरा–गौरी**

कार्तिक माह में गोंड़ जनजातीयों के द्वारा गौरा–गौरी का पूजा किया जाता है। कहीं–कहीं पर दीपावली के 2–3 पूर्व से यह त्यौहार मनाने की परम्परा है। लोक में शंकर को ईसरदेव और पार्वती को 'गौरी' कहा जाता है। शंकर जी आदि देव हैं। धार्मिक एवं सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में ''बूढ़ा देव'' के नाम से प्रतिस्थापित हैं। सभी गावों में सार्वजनिक स्थान जहॉ पर ''गौरा–गुड़ी'' होता है उस स्थान पर गौरा–गौरी के पूजा–अर्चना के समय उसे स्थापित किया जाता है। गौरा पूजा का विधान वास्तव में 'ंकर पार्वती का विवाह का प्रसंग है।

''गौरा पूजन कार्य में समूचे समाज की सहभागिता होती है। गौरा चौंरा से गौरा व ईसर की मूर्तियों को ग्राम भ्रमण कराया जाता है। मूर्तियों में चिपके 'पना' (चमकीला कागज) को निकाल कर लोग एक दूसरे से 'पना' बदकर मित्रता के बंधन में बंध जाते हैं। मित्रता का यह बंधन पीढ़ी दर पीढ़ी निभाया जाता है।''[6]

**देवारी**

''धान का कटोरा'' नाम से विख्यात छत्तीसगढ़ की शस्य श्यामला भूमि पर जब पूर्ण यौवन के साथ धान की फसल खेतों में लहराती है, और धान के फसल पूर्ण रूप से तैयार हो जाने के पश्चात् किसान उसे खेत खलिहानों से अपने घर लाता है, उसका हृदय अपार प्रसन्नता से भरा रहता है। ऐसे सुखद मौसम में दीपावली का आगमन होता है। छत्तीसगढ़ी लोकसंस्कृति में दीपावली त्यौहार का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

''छत्तीसगढ़ में देवारी मनाने की अपनी अलग ही लोक परम्परा है। जहाँ नगर जीवन में दीपावली 'लक्ष्मी पूजन' कर एक दिन मनाई जाती है, वहीं छत्तीसगढ़ी लोकजीवन में देवारी पाँच दिनों तक प्रत्येक दिन अलग–अलग रूप में श्रृंखला व मनाई जाती है। इसलिए छत्तीसगढ़ के लिए देवारी पर्वों का महापर्व है। इस समय नारी कंठों से 'सुवागीत' की स्वरलहरी झरने की तरह झरने लगती है।''[7]

''तरी हरि नाना मोर न नरि नाना
करेला पान करू लागे
अंगना म सोये बड़े भईया
उठा दे राम हरू लागे।''[8]

**फागुन**

होली का त्यौहार बसन्त पंचमी से शुरू हो जाता है। गांव के बाहर सार्वजनिक स्थान पर होली जलाई जाती है उसे ''होली डाड़'' कहते हैं। उस स्थान पर बसन्त पंचमी के दिन पूजा अर्चना कर अरण्डी के डंगाल को गाड़ा जाता है जिसे ''होली डांड़'' कहते हैं। इस दिन से होलिका दहन तक फाग गायन अपनी चरम सीमा पर रहती है। छत्तीसगढ़ के प्रायः सभी गांवो में नगाड़ों की आवाज गुंजने लगती हैं। यहाँ के लोक जीवन में फागुनी रंग का उल्लास और उमंग की धारा में विशेष रूप से छलकता दिखाई देता है।

''फाग गीतों में श्रीकृष्ण राधा एवं श्री राम का वर्णन अधिक पाया जाता है। लोक में गाये जाने वाले गीतों की मूल भावना यही होती है कि यदि श्री कृष्ण लौकिक जीवन के नायक हैं तो श्री राम आदर्श जीवन के प्रतीक हैं।

छोटे से श्याम कन्हैया हो,
मुख मुरली मुख मुरली बजाये, छोटे से श्याम कन्हैया
काली दह जाये जमुना दह जाये, छोटे से श्याम कन्हैया.....
बाजे नगारा दस जोड़ी
बजवइया हे राजा राम
अवध में बाजे नगारा दस जोड़ी.....''[9]

छत्तीसगढ़ी लोकसंस्कृति में त्यौहारों का महत्व एकता और अखण्डता का प्रतीक है। सभ्यता और संस्कृति के दर्पण है। यहाँ के लोक जीवन में मनाये जाने वाले त्यौहार उल्लास, उमंग, और उत्साह के प्राण है तथा प्रेम और भाईचारे के संदेश देने वाले हैं। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि यहाँ मनाये जाने वाले त्यौहार जीवन के श्रृंगार है। त्यौहारों के माध्यम से ही यहाँ के युवा पीढ़ी में सात्विक गुणों का विकास होता है और उनका आत्मबल बढ़ता है। अपनी लोकसंस्कृति और परम्परा को आगे बढ़ाने में उन्हें इन त्यौहारों के माध्यम से प्रेरणा मिलती है।

## संदर्भ ग्रंथ सूची :–

वायु पुराण, श्री खेमराज, श्री कृष्ण दास, पृष्ठ श्लोक क्र 129 से 132
छत्तीसगढ़ के साहित्यकार, डॉ. ब्रजभूषण सिंह आदर्श, पृष्ठ 40
मध्य प्रदेश का लोक संगीत, प्रो. शरीफ मोहम्मद पृष्ठ, 356
वही पृष्ठ 420
वही पृष्ठ 421
छत्तीसगढ़ी लोक जीवन और पर्व, डॉ. पीसी लाल यादव पृष्ठ, 80
वही पृष्ठ 78
वही पृष्ठ 80
मध्य प्रदेश का लोक संगीत, प्रो. शरीफ मोहम्मद पृष्ठ, 395

# व्यवहारिक मनोविज्ञानः मानव जीवन में व्यवहार की वैज्ञानिक समझ

**प्रो. (डॉ.) गिरिजा उरांव***

**सारांश**

*मनोविज्ञान का महत्त्व अत्यधिक है क्योंकि यह मानव व्यवहार, मानसिक प्रक्रियाओं और मानसिक स्वास्थ्य को समझने और सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मनोविज्ञान न केवल व्यक्ति की मानसिक स्थिति और भावनाओं को समझने में मदद करता है, बल्कि यह समाज के विकास, शिक्षा, कार्यक्षमता, और व्यक्तिगत संबंधों को बेहतर बनाने में भी सहायक है।*

*व्यावहारिक मनोविज्ञान, जिसे अनुप्रयुक्त मनोविज्ञान भी कहा जाता है जो सैद्धांतिक सिद्धांतों को वास्तविक जीवन की समस्याओं को हल करने और मानव व्यवहार को बेहतर ढंग से समझने के लिए प्रयोग करती है। यह मनोविज्ञान के सैद्धांतिक पहलुओं के साथ–साथ व्यावहारिक अनुप्रयोगों पर भी ध्यान केंद्रित करता है।*

**शब्द कुंजी** – मनोविज्ञान, व्यावहारिक मनोविज्ञान, व्यवहार, मानव, जीवन इत्यादि।

## परिचय

मनोविज्ञान एक वैज्ञानिक अध्ययन है जो मानव मस्तिष्क, व्यवहार और मानसिक प्रक्रियाओं को समझने का प्रयास करता है। इसकी विभिन्न शाखाओं में से एक है व्यवहारिक मनोविज्ञान (Applied Psychology), जो मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों को व्यावहारिक जीवन में लागू करने पर बल देता है। इसका उद्देश्य है – मनुष्य के व्यवहार को समझकर, समस्याओं का समाधान निकालना तथा जीवन को अधिक संतुलित और प्रभावी बनाना।

## व्यवहारिक मनोविज्ञान की परिभाषा और स्वरूप

व्यवहारिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जो मानव जीवन की समस्याओं को हल करने के लिए सिद्धांतों और अनुसंधानों को वास्तविक जीवन में लागू करती है। यह विभिन्न क्षेत्रों जैसे शिक्षा, चिकित्सा, उद्योग, न्याय, सामाजिक कार्य आदि में उपयोगी सिद्ध होती है।

उदाहरण के लिए, यदि कोई विद्यार्थी पढ़ाई में पिछड़ रहा है, तो व्यवहारिक मनोविज्ञान यह पता लगाने में मदद करता है कि समस्या उसके ध्यान में है, स्मरण शक्ति में, या प्रेरणा की कमी में।

मुख्य क्षेत्र जहाँ व्यवहारिक मनोविज्ञान लागू होता है –

### 1. शिक्षा क्षेत्र में व्यवहारिक मनोविज्ञान की भूमिका

शिक्षा केवल सूचनाओं के संचरण की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह छात्र के समग्र विकास का माध्यम है दृ जिसमें उसकी बुद्धि, भावना, व्यवहार, और सामाजिकता सभी शामिल होते हैं। इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो शिक्षा और मनोविज्ञान का गहरा संबंध है। विशेष रूप से, व्यवहारिक मनोविज्ञान शिक्षा क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह शिक्षकों, विद्यार्थियों और अभिभावकों को बेहतर शैक्षणिक वातावरण तैयार करने में सहायता करता है।

### 1. शिक्षण की प्रभावी पद्धतियाँ

छात्रों की सीखने की शैली (Visual, Auditory, Kinesthetic) की पहचान करके उपयुक्त शिक्षण विधि अपनाई जाती है।

अनुक्रिया सिद्धांत (Reinforcement Theory) के अनुसार सकारात्मक प्रेरणा से छात्र का व्यवहार सुधरता है।

### 2. व्यक्तिगत भिन्नताओं की समझ

हर छात्र की बुद्धि, अभिरुचि, क्षमता और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ अलग होती हैं।

व्यवहारिक मनोविज्ञान के माध्यम से शिक्षक इन भिन्नताओं को समझकर व्यक्तिकृत शिक्षण (Individualized Learning) प्रदान कर सकते हैं।

### 3. अनुशासन और कक्षा प्रबंधन

छात्र अनुशासन क्यों तोड़ते हैं, इसके पीछे के मनोवैज्ञानिक कारणों को जानकर शिक्षक उचित रणनीति अपना सकते हैं।

* मनोविज्ञान विभाग, रोहतास महिला कॉलेज, सासाराम

व्यवहार को नियंत्रित करने की तकनीकें अपनाई जाती हैं।

**4. शिक्षा में प्रेरणा का स्थान**

प्रेरणा के बिना सीखने की प्रक्रिया अधूरी रहती है।

व्यवहारिक मनोविज्ञान यह बताता है कि छात्रों को आंतरिक (Intrinsic) व बाह्य (Etrinsic) प्रेरणा कैसे दी जा सकती है।

**5. सीखने में आने वाली समस्याओं का समाधान**

जैसे – डिस्लेक्सिया, ADHD, अल्प ध्यान क्षमता आदि समस्याओं की पहचान और समाधान।

काउंसलिंग और विशेष शिक्षण तकनीकों द्वारा सहारा देना।

**6. मूल्य एवं नैतिक शिक्षा**

व्यवहारिक मनोविज्ञान छात्रों में सामाजिक उत्तरदायित्व, सहानुभूति, और सदाचार विकसित करने में मदद करता है।

यह शिक्षा को केवल जानकारी नहीं, बल्कि चरित्र निर्माण का माध्यम बनाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में व्यवहारिक मनोविज्ञान का योगदान बहुमूल्य है। यह न केवल छात्र की सीखने की प्रक्रिया को सुगम बनाता है, बल्कि शिक्षक को भी एक समझदार मार्गदर्शक बनने में सहायता करता है। वर्तमान समय में जब शिक्षण विधियाँ और कक्षा की चुनौतियाँ बदल रही हैं, व्यवहारिक मनोविज्ञान शिक्षा को अधिक व्यक्तिकेंद्रित, समझदारीपूर्ण, और प्रभावशाली बनाने में एक मजबूत स्तंभ के रूप में कार्य कर रहा है।

**चिकित्सा क्षेत्र में व्यवहारिक मनोविज्ञान का योगदान**

मनोविज्ञान और चिकित्सा विज्ञान का संबंध अत्यंत गहरा और पूरक है। आधुनिक चिकित्सा केवल शारीरिक रोगों तक सीमित नहीं रही, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य, व्यवहार, और भावनात्मक कल्याण को भी इसका अभिन्न अंग माना जाने लगा है। इस सन्दर्भ में व्यवहारिक मनोविज्ञान की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। यह मानव के व्यवहार और मानसिक प्रक्रियाओं को समझकर चिकित्सा एवं मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में निदान, उपचार, और पुनर्वास में सहायक सिद्ध होता है।

**1. रोगी के व्यवहार को समझना**

कई बार रोगी अपनी बीमारी के लक्षणों को सही ढंग से व्यक्त नहीं कर पाता।

व्यवहारिक मनोवैज्ञानिक रोगी के भाव, संकेत और प्रतिक्रियाओं के माध्यम से समस्या की गहराई तक पहुँचते हैं।

**2. मन psychosomatic रोगों का प्रबंधन**

तनाव, चिंता और अवसाद से जुड़े रोग जैसे – अल्सर, हाइपरटेंशन, थकान आदि।

ऐसे रोगों का उपचार केवल दवाओं से नहीं, बल्कि व्यवहारिक हस्तक्षेपों द्वारा भी संभव होता है।

**3. रोगियों में सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना**

कैंसर, HIV, या क्रॉनिक बीमारियों से पीड़ित रोगियों में उम्मीद, आत्मबल और प्रेरणा बनाए रखने हेतु मनोवैज्ञानिक सहायता की आवश्यकता होती है।

**4. परिवार और देखभाल करने वालों की भूमिका**

व्यवहारिक मनोविज्ञान यह समझने में सहायता करता है कि कैसे रोगी के साथ–साथ उसके परिवार को भी मानसिक सहयोग की आवश्यकता होती है।

**मानसिक स्वास्थ्य क्षेत्र में व्यवहारिक मनोविज्ञान की भूमिका**

**1. मानसिक रोगों का मूल्यांकन और निदान**

जैसे – अवसाद (Depression), चिंता विकार (Anxiety), सिजोफ्रेनिया (Schizophreni), PTSD, OCD आदि।

मानसिक परीक्षणों (Psychological tests) और साक्षात्कार के माध्यम से निदान किया जाता है।

**2. चिकित्सकीय परामर्श (Counseling) और मनोचिकित्सा (Psychotherapy)**

CBT (Cognitive Behavioral Therapy), REBT, Psychoanalysis जैसी तकनीकों का प्रयोग कर मरीज की स्थिति में सुधार लाया जाता है।

**3. नशा मुक्ति और व्यवहार परिवर्तन**

नशीले पदार्थों की लत, धूम्रपान, जुआ, आदि व्यवहार संबंधी समस्याओं का इलाज।

व्यवहार संशोधन तकनीकें जैसे पुरस्कार प्रणाली, निगरानी, आत्ममूल्यांकन आदि का प्रयोग।

### 4. आपदा और आघात के बाद मानसिक सहायता (Trauma Counselling)

युद्ध, प्राकृतिक आपदाओं, बलात्कार, या घरेलू हिंसा से प्रभावित व्यक्तियों के लिए मनोवैज्ञानिक सहयोग।
PTSD के प्रबंधन में व्यवहारिक मनोविज्ञान अत्यंत प्रभावी।
चिकित्सा और मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में व्यवहारिक मनोविज्ञान ने मानव जीवन को स्वस्थ, संतुलित और सकारात्मक बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। यह न केवल रोग के इलाज में सहायक है, बल्कि रोग की रोकथाम, पुनर्वास, और जीवन गुणवत्ता सुधारने में भी प्रमुख भूमिका निभाता है। भविष्य की चिकित्सा प्रणाली में इसका उपयोग और भी व्यापक रूप लेगा।

## उद्योग और संगठन में व्यवहारिक मनोविज्ञान की भूमिका

आज के व्यावसायिक और औद्योगिक जगत में कार्यकुशलता और संगठनात्मक सफलता के लिए व्यवहारिक मनोविज्ञान का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है। व्यवहारिक मनोविज्ञान का उपयोग न केवल कर्मचारियों के व्यवहार और मानसिक स्वास्थ्य को समझने के लिए किया जाता है, बल्कि यह संगठनात्मक विकास, कर्मचारियों की प्रेरणा, कार्य संतुष्टि, और उत्पादकता बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह लेख उद्योग और संगठन में व्यवहारिक मनोविज्ञान के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालता है और यह बताता है कि कैसे यह सिद्धांत और तकनीकें कार्यस्थल पर लागू की जाती हैं।

### 1. मानव संसाधन चयन (Human Resource Selection)

कर्मचारी चयन में मनोविज्ञान का उपयोग करके योग्य और सक्षम कर्मचारियों का चयन किया जाता है।
मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Psychometric Tests) का उपयोग कर कर्मचारियों के कौशल, व्यक्तित्व, और निर्णय क्षमता की पहचान की जाती है।

### 2. प्रेरणा और उत्पादकता में वृद्धि

कर्मचारियों को प्रेरित करने के लिए मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का उपयोग किया जाता है जैसे मास्लो का आवश्यकता सिद्धांत, हर्जबर्ग का द्वैत सिद्धांत।
सकारात्मक प्रेरणा और पुरस्कार प्रणालियों के माध्यम से कर्मचारियों की उत्पादकता बढ़ाई जाती है।

### 3. कर्मचारी संतुष्टि और कार्य जीवन संतुलन

कर्मचारियों के कार्य जीवन संतुलन (Work & Life Balance) को समझकर उनके मानसिक स्वास्थ्य और कार्य संतुष्टि में सुधार किया जाता है।
कार्यस्थल पर तनाव (Workplace Stress) को पहचानने और उसे प्रबंधित करने के लिए व्यवहारिक तकनीकों का उपयोग किया जाता है।

### 4. टीम कार्य और संगठनात्मक व्यवहार

टीम के सदस्य एक साथ मिलकर कैसे काम करते हैं, उनकी समूह मानसिकता और समूह गतिशीलता का विश्लेषण किया जाता है।
टीम बिल्डिंग गतिविधियाँ, नेतृत्व विकास, और संचार कौशल में सुधार के लिए मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का उपयोग किया जाता है।

### 5. नेतृत्व और निर्णय लेने की प्रक्रिया

नेतृत्व विकास में व्यवहारिक मनोविज्ञान का बहुत बड़ा योगदान है, जहां यह प्रबंधकों और नेतृत्वकर्ताओं की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं, प्रेरणा, और निर्णय क्षमता का विश्लेषण करता है।
निर्णय लेने की प्रक्रिया में कर्मचारियों की भावनात्मक और मानसिक स्थिति को समझकर संगठनात्मक निर्णयों को सुधारने में मदद मिलती है।

### 6. व्यवहारिक हस्तक्षेप और संगठनात्मक परिवर्तन

जब संगठन को परिवर्तन की आवश्यकता होती है, तो व्यवहारिक मनोविज्ञान कर्मचारियों के व्यवहार में बदलाव, सकारात्मक दृष्टिकोण और समय प्रबंधन की कला को सीखने में मदद करता है।
विरोधी कर्मचारियों को समझने और व्यवहारिक हस्तक्षेप द्वारा संगठनात्मक परिवर्तन को सहज बनाने के लिए मनोवैज्ञानिक तकनीकों का उपयोग किया जाता है।
व्यवहारिक मनोविज्ञान का उद्योग और संगठन में उपयोग संगठनात्मक सफलता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह कर्मचारियों की मानसिक स्थिति, प्रेरणा, और उत्पादकता को समझने में मदद करता है और एक सकारात्मक कार्य वातावरण का निर्माण करता है। कर्मचारियों की संतुष्टि, टीम वर्क, नेतृत्व कौशल, और

संगठनात्मक बदलाव में सुधार के लिए व्यवहारिक मनोविज्ञान का उपयोग एक आवश्यक उपकरण बन चुका है।

**4. न्याय और विधि क्षेत्र में**

न्याय और विधि क्षेत्र मानव समाज के सबसे महत्वपूर्ण अंगों में से एक हैं। इन क्षेत्रों का मुख्य उद्देश्य समाज में न्याय और समानता का संरक्षण करना है, लेकिन इसके साथ ही मानव व्यवहार, संवेदनाएँ, और मानसिक प्रक्रियाएँ भी गहरे रूप से जुड़ी हुई हैं। व्यवहारिक मनोविज्ञान ने न्याय और विधि के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, क्योंकि यह मानव व्यवहार, अपराध, न्याय प्रक्रिया, और विधिक निर्णयों को समझने में सहायक होता है। यह लेख न्याय और विधि क्षेत्र में व्यवहारिक मनोविज्ञान के योगदान पर प्रकाश डालता है।

**न्याय और विधि क्षेत्र में व्यवहारिक मनोविज्ञान की भूमिका**

**1. अपराधी मानसिकता का अध्ययन**

अपराधी व्यवहार (Criminal Behavior) को समझने के लिए मनोविज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

अपराधी के मानसिक स्थिति, भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ, और मनोविज्ञान का विश्लेषण कर पुलिस और न्यायपालिका यह निर्णय लेती है कि क्या कोई व्यक्ति मानसिक रूप से सक्षम है या नहीं और क्या वह अपराध के लिए जिम्मेदार है।

**2. मनोवैज्ञानिक परीक्षण और मूल्यांकन**

न्यायालय में अक्सर यह आवश्यकता होती है कि आरोपी का मनोवैज्ञानिक परीक्षण किया जाए।

सामाजिक मनोविज्ञान, वृद्धावस्था मनोविज्ञान, और न्यायिक मनोविज्ञान के सिद्धांतों का उपयोग कर यह परीक्षण किया जाता है कि आरोपी की मानसिक स्थिति क्या है, क्या वह मानसिक विकार से पीड़ित है, और क्या उसका अपराधीकरण मानसिक विकृति का परिणाम है।

**3. साक्ष्य और गवाही का विश्लेषण**

गवाही (Eyewitness Testimony) और साक्ष्य का विश्लेषण मनोविज्ञान के सिद्धांतों से किया जाता है।

यह देखा जाता है कि गवाह की गवाही में भ्रांति, अत्यधिक दबाव, या मानसिक पक्षपाती की कोई भूमिका तो नहीं थी। व्यवहारिक मनोविज्ञान गवाहों की विश्वसनीयता और साक्ष्य की सच्चाई का मूल्यांकन करने में मदद करता है।

**4. अपराधियों का पुनर्वास और सुधार**

न्याय और विधि क्षेत्र में व्यवहारिक मनोविज्ञान का उपयोग अपराधियों के पुनर्वास (Rehabilitation) में किया जाता है।

यह अपराधियों के मानसिक उपचार, उनके सामाजिक पुनर्निर्माण, और व्यवहारिक उपचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

**5. न्यायिक निर्णय प्रक्रिया**

न्यायाधीशों द्वारा मामलों में निर्णय लेते समय उनकी मानसिक स्थिति, पूर्वाग्रह, और समाज के प्रति जिम्मेदारी की समझ आवश्यक होती है।

न्यायिक निर्णयों में मनोवैज्ञानिक पूर्वाग्रह और साक्ष्य की भावनात्मक प्रभाव को समझने के लिए मनोविज्ञान महत्वपूर्ण होता है। यह न्यायाधीशों को अपने निर्णयों में अधिक न्यायसंगत और समान दृष्टिकोण अपनाने में मदद करता है।

**6. साक्षी परीक्षण और जूरी के निर्णय**

जूरी प्रणाली में साक्षियों द्वारा गवाही देने और निर्णय लेने के समय जूरी के मानसिक और सामाजिक मनोविज्ञान का अध्ययन किया जाता है।

जूरी के निर्णय पर उनके भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ, सामाजिक प्रभाव, और साक्ष्यों के प्रति उनका दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभाव डाल सकते हैं। इसलिए, जूरी के साक्ष्य परीक्षण और उनके निर्णय को प्रभावी रूप से प्रबंधित करने के लिए मनोविज्ञान की आवश्यकता होती है।

न्याय और विधि क्षेत्र में व्यवहारिक मनोविज्ञान की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह न केवल अपराधियों के मानसिक स्वास्थ्य और व्यवहार को समझने में मदद करता है, बल्कि यह न्यायिक निर्णयों, साक्ष्य के परीक्षण, और अपराधियों के पुनर्वास में भी सहायक होता है। न्यायपालिका और विधि अधिकारियों के लिए यह आवश्यक है कि वे मनोविज्ञान के सिद्धांतों को समझें और उनका उपयोग करें ताकि समाज में न्याय और समानता सुनिश्चित की जा सके।

## चुनौतियाँ और सीमाएँ

हर व्यक्ति का व्यवहार अलग होता है, इस कारण सामान्य नियम सब पर लागू नहीं होते।
सांस्कृतिक, सामाजिक और पारिवारिक पृष्ठभूमि व्यवहार को प्रभावित करती है।
व्यवहार मापन करना जटिल कार्य है, क्योंकि यह आंतरिक और बाह्य दोनों तत्वों पर निर्भर करता है।

## निष्कर्ष

व्यवहारिक मनोविज्ञान आज के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अत्यंत उपयोगी और आवश्यक है। यह न केवल व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने में सहायक है, बल्कि सामाजिक समरसता, शिक्षा, चिकित्सा, और न्यायिक व्यवस्था को भी अधिक प्रभावी बनाता है। यदि इसे सही दिशा में प्रयोग किया जाए, तो यह मानव जीवन की गुणवत्ता को बेहतर बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

## संदर्भ सूची

शर्मा, आर. ए. (2018). शैक्षिक मनोविज्ञान. मेरठः लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन।
चौहान, एस. एस. (2020). आधुनिक शिक्षाशास्त्र और मनोविज्ञान. दिल्लीः विकास पब्लिशिंग हाउस।
मिश्र, बी. एन. (2017). मनोविज्ञान के सिद्धांत और प्रयोग. इलाहाबादः लोकभारती प्रकाशन।
अग्निहोत्री, रेखा. (2019). मनोविज्ञान और मानव व्यवहार. जयपुरः राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी।
डैश, एम. (2016). बाल विकास और शिक्षा में मनोविज्ञान. नई दिल्लीः अटलांटिक पब्लिशर्स।
पाठक, अर्चना. (2021). स्वास्थ्य और व्यावहारिक मनोविज्ञान. भोपालः मप्र हिंदी ग्रंथ अकादमी।
न्यालक, एन. डी. (2022). व्यवहारिक मनोविज्ञान के सिद्धांत. मुंबईः पॉपुलर प्रकाशन।

# किरातार्जुनीयम् के आलोक में मन्त्रणा की उपादेयता

डॉ. दीपक कुमार*

साहित्य समाज का दर्पण होता है। कोई भी महाकाव्य तत्कालीन समाज का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत करता है, जिसमें राजनीति से लेकर धर्म, ज्ञान–विज्ञान, साहित्य एवं संस्कृति, इन सभी तत्वों का दर्शन प्राप्त होता है। हमारे प्राचीन आचार्यों ने धर्म को ही समाज का आधार बतलाया है। राजनीति को तो धर्म का पर्याय भी कहा जाता है। समाज के किसी भी पक्ष की विवेचना राजनीति से पृथक् नहीं हो सकती।

राज्य प्रशासन का प्रमुख लक्ष्य प्रजा का सुख एवं कल्याण ही होता है। यह कार्य तभी सम्भव हो सकता है जब राज्य का अस्तित्व सुरक्षित हो और उसकी प्रवृत्ति विकास की तरफ उन्मुख हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रशासन में कुछ अनिवार्य तत्वों का होना आवश्यक माना जाता है। हमारे प्राचीन आचार्यों ने इन्ही तत्वों को राज्य के अंग के रूप में स्वीकार किया है।

ऋग्वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल के महाकाव्यों तक राजा और उसके राज्य के कर्मचारियों का पूर्ण विवरण प्राप्त होता है। वेदों में यत्र–तत्र जो उदाहरण प्राप्त होते हैं उनसे स्पष्ट होता है कि राजा को सदाचारी, सज्जनों की रक्षा करने वाला, दुष्टों का दमन करने वाला, धर्म एवं सदाचार की वृद्धि करने वाला होना चाहिए। प्रजा का आर्थिक, नैतिक आदि सर्वांगीण विकास करना ही राजा का कर्तव्य कहा गया है। राज्य में जब शान्ति हो तब राजा को न्याय करना और भौतिक समृद्धियों के निमित्त यज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिए। राजा निरंकुश न हो जाए इसके लिए राज्य की दो संस्थाएं सभा और समिति उसके शासन पर अंकुश का कार्य करती थीं।[1]

किसी भी राज्य की शासन व्यवस्था को सञ्चालित करने में कोई भी अकेला व्यक्ति समर्थ नहीं हो सकता है, इसलिए शासन व्यवस्था को सञ्चालित करने हेतु राज्य के अंग के रूप में कुछ तत्वों का समावेश किया गया है। जैसे राजा, अमात्य, मन्त्री, सेना, दुर्ग, कोश, दण्ड आदि। इन सभी विभागों के उचित कार्यवाही हेतु उन सभी विभागों में एक–एक विभागाध्यक्षों की नियुक्ति होती थी।

आचार्य मनु का तो मत है कि जितने अमात्यों से राजा के कार्यों की सिद्धि हो जाए उतने ही कुशल अमात्यों की नियुक्ति राजा को करनी चाहिए।[2] इसके अतिरिक्त आचार्य मनु का मत हैं कि शास्त्रज्ञाता, शूरवीर, सत्कुलोत्पन्न सात अथवा आठ मन्त्रियों की राजा नियुक्ति करे, क्योंकि सरल कार्य भी एक व्यक्ति के लिए कठिन कार्य हो जाता है। महान् फल देने वाला एक राज्य राजा के द्वारा ही सुसाध्य हो सकता है। राजा को अपने मंत्रियों के साथ सन्धि–विग्रह आदि छः गुणों पर विचार करना चाहिए तथा उनके अभिप्राय को अलग–अलग समझकर अथवा सामूहिक रूप से बात–विचार करके अपना हितकारी कार्य को करना चाहिए।[3]

आचार्य मनु का विचार है कि राजा मन्त्रियों से तथा धर्म आदि से युक्त विशिष्ट विद्वान् के साथ युक्त छः गुणों से समन्वित श्रेष्ठ गुप्त विचार (मंत्रणा) करे। राजा को उन विशेष गुणों से युक्त धर्मात्मा विद्वान् पर विश्वास करके समस्त कार्यों का उत्तरदायित्व सौंप देना चाहिए।[4]

राजा का यह परम कर्तव्य होता है कि वह रात्रि के अन्तिम प्रहर में शैय्या से निवृत्त होकर नित्य, नैमित्तिक कर्मों को करके मन्त्रणा गृह में प्रवेश करे। सभा भवन आए हुए प्रजाजनों को दर्शन देकर और वार्ता के माध्यम से उनको सन्तुष्ट करे। इसके पश्चात् अपने मन्त्रियों के साथ गुप्त मन्त्रणा करे।[5] आचार्य मनु का मत है कि राजा को किसी पर्वत पर चढ़कर अथवा एकान्त भवन में अथवा निर्जन वन में रहते हुए विचार–विमर्श या गुप्त मन्त्रणा करनी चाहिए। मंत्रणा की गोपनीयता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है।[6] मनु का कथन है कि जिस राजा की मंत्रणा की गोपनीयता को अन्य कोई व्यक्ति नहीं जान पाते हैं वह राजा कोष से रहित होते हुए भी सम्पूर्ण पृथ्वी का भोग करता है।[7]

कामन्दकीय नीतिसार का कथन है कि मंत्रिपरिषद् के समस्त सदस्यों को, अर्थों में तत्परता, विचार–विमर्श के गुप्त मन्त्रणा की गोपनीयता में कुशल, दृढ़ता आदि सभी गुणों से युक्त होना चाहिए।[8] शुक्रनीति का भी कथन है कि जो मंत्री या अमात्य अथवा कोई राजपुरुष यदि राजा को उचित सलाह न दें तो वह केवल राजसभा की शोभा बढ़ाने वाला होता है, राजसभा में इसकी कोई भी उपयोगिता नहीं होती। अतः जिसकी सलाह या

* एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

परामर्श से राजा का राज्य, सेना, कोष तथा राज्य के सुन्दर भावों की अभिवृद्धि न हो, उन राजपुरुषों की कोई उपयोगिता नहीं, वे राजपुरुष व्यर्थ हैं।[9]

प्राचीन आचार्य मनु, कौटिल्य तथा शुक्र आदि के समान याज्ञवल्क्य का भी मत है कि राजा को अपनी मन्त्रणा की गोपनीयता बनाए रखना चाहिए। जिस भी राजा की गोपनीय मन्त्रणा को शत्रु जान जाते हैं, वह राजा अपने राज्य को सुरक्षित नहीं रख सकता परन्तु जिस राजा की गोपनीय मन्त्रणा को शत्रु नहीं जान पाते उसका राज्य सुरक्षित एवं स्थिर रहता है। राज्य कार्य का प्रमुख आधार मन्त्रणा अथवा गुप्त परमर्श ही होता है। अतः मंत्रणा को इस प्रकार गोपनीय रखना चाहिए कि राजा के कार्यों का फल प्राप्त होने पर ही उसकी जानकारी सबको होनी चाहिए।[10]

किसी भी राज्य में सुचारू व्यवस्था बनाने में मंत्रिपरिषद् का महत्त्पूर्ण योगदान होता है। समस्त प्रजा के विषय में अपने मन्त्रिमण्डल के साथ राजा द्वारा विचार–विमर्श करना अति आवश्यक होता है। रामायण काल में भी महाराज दशरथ ने अपने मंत्रिपरिषद् के साथ विचार–विमर्श करके ही प्रजा की धारणा और उनकी अभिलाषा को जान लिया था। रावण भी अपने मंत्रिमण्डल के साथ विचार–विमर्श करता रहता था। रावण उस तथ्य से भलीभांति परिचित था कि उचित परामर्श के द्वारा ही राज्य सुदृढ़ और स्थिर रह सकता है।[11]

बाल्मीकि रामायण के अनन्तर महर्षि व्यास के द्वारा रचित महाकाव्य का वर्णन प्राप्त होता है। महाभारत में तो पूर्णरूप से राजनीति व्याप्त है। महाभारत में राजनीति का इतना विशद वर्णन किया गया है कि यह राजनीति का ही अंश प्रतीत होता है। युधिष्टिर के द्वारा पितामह भीष्म से प्रश्न किये जाने पर भीष्म ने दण्ड, दूत, दुर्ग, सेना, राजा के कर्तव्य षाड्–गुण्य आदि का अत्यन्त विस्तृत विवेचन किया है।[12]

सभी प्राचीन राजनीति शास्त्रियों ने मन्त्रणा की गोपनीयता की प्रशंसा की है। राज्य की उन्नति की कामना करने वाले राजाओं को मन्त्रणा की गोपनीयता बनाए रखना चाहिए। महाभारत से प्रभावित होकर उसी को आधार बनाकर महाकवि भारवि का भी यही मत है कि मन्त्रणा की गोपनीयता बनी रहनी चाहिए।

महाकवि भारवि मन्त्रणा की गोपनीयता का उदाहरण दुर्योधन के कार्यों से देते हैं कि किस तरह दुर्योधन स्वराष्ट्र, परराष्ट्र, सभी स्थानों पर मन्त्रणा की गोपनीयता में समर्थ अपने आत्मीय कर्मचारियों पर राज्य के कार्य भार को सौंपकर स्वयं उनका विश्वास न करते हुए निःशङ्कता का भाव प्रदर्शन मात्र करता है। दुर्योधन के कार्यों के फल की प्राप्ति के पश्चात् उसके द्वारा भृत्यों को वेतन स्वरूप प्रदान की गयी सम्पत्तियां ही उसकी कृतज्ञता को सूचित करती हैं।[13] वन में वनेचर युधिष्ठिर से मन्त्रणा करते हुए कहता है कि सुयोधन शासनाधिरूढ़ है और आप निर्वासित किये गये हैं तब भी वह आप से अपने पराजय की आशंका करता हुआ जुए के बहाने से जीती गयी पृथ्वी को नीतिपूर्वक जीतने की कामना कर रहा है। इसका अभिप्राय यह है कि उसने अन्याय से राज्य प्राप्त किया है इस बात का उसे डर है इसलिए अब वह नीति पूर्वक विजयी बनने के लिए प्रयास कर रहा है।[14] आशंका से युक्त होते हुए भी दुर्योधन आपको जीतने की इच्छा से दान, दाक्षिण्य आदि गुणों के द्वारा अपनी विमल कीर्ति की अभिवृद्धि कर रहा है, क्योंकि ऐश्वर्य की वृद्धि करते हुए दुष्टों की संगति की अपेक्षा सज्जनों से विरोध रखना श्रेयस्कर होता है।[15]

किरातार्जुनीयम् महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में भीम युधिष्ठिर से मन्त्रणा करते हुए कहते हैं कि हे महाराज! सिंह अपने द्वारा मारे गये मदस्रावी हाथियों के द्वारा ही अपना आहार सम्पादन करता है, उसी प्रकार महान् व्यक्ति भी इस जगत को अपने प्रलाप से ही अभिभूत करता हुआ किसी अन्य की सहायता से अपने अभ्युदय की अभिलाषा नहीं करता है।[16] इसी प्रकार जो लोग राख के ढेर को पदाक्रान्त करते हैं वे जाज्वल्यमान अग्नि को पदाक्रान्त नहीं करते, मानो मान–हानि की आशंका से सुखपूर्वक प्राण विसर्जित कर देते हैं। परन्तु अपने मान मर्यादा तथा तेज को पराभूत नहीं होने देते हैं।[17] भीम के इस प्रकार कहने के पश्चात् युधिष्ठिर समझाते हुए कहते हैं कि किसी भी कार्य को एकाएक प्रारम्भ नहीं करना चाहिए क्योंकि भली प्रकार विचार–विमर्श न करना विपत्तियों की उत्पत्ति का कारण होता है। गुण के ऊपर अपने आपको समर्पित करने वाली सम्पत्तियाँ पुरुष का स्वयं वरण करती हैं। अर्थात् जो भी कोई कार्य किया जाए उसके आगे पीछे के समस्त परिस्थितियों पर भली–भाँति विचार–विमर्श करना चाहिए।[18]

इसी क्रम में किरातार्जुनीयम् के तृतीय सर्ग में जब द्रौपदी अर्जुन के साथ मन्त्रणा करती है तो वह कहती है कि असावधानी के कारण हाथियों के द्वारा गर्दन के बाल नोचने वाले सिंह के समान शत्रुओं से आप अपमानित हुए हैं, जिस प्रकार दिन प्रखर किरणों वाले सूर्य का आश्रय ग्रहण करता है, उसी प्रकार शत्रुओं के द्वारा किये गये सम्पूर्ण दुर्दशा को दूर करने वाले और हम सभी की विपत्तियों को नष्ट करने में आप ही समर्थ हैं।[19] चतुर्थ सर्ग में कहा गया है कि शरद ऋतु मंगलमय भाग्य के फल को प्रदान करने वाली होती है और

यह संसार के सम्पूर्ण क्रियाओं को फल प्रदान करके उसे सफल बनाती है। शरद ऋतु में ही जल निर्मल हो जाता है। बादल भी जल से रहित हो जाते है। इसलिए हे अर्जुन! यह शरद काल आपको जयश्री से सुशोभित करे, इस समय आपके विजय की अनुकूलता ही प्रतीत होती है।[20]

पाचवें सर्ग में जब यक्ष अर्जुन से मन्त्रणा करता है तो वह कहता है कि यह सम्पूर्ण त्रिभुवन, इस अपर्णा अर्थात् पार्वती के पिता हिमालय के सम्मुख नहीं टिक सकता, क्योंकि इसी हिमालय पर भगवान् शिव सदैव निवास करते हैं, जिनकी महिमा का ज्ञान साधारण पुरुषों को विदित नहीं है।[21]

इसी प्रकार किरातार्जुनीयम् के सातवें सर्ग में भी मंत्रणा का उदाहरण मिलता है, जिसमें इन्द्र की सेना अपने कार्य की सिद्धि के लिए कैसे और क्या–क्या उपाय करना चाहिए इस प्रकार की परस्पर मन्त्रणा करती हुई पक्षियों के मार्ग को पार करके बादलों से आच्छादित इन्द्रकील नामक पहाड़ पर पहुचीं।[22] इसी प्रकार इन्द्र और अर्जुन एक दूसरे से मन्त्रणा करते हुए कहते हैं कि तुम्हारी आकृति परम सुन्दर है, कल्याणकारी गुणों की सम्पत्ति भी तुम्हें तो मिल ही गयी है। इस संसार में सुन्दरता मिलना बहुत कठिन कार्य नहीं है, परन्तु इस जगत में गुणों को प्राप्त करना दुर्लभ कार्य है। आपमें तो सौन्दर्य और गुण दोनों मिलते हैं, यह आपके लिए सोने पर सुगन्ध का काम करते हैं।[23] किसी प्रसंग को जाने बिना कार्य नहीं करना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने पर बृहस्पति का भी वाक्य उसी प्रकार विफल हो जाता है, जिस प्रकार नीति विरुद्ध किया गया कार्य विफल हो जाता है।[24]

जिन पुरुषों का शुभ यश (कीर्ति) चन्द्रमण्डल को भी तिरस्कृत कर देता है ऐसे ही लोग अपने–अपने नामों द्वारा अपने वंश का विस्तार करते हैं। उन्हीं लोगों द्वारा यह वसुन्धरा अन्वर्था भी है, अर्थात् वसु का अर्थ है धन या सम्पत्ति और धरा का अर्थ है धारण करने वाली। यदि पृथ्वी धन धारण करती है तो इसमें कुछ अन्यथा नहीं है।[25] इस प्रकार इन्द्र के कहने पर अर्जुन इन्द्र से कहते हैं कि आप हमको ग्रहस्थाश्रम से पहले ही वानप्रस्थ (ऋषि–मुनियों की वृत्ति) का पालन करने का उपदेश क्यों दे रहे हैं। यह तो धर्म विरुद्ध है क्योंकि हमारे प्राचीन आचार्य मनु आदि आश्रम के तारतम्यतानुसार आश्रमों में प्रवेश करने की अनुमति देते हैं, विपरीत क्रम के लिए उपदेश नहीं देते।[26] यहाँ महत्वपूर्ण मन्त्रणा दिखलाई पड़ रही है।

इसी प्रकार चौदहवें सर्ग में अर्जुन और वनेचर मन्त्रणा करते हैं, जिसमें अर्जुन वनेचर सें कहते हैं कि तुम्हारा स्वामी हम लोगों के लिए अनुकूल सखा कभी भी नहीं हो सकता है इसका कारण यह है कि हमलोग वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करने वाले हैं और तुम्हारा स्वामी निकृष्ट जाति के जीवों की हिंसा करने में तत्पर रहने वाला है। नीच जीवों की उच्च व्यक्तियों के साथ मित्रता कभी नहीं हो सकती क्योंकि हाथी श्रृंगालों के साथ कभी भी मित्रता नहीं करता है।[27]

इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी कार्य की सिद्धि के लिए तथा जीवन को धर्मानुकूल व्यवस्थित करने के लिए मन्त्रणा बहुत ही आवश्यक है। मन्त्रणा का सही तरीके से उचित समय पर उपयोग हो तो उन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है।

## संदर्भ


1. ऋ.सं. 9/93/6, 10/13/3, अथर्व. सं 19/55/5
2. निवर्तेतास्य यावद्भिरितिकर्तव्यता नृभिः। तावतोऽन्द्रितान्दक्षान्प्रकुर्वीत विचक्षणम्। मनु 7/61
3. तेषाँ स्वं स्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक्–पृथक् ।
   समस्तानां च कार्येषु विदध्याद्धितमात्मनः ।। मनुस्मृति– 7/57
4. मनु. 7/58, 59
5. तत्र स्थितः प्रजाः सर्वाः प्रतिनन्द्य विसर्जयेत् ।
   विसृज्य च प्रजाः सर्वा मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभिः ।। मनु–7/146
6. गिरिपृष्ठं समारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ।
   अरण्ये निःशलाके वा मन्त्रयेदविभावितः ।। मनु– 7/147
7. यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथक्जनाः।
   स कृत्स्नां पृथिवीं भुङ्क्ते कोश हीनोऽपि पार्थिवः ।। मनु0 7/148
8. स्मृतिस्तत्परतार्थेषु वितर्को ज्ञाननिश्चयः।
   दृढ़ता मन्त्रगुप्तिश्च मान्त्रसम्पत् प्रकीर्तिता ।। कामन्दकीय नीतिसार – 4/30
9. राज्यं प्रजा बलं कोशः सुनृपत्वं न वर्धितम् ।

यन्मन्त्रतोऽरिनाथस्तैमन्त्रिभिः किं प्रयोजनम् ।। शुक्रनीति – 2/83

10. मन्त्रमूलं यतो राज्य तस्मान्मन्त्रं सुरक्षितम् ।
कुर्यायथाऽस्य न विदुः कर्मणामाफलोदयात् ।। यज्ञवल्क्यस्मृति–2/3

11. मन्त्र मूलं हि विजयं प्रवदन्ति मनीषिणः । बाल्मीकि रामायण। युद्धकाण्ड – 6/5

12. तेभ्यः पितेव पुत्रेभ्यो राजन् ब्रूहि परं नयम्।
ऋषयश्चैव देवाश्च त्वया नित्यमुपासिता ।। महाभारत, शान्तिपर्व 54/36

13. विधाय रक्षान्परितः परेतरानशंङ्किताकारमुपैति शंकितः।
क्रियाऽपवर्गेष्वनुजीविसात्कृताः कृतज्ञतामस्य वदन्ति सम्पदः। किरातार्जुनीयम् 1/14

14. विशङ्कमानो भवतः पराभवं नृपासनस्थोऽपि वनाधिकासिवः।
दुरोदरच्छद्माजितां समीहते नयेन जेतुं जगतीं सुयोधनः ।। किरातार्जुनीयम् 1/7

15. तथापि जिह्मः स भवज्जिगीषया तनोति शुभ्रं गुण सम्पदा यशः ।
समुन्नयन्भूतिमनार्यसङ्गमाद् वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः ।। किरातार्जुनीयम् 1/8

16. मदसिक्तमुखैर्मृगाधिपः करिभिर्वर्तयते स्वयंहतैः।
लघन्यखलु तेजसा जगन्न महानिच्छति भूतिमन्यतः ।। किरातार्जुनीयम्– 2/18

17. ज्वलितं न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मनां जनः।
भिभूतिभयादसूनतः सुखमुज्झन्ति न धाम मानिनः ।। किरातार्जुनीयम्– 2/20

18. सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदा पदम् ।
कृणते हि विमृश्यकारिणः गुणलुब्धा स्वयमेव सम्पदः ।। किरातार्जुनीयम् 2/30

19. आक्षिप्यमाणं रिपुभिः प्रमादान्नागैरिवालूनसटं मृगेन्द्रम् ।
त्वां धूरियं योग्यतयाऽधिरूढादीरत्या दिनश्रीरिव तिग्मराश्मि।। किरातार्जुनीयम्– 3/50

20. इयं शिवाया नियतेरिवायतिः कृतार्थयन्ती जगतः फलैः क्रिया।
जयश्रियं पार्थ पृथूकरोतु ते शरत्प्रसन्नाम्बुरनम्बुवारिदा ।। किरातार्जुनीयम्– 4/21

21. अखिलमिदमुष्य गौरीगुरोस्त्रिभुवनमपि नैति मन्ये तुलाम् ।
अधिवसति सदा यदेनं जनैरविदितविभवो भवानीपतिः ।। किरातार्जुनीयम्– 5/21

22. संसिद्धावितिकरणीयसंनिबधैरालापैः पिपतितांष विलङ्घ्य वीथीम् ।
आसेदे दशशतलोचनध्वजिन्या जीमूतैरपिहितसानुरिन्द्रकीलः।। किरातार्जुनीयम्– 7/17

23. श्रेयसीं तव सम्प्राप्ता गुणसम्पदमाकृतिः ।
सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम् ।। किरातार्जुनीयम् 11/11

24. अविज्ञातप्रबन्धस्य वचो वाचस्पतेरपि।
व्रजत्यफलतामेव नयद्रुह इवेहितम् ।। किरातार्जुनीयम्– 11/43

25. गुरुन्कुर्वन्ति ते वंस्यानन्वर्था तैर्वसुन्धरा ।
येषां यशांसि सुभ्राणि ह्वेपयन्तीन्दुमण्डलम् ।। किरातार्जुनीयम् 11/64

26. कथं वादीयतामर्वाङमुनिता धर्मविरोधिनी ।
आश्रमानुक्रमः पूर्वैः स्मर्यते न व्यतिक्रमः ।। किरातार्जुनीयम् 11/76

27 वयं क्व वर्णाश्रमरक्षणोचिताः क्व जातिहीना मृगजीवितच्छिदः ।
सहापकृष्टैर्महतां न संगतं भवन्ति गोमायुसखा न दन्तिनः ।। किरातार्जुनीयम्–14/22

# विंध्य क्षेत्र में वी. डी. सावरकर के विचारों का प्रसार और प्रभाव

**आकांक्षा***

**शोध सार:**
यह शोध "विंध्य क्षेत्र में सावरकर के विचारों का प्रसार और प्रभाव" पर केंद्रित है, जो सावरकर के राष्ट्रवाद, हिन्दुत्व और समाज सुधार विचारों का विंध्य क्षेत्र के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य पर प्रभाव का अध्ययन करता है। सावरकर का योगदान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण था, और उनके विचारों ने इस क्षेत्र में सामाजिक जागरूकता और राजनीतिक सक्रियता को बढ़ावा दिया। इस शोध में विंध्य क्षेत्र में सावरकर के विचारों के प्रारंभिक प्रभाव, उनके राष्ट्रवाद और हिन्दुत्व के सिद्धांतों का प्रसार, और इसके परिणामस्वरूप सामाजिक सुधारों और सांस्कृतिक जागरूकता की प्रक्रिया को विश्लेषित किया गया है। इसके साथ ही, सावरकर के विचारों के कारण विंध्य क्षेत्र के नेताओं और आंदोलनों में आए बदलावों का भी अध्ययन किया गया है। शोध में यह भी बताया गया है कि सावरकर के विचारों ने इस क्षेत्र में धार्मिक और सामाजिक एकता को बढ़ावा दिया, लेकिन साथ ही कुछ विवाद भी उत्पन्न किए, विशेष रूप से उनके हिन्दुत्व के दृष्टिकोण को लेकर। शोध अंत में यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि सावरकर के विचारों का विंध्य क्षेत्र पर गहरा और दीर्घकालिक प्रभाव रहा है, जो आज भी इस क्षेत्र की सांस्कृतिक और राजनीतिक धाराओं में देखा जा सकता है।

**कि शब्द:** हिंदुत्व, राष्ट्रीय एकता, समाज सुधार, स्वतंत्रता संग्राम, सावरकर के विचार

**प्रस्तावना**

**सावरकर के जीवन और उनके विचारों का परिचय**

विनायक दामोदर सावरकर (1883-1966) भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के महान नेता, लेखक और विचारक थे। उनका योगदान न केवल स्वतंत्रता संग्राम में था, बल्कि उन्होंने हिन्दुत्व के सिद्धांतों का भी प्रचार किया। उनका प्रमुख काम 'हिन्दुत्व: Who is a Hindu?' था, जिसमें उन्होंने हिन्दू धर्म और संस्कृति की परिभाषा दी और भारतीय राष्ट्रीयता का आधार हिन्दुत्व को बताया। उनके विचारों में इतिहास को लेकर नया दृष्टिकोण और समाज सुधार की दिशा में कई महत्वपूर्ण पहलें थीं।

**विंध्य क्षेत्र का सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व**

विंध्य क्षेत्र भारतीय उपमहाद्वीप के मध्य स्थित एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्र है। यह क्षेत्र प्राचीन समय से ही महत्वपूर्ण सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक गतिविधियों का केंद्र रहा है। यह क्षेत्र धार्मिक विविधता, सामाजिक परंपराओं और सांस्कृतिक धरोहरों के लिए प्रसिद्ध है। इसके अलावा, इस क्षेत्र ने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान कई वीर सेनानियों और नेताओं को जन्म दिया, जिन्होंने ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष किया।

**सावरकर के विचारों का इस क्षेत्र पर प्रभाव क्यों महत्वपूर्ण है**

सावरकर के विचारों का प्रभाव विंध्य क्षेत्र में महत्वपूर्ण था क्योंकि यह क्षेत्र भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय था। सावरकर के राष्ट्रवादी विचार और हिन्दुत्व के सिद्धांत ने क्षेत्र के सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को प्रभावित

* शोध छात्रा - इतिहास विभाग, NET/JRF, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा

किया। उनका विचार भारतीयों को एकजुट करने और विदेशी शासन के खिलाफ विद्रोह के लिए प्रेरित करने का था। इस क्षेत्र में उनके विचारों का प्रसार स्थानीय समाज और राजनीति में बदलाव लाने में सहायक रहा, और यह भारतीय राष्ट्रीयता की धारणा को गहरे तरीके से प्रभावित करने वाला था।

**साहित्य कि समीक्षा**

सावरकर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अग्रणी नेताओं में से एक थे। उन्होंने ब्रिटिश शासन के खिलाफ सक्रिय रूप से संघर्ष किया और 1909 में दिल्ली षड्यंत्र मामले में गिरफ्तार होने के बाद काले पानी की सजा भोगी। उनकी किताब 'द हिस्ट्री ऑफ द वॉर ऑफ इंडिपेंडेंस' में उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को एक नया दृष्टिकोण दिया और इसे एक संगठित विद्रोह के रूप में प्रस्तुत किया। उनका मानना था कि भारत की स्वतंत्रता केवल संघर्ष और बलिदान से ही प्राप्त की जा सकती है। सावरकर का योगदान संघर्ष की रणनीति और स्वतंत्रता संग्राम के ऐतिहासिक अध्ययन में अत्यधिक महत्वपूर्ण था।

सावरकर का राष्ट्रवाद उस समय के लोकप्रिय विचारधाराओं से अलग था। उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद को एक सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के रूप में परिभाषित किया, जिसमें भारत की पहचान उसकी प्राचीन संस्कृति, धर्म, और सभ्यता से जुड़ी हुई हो। सावरकर ने 'हिन्दुत्व' शब्द का प्रयोग किया, जिसका उद्देश्य भारतीयों को एक साझा सांस्कृतिक और राष्ट्रीय पहचान के रूप में एकजुट करना था। उनके अनुसार, हिन्दू धर्म केवल एक धार्मिक विश्वास नहीं था, बल्कि यह भारतीयता की पहचान और संस्कृति का मूल था। उनका दृष्टिकोण भारतीयों के लिए एक शक्तिशाली राष्ट्रीयता की आवश्यकता पर बल देता था, जिसमें सभी हिन्दू एकजुट हों।

**सावरकर के योगदान के विविध पहलु जैसे शिक्षा, समाज सुधार, और राष्ट्रीय एकता**

शिक्षा: सावरकर ने शिक्षा को भारतीय राष्ट्रीयता की ताकत के रूप में देखा। उन्होंने भारतीय शिक्षा प्रणाली में सुधार की आवश्यकता महसूस की, ताकि युवा पीढ़ी को राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता के विचारों से जोड़ा जा सके। उन्होंने भारतीय युवाओं के लिए एक राष्ट्रीय और संस्कृतिक शिक्षा की आवश्यकता पर जोर दिया।

समाज सुधार: सावरकर ने भारतीय समाज में फैली हुई कुरीतियों और सामाजिक असमानताओं के खिलाफ संघर्ष किया। उन्होंने जातिवाद और अस्पृश्यता की प्रथा को समाप्त करने के लिए प्रयास किए। वे समाज में समानता और एकता की आवश्यकता मानते थे, जो हिन्दू समाज की सशक्तता के लिए जरूरी थी।

राष्ट्रीय एकता: सावरकर के लिए भारत की स्वतंत्रता का मार्ग केवल राजनीतिक नहीं था, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक एकता से भी जुड़ा था। उनका मानना था कि भारतीय समाज में हिन्दू एकता और अखंडता को बढ़ावा देने से ही ब्रिटिश शासन के खिलाफ मजबूत प्रतिरोध उत्पन्न हो सकता था। उनके विचारों ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को एक सशक्त सांस्कृतिक आधार प्रदान किया।

**विंध्य क्षेत्र में सावरकर के विचारों का प्रसार**

विंध्य क्षेत्र में सावरकर के विचारों का प्रसार स्वतंत्रता संग्राम के प्रारंभिक दिनों में ही शुरू हो गया था। उनके राष्ट्रवादी विचारों और हिन्दुत्व के सिद्धांतों ने इस क्षेत्र के नेताओं और समाज को आकर्षित किया। क्षेत्र के कुछ प्रमुख नेता और सामाजिक कार्यकर्ता सावरकर के विचारों से प्रेरित होकर ब्रिटिश शासन के खिलाफ सक्रिय रूप से आगे आए। सावरकर की लिखी हुई किताबों और उनके विचारों के प्रचार ने इस क्षेत्र में राष्ट्रीय चेतना को बढ़ावा दिया।

**स्थानीय नेतृत्व और सावरकर के विचारों की स्वीकार्यता**

विंध्य क्षेत्र में स्थानीय नेतृत्व ने सावरकर के विचारों को तेजी से अपनाया। उनके विचारों से प्रभावित होकर इस क्षेत्र के नेताओं ने भारत की स्वतंत्रता के लिए संगठित संघर्ष का आह्वान किया। खासकर इस क्षेत्र के युवाओं ने

सावरकर के हिन्दुत्व और राष्ट्रवाद के सिद्धांतों को अपने आंदोलनों में शामिल किया। इसके अलावा, सावरकर के विचारों ने समाज के विभिन्न वर्गों को एकजुट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यहां के समाज सुधारक और राजनीतिक कार्यकर्ता सावरकर के आदर्शों के प्रति सम्मान दिखाते हुए उनकी विचारधारा को लागू करने की दिशा में कार्यरत थे।

**सावरकर के विचारों का प्रचार माध्यमों और संगठनों के माध्यम से प्रसार**

सावरकर के विचारों का प्रसार विंध्य क्षेत्र में विभिन्न माध्यमों से हुआ। समाचार पत्रों, पंफलेट्स और पुस्तकों के माध्यम से उनके विचारों का प्रचार हुआ। स्थानीय पत्रकारों और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने सावरकर की विचारधारा को बढ़ावा देने के लिए उनके लेखों और भाषणों को प्रकाशित किया। इसके साथ ही, विभिन्न राष्ट्रीय और सामाजिक संगठनों ने सावरकर के विचारों को अपनाया और स्वतंत्रता संग्राम में अपनी भूमिका निभाई। कई संगठनों ने विंध्य क्षेत्र में सावरकर के सिद्धांतों को लागू करने के लिए कार्यक्रम और सभा आयोजित की, जिससे उनके विचारों का प्रसार अधिक प्रभावी हुआ।

**सावरकर के विचारों का सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव**

**विंध्य क्षेत्र में समाजिक संरचना पर असर**

सावरकर के विचारों ने विंध्य क्षेत्र की सामाजिक संरचना पर गहरा असर डाला। उनका हिन्दुत्व और समाज सुधार के सिद्धांतों ने सामाजिक कुरीतियों, जैसे जातिवाद और अस्पृश्यता, के खिलाफ जागरूकता पैदा की। सावरकर ने हिन्दू समाज को एकजुट करने के लिए आह्वान किया और इसके परिणामस्वरूप विंध्य क्षेत्र में जातिगत भेदभाव और अन्य सामाजिक असमानताओं के खिलाफ संघर्ष तेज हुआ। इसने स्थानीय समाज में एक नई सामाजिक चेतना को जन्म दिया, जिसके परिणामस्वरूप समाज में कुछ हद तक सुधार हुए।

**सावरकर के विचारों का धार्मिक और सांस्कृतिक धारा पर प्रभाव**

सावरकर के हिन्दुत्व के विचारों ने धार्मिक और सांस्कृतिक धारा पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव डाला। उन्होंने हिन्दू धर्म को केवल धार्मिक विश्वास के रूप में नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक और राष्ट्रीय पहचान के रूप में परिभाषित किया। विंध्य क्षेत्र में, जहां विभिन्न धार्मिक समुदायों का मिश्रण था, सावरकर के विचारों ने हिन्दू समुदाय को एकजुट किया और इसके सांस्कृतिक मूल्यों को बढ़ावा दिया। इसके अलावा, सावरकर के विचारों ने भारतीय संस्कृति और इतिहास को लेकर नए दृष्टिकोण को जन्म दिया, जिससे क्षेत्रीय सांस्कृतिक आंदोलनों को प्रेरणा मिली।

**सावरकर के हिन्दुत्व और समाज सुधार विचारों की सामाजिक प्रतिक्रियाएँ**

सावरकर के हिन्दुत्व और समाज सुधार विचारों पर समाज के विभिन्न वर्गों ने मिश्रित प्रतिक्रियाएँ दीं। जहां एक ओर उनके विचारों ने हिन्दू समुदाय के भीतर एकता और सशक्तिकरण की भावना को बढ़ावा दिया, वहीं कुछ वर्गों ने इसे समाज के अन्य धर्मों के प्रति असहिष्णुता के रूप में देखा। विशेष रूप से, मुस्लिम और आदिवासी समुदायों में सावरकर के विचारों के प्रति विरोध और आलोचना देखी गई, क्योंकि उन्हें यह महसूस हुआ कि सावरकर का हिन्दुत्व केवल एक विशेष धर्म और संस्कृति को प्राथमिकता देता है। इसके बावजूद, उनके समाज सुधार विचारों, जैसे अस्पृश्यता के खिलाफ संघर्ष और जातिवाद के उन्मूलन का आह्वान, ने क्षेत्र के सामाजिक ढांचे में कुछ सुधारों को प्रोत्साहित किया।

**सावरकर के प्रभाव का राजनीतिक दृष्टिकोण**

**विंध्य क्षेत्र में सावरकर के विचारों का राजनीतिक परिवर्तन में योगदान**

सावरकर के विचारों ने विंध्य क्षेत्र की राजनीतिक दिशा को प्रभावित किया। उनके राष्ट्रवादी दृष्टिकोण और स्वतंत्रता संग्राम के प्रति प्रतिबद्धता ने इस क्षेत्र के राजनीतिक नेताओं को ब्रिटिश शासन के खिलाफ सक्रिय संघर्ष में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। सावरकर के विचारों ने राजनीति को केवल सरकारी विरोध से नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता की रक्षा के संदर्भ में भी देखा। इस प्रकार, उनके प्रभाव ने इस क्षेत्र के नेताओं को एक नई राजनीतिक दिशा दी, जो राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक सशक्तिकरण पर केंद्रित थी।

**सावरकर के राष्ट्रवाद के प्रभाव से क्षेत्रीय राजनीति में बदलाव**

सावरकर के राष्ट्रवाद ने विंध्य क्षेत्र में राजनीति को सांस्कृतिक और धार्मिक पहचान से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनका विचार था कि भारतीय राष्ट्रीयता का आधार केवल राजनीतिक स्वतंत्रता में नहीं, बल्कि संस्कृति, धर्म और एकता में भी निहित है। इस दृष्टिकोण ने क्षेत्रीय राजनीति में बदलाव लाया, जहां राजनीतिक नेता सावरकर के विचारों के आधार पर भारतीयता और हिन्दू संस्कृति को प्रमुखता देने लगे। इसके परिणामस्वरूप, क्षेत्रीय राजनीति में एक नई दिशा का विकास हुआ, जिसमें सामाजिक एकता और सांस्कृतिक समर्पण का भाव प्रमुख था।

**स्वतंत्रता संग्राम में विंध्य क्षेत्र के नेता और सावरकर का सहयोग**

स्वतंत्रता संग्राम में विंध्य क्षेत्र के कई नेता सावरकर से प्रेरित थे और उनके विचारों को अपनाते हुए संघर्ष में भाग लिया। सावरकर के हिन्दुत्व और राष्ट्रवाद ने इस क्षेत्र के नेताओं को एकजुट किया, जिससे स्थानीय स्तर पर स्वतंत्रता संग्राम को बल मिला। उन्होंने सावरकर के विचारों के प्रचार के लिए संगठन और आंदोलनों का गठन किया। साथ ही, सावरकर के विचारों ने उन्हें ब्रिटिश शासन के खिलाफ अपने संघर्ष को और अधिक सशक्त बनाने की दिशा दी। क्षेत्र के नेता सावरकर की राजनीति और विचारधारा को अपनाते हुए स्वतंत्रता संग्राम में योगदान देने के लिए प्रेरित हुए।

**आलोचनाएँ और विवाद**

**सावरकर के विचारों पर क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर आलोचनाएँ**

सावरकर के विचारों पर क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न प्रकार की आलोचनाएँ हुईं। उनके हिन्दुत्व के सिद्धांत ने समाज के कुछ वर्गों को विवादित किया, विशेषकर मुसलमानों और अन्य धार्मिक अल्पसंख्यकों को। उनके विचारों को असहिष्णुता और धार्मिक भेदभाव को बढ़ावा देने के रूप में देखा गया। विंध्य क्षेत्र में भी सावरकर के विचारों को लेकर आलोचनाएँ थीं, जहां कुछ समुदायों ने उनके विचारों को हिन्दू धर्म के एकतरफा दृष्टिकोण के रूप में देखा। राष्ट्रीय स्तर पर भी सावरकर के हिन्दुत्व को लेकर विवाद उत्पन्न हुआ, क्योंकि इसे भारतीय समाज की विविधता और धर्मनिरपेक्षता के खिलाफ माना गया।

**सावरकर के दृष्टिकोण के राजनीतिक और सामाजिक विवाद**

सावरकर के दृष्टिकोण को राजनीतिक और सामाजिक रूप से भी कई विवादों का सामना करना पड़ा। उनका राष्ट्रवाद विशेष रूप से सांस्कृतिक और धार्मिक पहचान पर आधारित था, जो कुछ वर्गों को अस्वीकार्य लगा। उनके हिन्दुत्व के सिद्धांत ने धार्मिक विविधता के लिए एक चुनौती प्रस्तुत की, और इसे भारतीय समाज में धार्मिक और सांस्कृतिक असहमति को बढ़ावा देने वाला माना गया। इसके अलावा, उनका दृष्टिकोण समाज सुधार के मुद्दों पर भी विवादित था। जबकि वे अस्पृश्यता और जातिवाद के खिलाफ थे, उनका तरीका और दृष्टिकोण कई बार उग्र और एकतरफा प्रतीत हुआ, जिससे समाज के विभिन्न वर्गों में असंतोष उत्पन्न हुआ।

इन विवादों के बावजूद, सावरकर के विचारों का स्वतंत्रता संग्राम में और भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान रहा, और वे आज भी चर्चा का विषय बने हुए हैं।

**निष्कर्ष**

**सावरकर के विचारों का विंध्य क्षेत्र पर समग्र प्रभाव**

सावरकर के विचारों का विंध्य क्षेत्र पर गहरा और व्यापक प्रभाव पड़ा। उनके राष्ट्रवाद, हिन्दुत्व और समाज सुधार के सिद्धांतों ने इस क्षेत्र के सामाजिक और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को आकार दिया। उनके विचारों ने स्थानीय समाज में जागरूकता पैदा की, जिससे धार्मिक और सामाजिक एकता को बढ़ावा मिला। इसके साथ ही, सावरकर के विचारों ने स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित किया और क्षेत्रीय नेताओं को एकजुट किया। हालांकि उनके विचारों पर विवाद भी थे, फिर भी उनके प्रभाव ने इस क्षेत्र में परिवर्तन की दिशा निर्धारित की।

**आज के समय में उनके विचारों की प्रासंगिकता**

आज के समय में सावरकर के विचारों की प्रासंगिकता बनी हुई है, खासकर राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक पहचान के संदर्भ में। सावरकर का दृष्टिकोण भारतीयता और हिन्दुत्व को एक सांस्कृतिक धारा के रूप में देखने का था, जो आज भी कई राजनीतिक और सांस्कृतिक आंदोलनों में महत्वपूर्ण है। हालांकि उनकी विचारधारा को लेकर आलोचनाएँ भी हैं, लेकिन यह मान्यता बनी रहती है कि उनका योगदान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में अहम था। उनकी विचारधारा ने भारतीय समाज में एकता और सशक्तिकरण की दिशा में कई पहलें दीं, जो आज भी प्रासंगिक हैं।

**भविष्य के लिए सावरकर के विचारों का महत्व**

भविष्य में सावरकर के विचारों का महत्व और भी बढ़ सकता है, विशेषकर जब भारतीय समाज और राजनीति को एकजुट करने के लिए सांस्कृतिक पहचान और राष्ट्रीयता के सिद्धांतों की आवश्यकता महसूस होगी। उनके समाज सुधारक दृष्टिकोण ने भारतीय समाज में कुछ बदलावों का आह्वान किया था, और ये भविष्य में भी भारतीय समाज में सुधारों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन सकते हैं। हालांकि, सावरकर के विचारों को समय और संदर्भ के अनुसार समझना जरूरी है, लेकिन उनके योगदान का मूल्य आज भी भारतीय समाज और राजनीति में महत्वपूर्ण रहेगा।

**संदर्भ**

सावरकर, वी. डी. (1923). हिंदुत्व: हू इज़ ए हिंदू?, हिंदुस्तान पब्लिकेशन्स, नागपुर, पृष्ठ 120।
सावरकर, वी. डी. (1909). भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का प्रथम युद्ध, 1857, वीर सावरकर प्रकाशन, मुंबई, पृष्ठ 378।
सावरकर, वी. डी. (1920). नेशनलिज़्म की ज्वाला से, आर्य समाज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, पृष्ठ 320।
राजवाडे, वी. आर. (1999). वीर सावरकर: द मैन एंड हिज़ टाइम्स, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 245।
भटनागर, आर. सी. (2007). सावरकर: अतीत की गूंज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृष्ठ 198।
त्रिपाठी, आर. एस. (1995). विंध्य क्षेत्र का इतिहास, श्री पब्लिकेशन्स, वाराणसी, पृष्ठ 310।
मिश्रा, ए. के. (2002). विंध्य की सांस्कृतिक विरासत, अकादमिक प्रेस, भोपाल, पृष्ठ 276।
चौहान, एन. एस. (1984). विंध्य में स्वतंत्रता संग्राम, विद्या प्रकाशन, ग्वालियर, पृष्ठ 230।
गुप्ता, एस. के. (2010). विंध्य के धार्मिक और सामाजिक आंदोलन, सरस्वती प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ 315।
सोनी, प्रकाश एस. (2005). भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में विंध्य क्षेत्र की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, इंदौर, पृष्ठ 270।

# प्राचीन भारतीय शिक्षा के संप्रदान की वैदिक प्रक्रिया

आनन्द प्रताप निषाद*

**प्रस्तावना–**

भारत एक प्राचीन व भौगोलिक दृष्टि से विशाल राष्ट्र है। अपनी इसी विशालता के कारण ही यह नाना प्रकार के जैव, जलवायु और सांस्कृतिक विविधताओं से सदैव परिपूर्ण रहा है। किसी समय सम्पूर्ण दक्षिण पूर्व एशियाई भू–भाग को भारत का ही एक अंग माना जाता था तथापि वर्तमान समय में यह देश बत्तीस लाख वर्ग किलोमीटर के परिक्षेत्र में कश्मीर से कन्याकुमारी तक विस्तृत है। भारत की इसी भौगोलिक सीमा का सीमांकन करते हुए हमारे वैदिक वाग्डमय में कहा भी गया है–

**उत्तर यर्त्समुद्रस्य हिमाद्रे श्चौव दक्षिणम**
**वर्ष तदभारतं नाम भारती यत्र संतति**

**(विष्णु पुराण)**

ऋषियों–महर्षियों की परम् पवित्र तपस्थली भारत भूमि पर सदैव सन्त–महात्माओं, महायोगियों व धर्माचार्यों, चिन्तकों, विचारकों व देवतूल्य महापुरूषों का अवतरण होता रहा है। यहाँ धर्म पर आधारित शिक्षा भारतीय जीवन का आवश्यक अंग व यहाँ की संस्कृति की आधारशिला रही है। प्राचीन भारत की धार्मकता से ओत–प्रोत शिक्षा से लोगों में अच्छे संस्कार उत्पन्न होते रहे हैं और उनमें मानवीय गुणों एवं नैतिक मूल्यों की वृद्धि व उनका संर्षण होता रहा है। भारतीय संस्कृति हमारी चेतना को परिष्कृत करती रही है परिणामस्वरूप इससे हमारे आचार विचार व व्यवहार भी परिष्कृत होते रहे हैं।

प्राचीन धार्मिक शिक्षा में धर्माचरणों, वर्णाश्रमों, संस्कारों, सामाजिक, सांस्कृतिक वैभवों, परर्वती युग, राष्ट्रीय चरित्र, पारस्परिक संवेदनाओं और स्थापित नैतिक आदर्शों के लिए पर्यप्त स्थान रहा है। उसके महत्व का चित्रण करते हुए प्राचीन ग्रन्थों में यह स्पष्ट किया गया है कि उसका उद्देश्य तत्कालीन समाज एवं परिस्थितियों में चरित्र–निर्माण, धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति, सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण और संवर्धन, गृहस्थ जीवन के व्यवहारिक व सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति एवं देश की भावी पीढियों का नव निर्माण करना है। प्राचीन शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य था, छात्रों में दैवीय गुणों, नैतिकता व कर्त्तव्यपरायणता का विकास करना।

**प्राचीन भारतीय शिक्षा–**

भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही शिक्षा का स्वरूप अत्यन्त सुव्यवस्थित और सुनियोजित था। इसके अन्तर्गत व्यक्ति के उत्थान के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी। मनुष्य और समाज का आध्यात्मिक और बौद्धिक उत्कर्ष शिक्षा के माध्यम से ही संभव माना जाता है। वैदिक काल में विद्या शब्द का प्रयोग भारत भूमि की विशिष्टता, आध्यात्मिकता, महत्ता एवं सनातन गरिमा का कारण इस भूमि की शिक्षा मूलकता ही है।

यद्यपि इस देश के भारत नामकरण में 'भरत नामक सम्राट का पौराणिक व्यक्तित्व है तथापि व्युत्पत्त की व्यंजना इसकी शिक्षानुरागिता को ही ध्वनित करती है। यथा 'भा' का अर्थ ज्ञान प्रकाश एवं 'रत' का अर्थ निरंतरता अथवा सतत संलग्नता है। ज्ञान प्राप्ति हेतु निरंतर प्रयत्नशीलता भारत की मौलिक विशेषता है। आदि काल से ही अपनी जिज्ञासाओं के प्रत्युत्तर में भृगु, अंगिरा ऋषियों से रक्षित–पोषित विश्व पटल पर पहली विचारशील एवं परिभाषित सभ्यता का आविर्भाव हुआ जिसे संस्कारित होने के कारण संस्कृति का अभिधान प्राप्त हुआ। ऐसा वैदिक ऋषियों का स्पष्ट उद्घोष है

**या प्राथमा संस्कृति विश्वकर्मा ।**
**यो मध्यमो बृहस्पतिश्चिंकित्वान।।**

**(काठक संहिता 4/25/21)**

* शोधार्थी–शिक्षाशास्त्र, लालबहादुर शास्त्री स्मारक पी.जी. कॉलेज आनन्दनगर, महराजगंज, उ.प्र. (सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर, उ.प्र.)

वेद, विद्या पराज्ञान की ध्वजा एवं इस संस्कृति के निर्माण की बीजरूपा है। सनातन संस्कृति के समस्त आयाम इसी से विनिर्मित हैं ऐसा परवर्ती शास्त्रकार भी मुक्त कंठ से स्वीकार करते हैं। (मनुस्मृति 2.7, 12.94)

**प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धतियाँ–**

व्यक्ति को संस्कार युक्त मानव बनानें एवं सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन करनें में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। भौतिक और आध्यात्मिक जीवन के निर्माण तथा विभिन्न उत्तरदायित्वों को निष्पन्न करनें के लिए शिक्षा की नितान्त आवश्यकता होती है। मनुष्य व समाज का बौद्धिक उत्कर्ष शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव माना जाता रहा है। प्राचीन काल में गुरुकुलों व विद्यालयों में छात्रों को शिक्षा प्रदान करने की अनेकानेक विधियाँ–पद्धतियाँ थी जिनकी संक्षिप्त विवेचना अग्रलिखित है।

**उच्चारण पद्धति–**

शिक्षण की यह प्रथम एवं प्रमुख पद्धति थी जिसके द्वार वर्णोच्चारण की शिक्षा आचार्य द्वारा शिक्षार्थी को दी जाती थी। प्राचीन शिक्षा–शास्त्री इस तथ्य पर अधिक बल देते थे कि बालक, वर्णों का शुद्ध उच्चारण करनें में समर्थ हो सके। वर्णोच्चारण शिक्षा में स्वरों एवं व्यंजनों के उच्चारण भेद, उनकी संख्या मंत्रों के लिए उनका विनियोग होता था। स्वरों के उदात, अनुदात्त, हस्व, दीर्घ आदि के भेदों तथा प्रभेदों पर अधिक ध्यान दिया जाता था। ध्वनि की उत्पत्ति प्रक्रिया में स्वरों का उच्यारण किया जाता था। तत्पश्चात व्यंजनों का लेक्षण और ध्वनि विज्ञान का समायोजन प्रत्येक बालक को बताया जाता था। वर्णोच्चारण मैं वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और संतान प्रमुख अंग माने जाते थे। वर्ण से अभिप्राय अक्षरों से है। अतः बालक के लिए वर्णमाला का ज्ञान उच्चारण द्वारा कराया जाता था। स्वर से अभिप्राय उदात्त अनुदात्त और स्वरित से है। ''मात्रा का अभिप्राय स्वरों के उच्चारण में लगने वाले समय से है।

**श्रुति स्वाध्याय पाठ पद्धति**

वैदिक विद्वान इस बात पर जोर देते थे कि वैदिक मंत्र अपनें मूल रूप में ही कंण्ठस्थ कर लिए जाएं। उनके मूल स्वर और उच्चारण शैली में परिवर्तन न किया जाये। इस समस्या के समाधान के लिए उस काल के विद्वानों नें वैदिक मंत्रों में प्रयुक्त कठिन शब्दों एवं मुहावरों की एक वृहद सूची तैयार कर डाली। वैदिक शाखा, ग्रन्थ या छन्दों को कंण्ठस्थ करनें की प्रथा थी। श्रावर्णी या भाद्रय पुर्णिमा को उपाकर्म करने के पश्चात साढ़े चार महीनें तक वेद का अध्ययन किया जाता था। नियमानुसार पाठ करनें वाला परायणी या पाठ करनें वाला होता था।

''स्मृति चन्द्रिका'' में नारद का कथन है कि पुस्तक या पांडुलिपि की आकांक्षा रखने वाले विद्यार्थियों को श्रेयस्कर नहीं माना जाता था। क्योंकि पुस्तक के ऊपर आश्रत होना विद्या प्राप्ति में बाधक है।

**मौखिक पद्धति–**

प्राचीन भारत में अध्यापन की सर्वाधिक प्रचलित पद्धति मौखिक थी। इस मौखिक पद्धति में ही उच्चारण, श्रुति–स्मृति के प्रकार प्रचलित थे। मौखिक पद्धति आधुनिक वैज्ञानिक विकास के काल में भी विश्व में 80 प्रतिशत छात्रों को शिक्षा प्रदान करनें का सबसे सस्ता, शीघ्र सर्व सुलभ एवं अल्प समय का सरल माध्यम है। प्राचीन काल में पुस्तकों की अनुपलब्धता के कारण मौखिक पद्धति सर्वाधिक उपयोगी थी।

**आवृत्ति पद्धति–**

कुछ सूत्रों से कंठस्थ करने की प्रक्रिया पर प्रकाश पड़ता है। एक तो जितनी बार धोर वने से ग्रन्थ कंठस्थ होता था उतने अध्ययन आवृत्त की संख्या प्रकट करनें के लिए भाषा में प्रयोग थे। जैसे– पंच कोडधीत, सप्त कोडधीत, अष्टक नवक अर्थात पाँच आवृत्ति या पाँच बार में जिसका अध्ययन पक्का हो उसके लिए उसी का प्रावधान था। अथवा पांच प्रकार से जो अध्ययन या आवृत्ति की जाऐ वह भी पंचक कहलाती थी। दूसरी बात यह थी कि परायण करते समय जो अशुद्धियाँ होती उन्हें भी प्रकट करनें के लिए भाषा में प्रयोग थे। अध्ययन या परायण सुनाते समय परीक्षा काल में जितनी अशुद्धियाँ हो उनकी गिनती सूचित करनें वाले प्रयोग भी चलते थे। जैसे ऐकान्यिक जो एक अशुद्धि करे। ऐसे ही द्वैयान्यिक, मैयान्यिक आदि, दस अशुद्धियों तक बताने वाले शब्द थे। आवृत्ति पद्धति द्वारा छात्र विषयों को स्मरण करते थे। इस पद्धति का लाभ यह था कि प्राचीन काल के छात्र पूस्तकों पर प्रायः आश्रित नहीं होते थे और वे विषय– वस्तुओं को कंठस्थ रखते थे, जिससे किसी भी समय कंठस्थ विषय को समुत्पन्न कर सकते थे इस प्रकार विद्यार्थी अत्यधिक महत्वपूर्ण पुस्तकों को प्रारंभ से ही कंठस्थ कर लेते थे जो उनके अग्रिम अध्ययन की आधार भूमि होती थी, यथा – पाणिनी की 'अष्टाध्यायी', 'अमरकोश, मनुस्मृति तथा मम्मट आदि आचार्यों के काव्यशास्त्री ग्रन्थ। इस आवृत्ति पद्धति के

अधिकृत विद्वान होने के लिए यह आवश्यक था कि विद्यार्थी अपनें अध्ययन ही विषयों को कंठस्थ कर ले जो उसके जीवन पर्यन्त विद्यमान रहती थी।

**व्याख्यान प्रवचन पद्धति–**

प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति में आचार्य का स्थान सबसे महत्वपूर्ण समझा जाता था। वैदिक शिक्षा प्रायः मौखिक ढंग से व्याख्यानों और प्रवचनों के रूप में होती थी। जिसके लिए आचार्य की अनिवार्यता स्पष्ट थी। वेदों में आचार्य हेतु समिधाएँ तथा भिक्षा एकत्र करते हुए ब्रह्मचारी का वर्णन आता है। शतपरथ ब्राह्मण भी यज्ञोपासना विधि का ज्ञान प्रदान करनें वाले आचार्यों की परंपरा का उल्लेख मिलता है। जिसमें सर्वप्रथम प्रजापति का नाम आता है। स्वाध्याय संबंधी ग्रन्थों का अध्यापन करने वाला प्रवचनीय कहलाता था। जो वस्तु पढ़ाई जाती थी, उसके लिए भी यही शब्द था जैसे–प्रवचनीय गुरुणा स्वाध्याय, जिन अध्यापन कराने वालों को प्रवक्ता कहा गया वे ही वैदिक ग्रन्थों का प्रवचन करते थे। इस प्रकार वेदों की शिक्षा व्याख्यान या प्रवचन के माध्यम से भी की जाती थी। प्राचीन ग्रन्थ प्रायः स्रूों में लिखे गये विशेषतः व्याकरण और दर्शन के सिद्धान्त विशिष्ट समास शैली में लिखित हैं। जिन्हें छात्र स्मरण कर लेते थे जिससे स्मरण के भारी मार से बचत होती थी। परन्तु सूत्रों का व्यास–व्याख्यान द्वारा ही किया जाता था। इसे व्याख्यान व प्रवचचन पदद्ित का विकास है कालान्तर में भाष्य और टीका के रूप में प्रस्तृत की गई।

**प्रश्नोत्तर पद्धति–**

वैदिक कालीन शिक्षण विधि प्रश्नोत्तर प्रधान थी। अध्यापक किसी तथ्य का अध्ययन करने के लिए प्रश्नोत्तर विधि का प्रयोग करते थे। छात्र प्रश्नों के माध्यम से अपनी शंकाओं को गुरु के सामने रखते थे। गुरु उनकी शंकाओं का समाधान करते थे। इस विधि के विषय में वेदों में भी उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद, अथर्ववेद इत्यादि में अनेक मंत्र प्रश्नों के हैं और उनके द्वारा शिक्षादर्शन, विज्ञान, सृष्टि विज्ञान शरीर शास्त्र आध्यात्म परमात्मा आदि विविध विषयों ही ज्ञान की वृद्धि होती है। प्रश्ना का तर प्राप्त करने की बुद्धि की क्षमता ही जाने पर उत्तर के लिए पुस्तकों की आवश्यकता नहीं रहती है।

**श्रम आधारित विधियाँ–**

उपनिषद काल में गुरु का स्थान पूर्व की अपेक्षा अधिक समाहूत प्रतीत होता है। गुरु के द्वारा उपदिष्ट बुद्धि ही श्रेष्ठ ज्ञान के अनुकूल समझी जाने लगी थी। ज्ञान की प्राप्ति हेतु प्रत्येक जिज्ञासु हाथ में समिधा लेकर किसी प्रज्ञावान एवं वेद के ज्ञाता आचार्य के पास जाता था। उपनिषदों में आचार्य से ज्ञान प्राप्त करने वाले ऐसे अनेक साधको का वर्णन आता है। नचिकेता अपने पिता द्वारा क्रुद्ध दशा में यम को दिए जाने पर उसनें आत्म विद्या प्राप्त की। सत्यकाम तथा श्वेतकेयु आरूणेम भी अपने–अपने आचार्यों के समीप रह कर उनसे शिक्षा ग्रहण करने पर अपने ज्ञान को पूर्ण मानता था। जो उस काल में गुरु के महत्व को स्परष्ट करता है।

**भिक्षाटन पद्धती–**

आश्व लायन गृह–सूत्र ने भिक्षा के विषय में कहा है कि ब्रह्मचारी को ऐसे पुरूष या स्त्री से भिक्षा मांगनी चाहिए जो निषेध न करे। आचार्य सर्वप्रथम दण्ड देता है। उसके उपरान्त भिक्षापात्र देकर कहता है जाओ बाहर और भिक्षा मांग लाओ। ब्राह्मण ब्रह्मचारी ''भवति भिक्षां देहि'' शब्दों के साथ भिक्षा मांगता है। क्षत्रिय व वैश्य ब्रह्मचारी क्रमशः ''भिक्षा भरषति देहित'' एवं ''देहिं भिक्षा'' शब्दों से भिक्षा मांगते थे।

ब्रह्मचारी मिक्षा लाकर गुरु को अर्पित करता था और गुरु के आदेशानुसार ही उसे ग्रहण करता था। विद्यार्थी को भिक्षा मांगना अनिवार्य था। बिना कारण बताऐ सात दिन तक यदि भिक्षाटन नहीं होता था तो उसके लिए प्रायश्चित का भी विधान था। गोपथ ब्राह्मण के अनुसार प्रत्येक ब्रह्चारी अग्नि की उपासना करने हेतु प्रतिदिन समिधाएं एकत्र करे तथा भिक्षा मांगे। शिक्षण की व्यावहारिक विधि में भिक्षाटन का महत्वपूर्ण योगदान था। सामाजिक जीवन का प्रत्यक्ष अध्ययन, सामाजिक–आथिक राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों, प्रभावों एवं समस्याओं का आनुभविक ज्ञान प्राप्त करने का ''भिक्षाटन' एक सशक्त माध्यम था। उसके लिए भिक्षाटन का निर्देश इसलिए किया गया था कि वह निरभिमान होकर सामाजिक जीवन में भी संयम–नियम एवं विनय का पालन करे। सामाजिक सदाचारिता की शिक्षा देने की विधि भिक्षाटन की व्यवहारिक विधा थी।

**शास्त्रार्थ पद्धति–**

आदिकाल से ही साहित्य की शिक्षा में वाद––विवाद का बड़ा महत्व रहा है। वैदिक काल में भी विद्वानों के बीच शास्त्रार्थ चर्चा हुआ करती थी। ऋग्वेद में ऐसे साहित्यिक विवादों का वर्णन मिलता है। इनमें विजयी होने वाले को उचित पुरस्कार मिलता था। गुरुकुल में निरन्तर शास्त्रार्थ हुआ करते थे जिसमें साहित्यिक, काव्य न्याय और दर्शन के विद्यार्थी स्वपक्ष के सिद्धान्तों का मण्डन और विपक्ष के तरकों का खण्डन करते थे।

खण्डन–मण्डन के इस शिक्षण से विद्यार्थियों में व्यक्तित्व शक्ति का विकास होता था। बहुधा विद्वत सभाओं में स्त्रियां भी सहभाग करती थीं। याज्ञवल्क्य ने राजा जनक की सभा में शाकल्य से शास्त्रार्थ एवं सभा का नेतृत्व किया था। गार्गी ने अपनें प्रश्नों से याज्ञवल्क्य को चौंका दिया था यद्यपि अंततः याज्ञवल्क्य ही शास्त्रार्थ में विजेता घोषित किए गऐ। उददालक आरूणी और शची में शास्त्रार्थ के प्रमाण मिलते हैं। आचार्य शांडिल्य और उनके शिष्य सार्थवाह के बीच विचारों का आदान–प्रदान हुआ था। इस प्रकार की गोष्ठियों में साहित्यिक और धार्मिक परि चर्चाएं हुआ करती थी तथा अनेक प्रतिभाशाली विद्वान प्रकाश में आते थे। डा. अल्टेकर नें लिखा है कि वैदिक काल की यह परंपरा कालांतर में दीर्घकाल तक प्रचलित रही। प्राचीन काल की प्रसिद्ध शास्त्राथ शंकराचार्य का है, इनके युग के प्रतिष्ठित विद्वान और मीमासक पं. मण्डन मिश्र थे। वे कुमारिलभट्ट के शिष्य थे व उन्होंने ही शंकराचार्य को मण्डन मिश्र के साथ शास्त्रार्थ हेतु भेजा था।

वास्तव में शास्त्रार्थ पद्धति ज्ञान के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही होगी खास कर नवीन ज्ञान के प्रसार में । इस पद्धति का प्रयोग करने वाले लोगों का ज्ञान स्तर निश्चय ही सामान्य विद्वानों से ऊपर रहता होगा।

**गोष्ठी पद्धति**

प्राचीन काल में अर्जित ज्ञान का परीक्षण एवं अपूर्ण ज्ञान का संपूर्णन गोष्ठियों के माध्यम से होता था। गोष्ठियां शिक्षा ज्ञान प्रदान करने की सभा होती थी। गोष्ठी का अर्थ ही होता था–सभा, सम्मेलन संलाप, बात–चीत, प्रवचन आदि।

बाण ने दोष रहित विद्या गोष्ठी का विवरण दिया है। इस सम्बन्ध में डा. अग्रवाल का मत है कि प्राचीन काल में पद गोष्ठी, काव्य गोष्टी और जल्प गोष्ठी भी विद्या गोष्ठी के भेद जान पड़ते हैं। काव्य गोष्ठी में काव्य प्रबन्ध की रचना की जाती थी। प्राचीन काल में गोष्ठियों का बड़ा महत्व था व इनका आयोजन प्रायः राज्य की और से कराया जाता था।

**चरण पद्धति–**

चरण उस प्रकार की शिक्षा विधा थी, जिसमें वेद की एक शाखा का अध्ययन शिष्य करते थे और जिसका नाम मुल संस्थापक के नाम से पडता था। इसका सम्बन्ध संघ के आदर्श पर होता था। वैदिक साहित्य के विविध अंगों का विकास चरणों में हुआ था। जैसे मूल संस्थापक ऋषि द्वारा प्रोक्त छन्द या शाखा, मंत्रों की आध्यात्म पूर्ण व्याख्या करने वाले ब्राह्मण गथ एवं श्रोत सूत्र आदि कल्पग्रन्थ पाणिनी के समय से पूर्व ही चरणों में वैदिक साहित्य का इतना विकास सम्पन्न हो चुका था।

वस्तुतः वैदिक शाखा और ब्राह्मण ग्रन्थों का चरणों के साथ ऐसा तदात्म्य सम्बन्ध माना जाता था कि इन दोनों प्रकार के साहित्य का नामकरण चरणों में उनका अध्ययनाध्यापन करने वाले (अध्येत् वेदित) विद्वान गुरु शिष्यों के नाम पर ही प्रसिद्ध होता था। छन्द या शाखाऐं, ग्रन्थ मात्र नहीं रह गई थीं, बल्कि उन्होंने संस्थाओं का रूप ले लिया था। इनमें ब्राह्मण, आरण्यक, श्रोत सूत्र आदि साहित्य का भी समावेश हो गया था। पाणिनी काल में चरणों का विकास एक सीढ़ी और आगे पहुँच चुका था अथ्थात श्रोत सूत्र या कल्प ग्रन्थों के बाद धर्म सूत्रों की रचना भी चरण साहित्य के अंतर्गत हो गई थी। चरणोंक्योंधर्मवत् सूत्र में आचार्य नें इसी का उल्लेख किया है। वैदिक चरणों के विकास की यह अतिम कड़ी थी। जब धर्म सूत्रों का अध्ययन चरणों में हुआ उस युग में कितनें ही नऐ विषयों का अध्ययन चरणों के बाहर भी होने लगा। जिनकी शिक्षा विधि के नियम चरणों की अपेक्षा संभवतः सरल थे। एक बारे जब गुरु या शास्त्रज्ञ लोगों के स्वतंत्र रीति से अध्यापन कराने की प्रथा शुरू हुई तो फिर चरणों की वह बंधी हुई प्रतिष्ठा छिनती ही चली गयी।

**अरण्य पद्धति–**

वृक्ष, बाग–बगीचे, उद्यान वन, अरण्य, पृथ्वी के लिए, वायु के लिए, जल के लिए, वृष्टि के लिए, आरोग्यता के लिए, अग्नि के लिए, कृषि के लिए पशु पक्षियों के लिए, औषधि वनस्पति के लिए आवश्यक है अतः वेदों में कहा गया है–

**'नमो वृक्षेभ्यः''**

वृक्षों के लिए हमारा आदर भाव हो। उनको सूरक्षित रखने की तथा बढ़ाने की विद्या जाने।

**''नाना क्षतये नमः, न्मों वनाय च,**
**अरण्यानां पतये नमः औषधः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिः''**

वैदिक सभ्यता में वनों का अत्यन्त महत्व था। जीवन का प्रथम भाग ब्रह्मचर्ये है व इस अवर्था में अध्ययन करना आवश्यक है।

**अग्र शिष्य पद्धति–**

शिक्षा के क्षेत्र में विद्यार्थियों के पृथक–पृथक निरीक्षण को और भी फलवान बनाने के लिए वैदिक काल में उच्च कक्षाओं के बुद्धिमान छात्रों का सहयोग लिया जाता था। गुरु के आश्रम में जो छात्र कुशाग्र बुद्धि के थे वे निम्न कक्षाओं में पढ़ाते थे। इस विधि में प्रतिभावान छात्रों को अध्यापन का कार्य देने का शिक्षण कला की दृष्टि से बड़ा महत्व था। विद्यार्थियों के सम्मुख यह एक बड प्रलोभन होता था। इससे प्रतिभवान छात्रों को अध्यापन कला सीखने का अवसर मिलता था। विद्यालय की कार्यक्षमता में वृद्धि तथा व्यय में कमी होती थी, क्योंकि इस प्रकार आचार्य को निःशुल्क योग्य सहायक प्राप्त हो जाते थे।

## संदर्भ ग्रन्थ सूची

अल्तेकर, एवएस० – प्राचीन भारतीय शिक्षा, नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्स बनारस, 1958
गुप्ता, एस०पी० – भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद, 2005
चौबे, एस०पी0 – आदि और मध्ययुगीन भारत में शिक्षा, विनोद पुस्तक मन्दिर, 1974
जायसवाल, सीताराम – शिक्षा दर्शन एवं भारतीय शिक्षा की समस्याएँ, लखनऊ प्रकाशन केन्द्र सीतापुर रोड, 1982
दीक्षित, उपेन्द्रनाथ – भारतीय शिक्षा की प्रमुख समस्याएँ, राजस्थान बुक स्टोर्स, उदयपुर, 1985
दूबे, रमाकान्त – विश्व के महान शिक्षाशास्त्री, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ
पुरी, बैजनाथ – भारतीय संस्कृति के मूल तथ्य
वाजपेई, एल०वी० – भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामयिक प्रवृत्तियाँ, आलोक प्रकाशन, इलाहाबाद
भटनागर, एववी0 – भारत में शैकषिक प्रणाली का विकास आर0लाल बुक डिपो मेरठ
भटनागर, सुरेश – भारत में शिक्षा का विकास, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ
मिश्र, जयशंकर – प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना
रावत, प्यारेलाल – प्राचीन व आधुनिक भारतीय शिक्षा का इतिहास, भारत पब्लकेशन आगरा, 1961
शुक्ल, वशिष्ठ नारायण – प्राचीन भारत में मंदिर–शिक्षा के केन्द्र, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
सारस्वत, मालती – भारतीय शिक्षा का इतिहास, कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद, 1982
सिंह, कर्ण – भारतीय शिक्षा का ऐतिहासिक विकास एचवपी0 भार्गव बुक हाउस आगरा 2004
श्रीवास्तव, कृष्ण चन्द्र – प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, युनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2009।

# हिन्दी दलित साहित्य: स्वर, संरचना एवं प्रतिरोध की भाषा

**डॉ. अर्चना सिंह***

**परिचय**

हिन्दी साहित्य के परिदृश्य में दलित साहित्य एक महत्वपूर्ण और विशिष्ट विधा के रूप में उभरा है। यह साहित्य सदियों से हाशिये पर धकेले गए उस समुदाय की आवाज़ है, जिसने जातिगत भेदभाव, सामाजिक उत्पीड़न और मानवीय गरिमा के हनन को सहा है। दलित साहित्य न केवल इन अनुभवों को प्रामाणिकता से व्यक्त करता है, बल्कि सामाजिक न्याय, समानता और आत्म-सम्मान की स्थापना के लिए एक सशक्त प्रतिरोध भी प्रस्तुत करता है। यह शोध पत्र हिन्दी दलित साहित्य के तीन प्रमुख पहलुओं – स्वर, संरचना एवं प्रतिरोध की भाषा – का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि दलित साहित्य अपनी विशिष्ट आवाज़ कैसे निर्मित करता है, इसकी संरचनात्मक विशेषताएं क्या हैं और यह किस प्रकार प्रतिरोध की भाषा का प्रयोग करते हुए सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा रखता है।

**दलित साहित्य का उदय और विकास**

दलित साहित्य का उदय और विकास भारतीय समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था और उसके परिणामस्वरूप दलितों द्वारा झेले गए अमानवीय अनुभवों की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। यद्यपि अस्पृश्यता और भेदभाव की जड़ें बहुत गहरी हैं, लेकिन बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में दलित चेतना का तीव्र विकास हुआ, जिसने साहित्यिक अभिव्यक्ति का रूप लिया। डॉ. अम्बेडकर के विचारों, सामाजिक आंदोलनों और शिक्षा के प्रसार ने दलितों को अपनी पीड़ा और आकांक्षाओं को व्यक्त करने के लिए एक मंच प्रदान किया।

मराठी दलित साहित्य को इस दिशा में अग्रणी माना जाता है, जिसने हिन्दी सहित अन्य भारतीय भाषाओं के दलित साहित्य को भी प्रेरित किया। हिन्दी में दलित साहित्य की शुरुआत मुख्य रूप से 1980 के दशक में मानी जाती है, जब ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, सूरजपाल चौहान, शिवराज सिंह बेचैन और अन्य लेखकों ने अपनी आत्मकथाओं, कविताओं और कहानियों के माध्यम से दलित जीवन के यथार्थ को उजागर करना शुरू किया। इन लेखकों ने न केवल अपने व्यक्तिगत अनुभवों को साझा किया, बल्कि पूरे दलित समुदाय की सामूहिक पीड़ा और संघर्ष को भी अपनी रचनाओं में स्वर दिया।

दलित साहित्य का विकास कई चरणों से गुजरा है। शुरुआती दौर में यह मुख्य रूप से अपनी पहचान और अस्तित्व की घोषणा करता हुआ दिखाई देता है। बाद के चरणों में इसने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की मांग को अधिक मुखरता से उठाया। आज, दलित साहित्य एक स्थापित और सशक्त साहित्यिक धारा है, जो न केवल दलितों के अनुभवों को व्यक्त करती है, बल्कि मुख्यधारा के साहित्य और समाज को भी एक नई दृष्टि प्रदान करती है।

**हाशियाकृतों की आवाज़: अनुभव और अस्मिता की अभिव्यक्ति**

दलित साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता हाशिये पर धकेले गए लोगों की अपनी आवाज़ है। यह उन अनुभवों की प्रामाणिक अभिव्यक्ति है, जिन्हें सदियों तक दबा दिया गया था। दलित लेखक अपनी रचनाओं में जन्म से लेकर मृत्यु तक जाति के कारण होने वाले भेदभाव, अपमान और हिंसा का मार्मिक चित्रण करते हैं। यह आवाज़ उन गलियों, बस्तियों और घरों से उठती है जहाँ मानवीय गरिमा को लगातार चुनौती दी जाती है।

दलित साहित्य में व्यक्त स्वर पीड़ा, आक्रोश, वेदना और प्रतिरोध का मिलाजुला रूप है। यह उन बच्चों की चीख है जिन्हें स्कूल में अपनी जाति के कारण अलग बैठना पड़ता है, उन युवाओं का गुस्सा है जिन्हें अच्छी शिक्षा और रोजगार से वंचित

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, शिया पी.जी. कॉलेज, लखनऊ

रखा जाता है, और उन बुजुर्गों की निराशा है जिन्होंने जीवन भर अस्पृश्यता का दंश झेला है। यह स्वर अपनी पहचान और सम्मान के लिए संघर्ष कर रहे एक समुदाय की सामूहिक भावना को व्यक्त करता है।

दलित साहित्य दलित अस्मिता के निर्माण और पुनर्परिभाषित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह उन रूढ़ियों और नकारात्मक छवियों को चुनौती देता है जो सदियों से दलितों पर थोपी गई हैं। अपनी आत्मकथाओं, कहानियों और कविताओं के माध्यम से दलित लेखक अपनी मानवीयता, अपने ज्ञान, अपने कौशल और अपने संघर्षों को प्रस्तुत करते हैं। वे अपनी पहचान को गर्व से स्वीकार करते हैं और दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' इसका एक सशक्त उदाहरण है, जो न केवल उनके व्यक्तिगत अनुभवों को बयान करती है, बल्कि एक पूरे समुदाय की पीड़ा और संघर्ष को भी उजागर करती है।

**संरचना और रूप: पारंपरिक सीमाओं का अतिक्रमण**

दलित साहित्य अपनी संरचना और रूप में भी पारंपरिक साहित्यिक मानदंडों से अलग दिखाई देता है। दलित लेखकों ने अपनी भावनाओं और अनुभवों को व्यक्त करने के लिए प्रचलित साहित्यिक ढाँचों को चुनौती दी है और नए रूपों का प्रयोग किया है।

आत्मकथा दलित साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में उभरी है। 'जूठन' के अलावा, मोहनदास नैमिशराय की 'अपने-अपने पिंजरे', सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत' और शिवराज सिंह बेचैन की 'मेरे बचपन के दिन' जैसी आत्मकथाएँ दलित जीवन के अंतरंग और यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत करती हैं। ये आत्मकथाएँ न केवल व्यक्तिगत अनुभवों का लेखा-जोखा हैं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक टिप्पणी भी करती हैं।

कविता के क्षेत्र में भी दलित कवियों ने अपनी विशिष्ट शैली विकसित की है। उनकी कविताएँ सीधी, तीखी और भावनात्मक रूप से आवेशित होती हैं। वे पारंपरिक काव्य अलंकरणों और छंदों से मुक्त होकर अपनी बात को स्पष्ट और प्रभावशाली ढंग से कहते हैं। उदाहरण के लिए, नामदेव ढसाल की कविताएँ अपनी विद्रोही तेवर और सामाजिक चेतना के लिए जानी जाती हैं।

कहानियों और उपन्यासों में भी दलित लेखकों ने दलित जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया है। प्रेमचंद के साहित्य में दलित पात्रों का चित्रण मिलता है, लेकिन दलित लेखकों ने दलितों को विषय के केंद्र में रखकर उनकी आंतरिक दुनिया और उनके सामाजिक संघर्षों को अधिक गहराई से प्रस्तुत किया है।

दलित साहित्य की संरचना में मौखिक परंपरा का भी प्रभाव दिखाई देता है। लोककथाओं, लोकगीतों और मुहावरों का प्रयोग इसकी भाषा और अभिव्यक्ति को विशिष्टता प्रदान करता है। यह साहित्य अक्सर संवादों और प्रत्यक्ष अनुभवों पर अधिक जोर देता है, जिससे यह पाठकों से सीधा जुड़ता है।

**प्रतिरोध की भाषा: चुनौती और बदलाव की आकांक्षा**

दलित साहित्य केवल पीड़ा और शोषण का बयान नहीं है, बल्कि यह एक सशक्त प्रतिरोध की भाषा भी है। दलित लेखक अपनी रचनाओं के माध्यम से सदियों से चली आ रही जाति व्यवस्था, सामाजिक अन्याय और भेदभाव को चुनौती देते हैं। उनकी भाषा में आक्रोश, विद्रोह और बदलाव की तीव्र आकांक्षा झलकती है।

दलित साहित्य की भाषा अक्सर मुख्यधारा के साहित्य की परिष्कृत और अलंकृत भाषा से भिन्न होती है। यह रोजमर्रा की बोलचाल की भाषा, स्थानीय बोलियों और सीधे-सरल शब्दों का प्रयोग करती है। यह भाषा अपनी स्पष्टता और प्रामाणिकता के कारण पाठकों पर गहरा प्रभाव डालती है। दलित लेखक जानबूझकर उन शब्दों और अभिव्यक्तियों का प्रयोग करते हैं जिन्हें पहले साहित्य में हेय माना जाता था, इस प्रकार वे भाषा के स्तर पर भी सामाजिक hierarchies को चुनौती देते हैं।

दलित साहित्य में प्रतिरोध कई स्तरों पर दिखाई देता है। पहला स्तर अनुभवों के प्रामाणिक चित्रण का है। सदियों से दलितों के अनुभवों को अनदेखा किया गया या विकृत रूप से प्रस्तुत किया गया। दलित लेखक अपनी कहानियों और कविताओं के माध्यम से सच्चाई को सामने लाते हैं और इस प्रकार स्थापित सामाजिक व्यवस्था को चुनौती देते हैं।

दूसरा स्तर अन्याय के खिलाफ सीधी आवाज़ उठाने का है। दलित साहित्य में शोषण, भेदभाव और हिंसा के खिलाफ तीव्र आक्रोश व्यक्त किया जाता है। यह साहित्य पाठकों को सोचने और सामाजिक अन्याय के प्रति संवेदनशील होने के लिए प्रेरित करता है।

तीसरा स्तर आत्म-सम्मान और गरिमा की पुनर्स्थापना का है। दलित लेखक अपनी पहचान को गर्व से स्वीकार करते हैं और दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। वे उन नकारात्मक छवियों को खारिज करते हैं जो जाति व्यवस्था ने उन पर थोपी हैं और अपनी मानवीयता को दृढ़ता से स्थापित करते हैं।

दलित साहित्य की भाषा प्रतिरोध की भाषा इसलिए भी है क्योंकि यह सामाजिक परिवर्तन की मांग करती है। यह साहित्य एक ऐसे समाज की कल्पना करता है जहाँ जातिगत भेदभाव न हो और सभी मनुष्य समानता और सम्मान के साथ जी सकें। यह केवल अतीत की पीड़ा का विलाप नहीं है, बल्कि भविष्य के लिए एक संघर्ष का आह्वान भी है।

**निष्कर्ष**

हिन्दी दलित साहित्य अपनी विशिष्ट आवाज़, संरचना और प्रतिरोध की भाषा के कारण हिन्दी साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह साहित्य हाशिये पर धकेले गए लोगों के अनुभवों और आकांक्षाओं को प्रामाणिकता से व्यक्त करता है, पारंपरिक साहित्यिक सीमाओं का अतिक्रमण करता है और सामाजिक न्याय और समानता के लिए एक सशक्त प्रतिरोध प्रस्तुत करता है। दलित साहित्य न केवल दलितों के लिए बल्कि पूरे समाज के लिए एक महत्वपूर्ण सबक है। यह हमें सामाजिक अन्याय के प्रति संवेदनशील बनाता है और एक अधिक न्यायपूर्ण और मानवीय समाज के निर्माण के लिए प्रेरित करता है। भविष्य में दलित साहित्य का अध्ययन और विश्लेषण हिन्दी साहित्य की समग्र समझ के लिए और भी महत्वपूर्ण होगा।

**संदर्भ ग्रंथ सूची**

वाल्मीकि, ओमप्रकाश. जूठन. राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997.
नैमिशराय, मोहनदास. अपने-अपने पिंजरे. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995.
चौहान, सूरजपाल. तिरस्कृत. शिल्पायन, दिल्ली, 2002.
बेचैन, शिवराज सिंह. मेरे बचपन के दिन. अनामिका प्रकाशन, दिल्ली, 2000.
ढसाल, नामदेव. गोलपीठा. (अनुवादः मंगलेश डबराल). वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003.
प्रसाद, हरिनारायण. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005.
कंवर, रमणिका गुप्ता. दलित साहित्य: अवधारणा और विकास. अनामिका प्रकाशन, दिल्ली, 2004.
पाण्डेय, बद्री नारायण. दलित विमर्श. शिल्पायन, दिल्ली, 2007.
राव, एम.एस.ए. दलित आइडेंटिटी एंड पॉलिटिक्स. सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1999.
ज़ेलीओट, एलेनोर. फ्रॉम अनटचेबल टू दलित: एसेज ऑन द दलित मूवमेंट. मनोहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2001.
गोपालगुरु. दलित प्रश्न. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013.
चौहान, वीर भारत तलवार (सं.). दलित साहित्य. साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2007.
यादव, योगेन्द्र सिंह (सं.). दलित साहित्य: संवेदना और संघर्ष. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2003.
अनेक शोध पत्रिकाएँ और लेख जो दलित साहित्य पर प्रकाशित हुए हैं।

# सांप्रदायिकता राष्ट्रनिर्माण में बाधा

**डॉ. आमरीन हसन***

सर्वप्रथम सांप्रदायिकता को राजनीतिक दर्शन के रूप में प्रसिद्ध लेखक मरे बुकचिन ने परिभाषित किया। बुकचिन ने राजनीतिक पद्धति को सामाजिक परिवेश के पर्यावरणीय दर्शन के रूप में पूरक बताया। पहले सांप्रदायिकता का अध्ययन सामाजिक अराजकता के रूप में होता था। सांप्रदायिकता को बुकचिन ने कालांतर में पृथक विचारधारा के रूप में स्थापित किया। एक पृथक विचारधारा के रूप में स्थापित होने के पश्चात् सांप्रदायिकता का सामाजिक, राजनीतिक जीवन पर पड़ रहे प्रभावों का व्यापक अध्ययन होने लगा।

राजनीतिक रूप में सांप्रदायिकतावादी, राज्यविहीन, वर्ग विहीन, विकेंद्रित समाज की संकल्पना प्रस्तुत करते हैं। ''यह प्रारंभिक पद्धति स्वेच्छातंत्रवादी म्युनिसपैलिज्म कहलाया।''[1] इस पद्धति में राजनीतिक संस्थाएं शासन संरचना को संचालित करती थी। इस प्रक्रिया के माध्यम से शनैः–शनैः राष्ट्र–राज्य की सेक्युलर अवधारणा को पदस्थापित कर देती हैं। इतना ही नहीं, राज्य की शासन संरचना पर चरमपंथियों की बढ़त हासिल हो जाती है।

'सांप्रदायिकता के अंतर्गत वे सभी भावनाएं व क्रियाकलाप आ जाते हैं, जिनमें किसी धर्म अथवा भाषा के आधार पर समूह विशेष की हितों को वरीयता दी जाती है। इन समूहों द्वारा धर्म, भाषा केंद्रित उन हितों को राष्ट्रीय हितों के ऊपर प्राथमिकता दी जाती है।'[2] इस घटना से प्रभावित अन्य समुदाय में पृथकता की भावना उत्पन्न हो जाती है। कुछ धार्मिक समूहों जैसे– पारसियों, बौद्धों, जैनों तथा ईसाइयों के अपने–अपने संगठन हैं। यह धार्मिक समूह अपने स्वधर्मियों की कल्याण एवं उत्थान के लिए प्रयासरत रहते हैं। ऐसे संगठनों को सांप्रदायिक नहीं कहा जाएगा, क्योंकि वे किसी पृथकता, अलगाववाद की भावना को प्रेरित नहीं करते हैं। इन समूहों के विपरीत मुस्लिम लीग, हिंदू महासभा तथा अन्य कुछ संस्थाओं को सांप्रदायिक कहा जाएगा। यह सर्वविदित है कि यह संगठन अपने धार्मिक, भाषायी हितों को राष्ट्रीय हितों के भी ऊपर रखते हैं। विसेंट स्मिथ के शब्दों में, 'एक सांप्रदायिक व्यक्ति या व्यक्ति समूह वह है, जो कि प्रत्येक धार्मिक अथवा भाषाायी समूह को एक ऐसी पृथक सामाजिक तथा राजनीतिक इकाई मानता है। वह अपने धार्मिक हितों को अन्य धार्मिक समूहों की हितों पर वरीयता देने की चेष्टा करते हैं। ऐसे ही व्यक्तियों अथवा व्यक्ति समूहों की विचारधारा को सांप्रदायिकता कहा जाता है।'

सांप्रदायवादी दृष्टिकोण समाज विरोधी होता है। इस दृष्टिकोण को समाज विरोधी इसलिए कहा जाता है, क्योंकि यह संगठन अपने समुदाय की संकीर्ण हितों को पूरा करने के लिए अन्य समूहों एवं राष्ट्रीय हितों की अवहेलना करने से पीछे नहीं हटता है। सांप्रदायिक संगठनों का उद्देश्य शासकों के ऊपर दबाव ड़ालकर अपने सदस्यों के हितों का संरक्षण करना है।

एक समुदाय जब जान–बूझकर धार्मिक–सांस्कृतिक भेद के आधार पर राजनीतिक मांगे शासक अभिजन से मनवाने का निर्णय करता है, तब सामुदायिक चेतना सांप्रदायवाद के रूप में एक राजनीतिक सिद्धांत बन जाती है। इन तत्वों द्वारा सांस्कृतिक स्वयात्त्ता को राष्ट्र हित पर वरीयता दिया जाता है। बहुलवादी संस्कृति पर राज्य सत्ता द्वारा किया जाने वाला आघात है। बहुसंस्कृतीय समाज में समाजिक तनाव तथा टकराव वास्तव में विभिन्न समूहों के बीच चल रहे सत्ता द्वंद के लक्षण हैं। इस पारस्परिक द्वंद को सैद्धांतिक स्तर पर धर्म की शिला पर खड़ा करना एक राजनीतिक विचारधारा के रूप में सांप्रदायिकता का मूल सार है। 'प्रसिद्ध राजनीति विज्ञानी *चार्ल्स टेलर* ने भी सन् 2007 में प्रकाशित अपनी पुस्तक *सेक्यूलर ऐज (Secular Age)* में सांप्रदायिक मानसिकता की आलोचना की है।'[3]

सांप्रदायिकता या सांप्रदायिक विचारधारा इस तथ्य को सही मानता है कि एक धर्म को मानने वालों के सांसारिक हितों में साम्यता होती है। 'कई धर्मों के अनुयायी धर्म के नाम पर विषमता और दमन का सर्मथन करते हैं।'[4] यही अवधारणा सांप्रदायिकता के विकास का प्रथम आधार है। सांप्रदायिक दृष्टिकोण के अनुसार विविधता के स्थान पर धर्म, भाषा आधारित हितों को भारतीय समाज की प्राथमिक हितों के रूप में वरीयता दी जाती है।

* सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, शिया पी.जी. कॉलेज, लखनऊ

सांप्रदायिकता की दूसरे चरण की शुरूआत अनुयायियों द्वारा अपने धार्मिक सिद्धांतों, विश्वासों की श्रेष्ठता स्थापित करने से होती है। सांप्रदायिकता की इस स्वरूप को उदार सांप्रदायिकता कहते है। उदार सांप्रादायिकता के दौर में भी राजनीति का आधार सांप्रदायिक मूल्य है। सन् 1925 के पूर्व हिंदू महासभा, मुस्लिम लीग, अलीबंधु तथा सन् 1922 के बाद मुहम्मद अली जिन्ना, मदनमोहन मालवीय इसी सांप्रदायिक अवधारणा के तहत कार्य कर रहे थे।

सांप्रदायिकता का अंतिम चरण उग्रवादी सांप्रदायिकता को माना जाता है। इस विचारधारा के अनुसार विभिन्न धर्मों के अनुयायियों या समुदायों के हित एक दूसरे के विरोधी होते हैं। सांप्रदायिकता के उग्रवादी चरण में सह–अस्तित्व का भाव नहीं रहता है, क्योंकि वर्गीय एवं धार्मिक हित एक दूसरे के विरोधी होते हैं। उग्रवादी सांप्रदायिकता के मूल में भय या घृणा होती हैं। इस दौर में अपने राजनीतिक विरोधियों से दुश्मनों की भांति व्यवहार किया जाता है। इसी चरण में हिंदू–मुस्लिम चरमपंथी एक दूसरे की सह–अस्तित्व को नकारने लगते हैं। इतना ही नहीं, सांप्रदायवादियों के द्वारा भारतीय गणराज्य में हिंदू–मुस्लिम जनता को दो अलग–अलग राष्ट्र के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा। सन् 1937 के बाद मुस्लिम लीग और हिंदू महासभा तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसे संगठन इस उग्रवादी या फासीवादी सांप्रदायिकता की ओर तेजी से उन्मुख होने लगे।

भारत में सांप्रदायिकता का विकास इसी प्रतिमान पर हुआ। सांप्रदायिकता की समस्या भारत ही नहीं पूरे विश्व की समस्या है। वर्तमान समय में अधिकांश विश्व सांप्रदायिकता की ज्वार से प्रभावित है। सांप्रदायिकता की समस्या विकसित देशों के साथ–साथ तृतीय विश्व के लिए भी भयावह सिद्ध हो रही है। आज सांप्रदायिकता की दानवी प्रवृत्ति के कारण तृतीय विश्व के अनके राज्य विघटन के मुहाने पर खड़े हैं। इतना ही नहीं, सांप्रदायिकता तृतीय विश्व में नित नये–नये रूपों में दृष्टव्य है। जैसे–नस्लवाद, यहूदीवाद विरोधी फासीवाद, उत्तरी आयरलैंड में कैथोलिक–प्रोटेस्टेंट संघर्ष, लेबनान में ईसाई–मुस्लिम संघर्ष, सूडान में ईसाई–मुस्लिम संघर्ष, पाकिस्तान में शिया–सुन्नी संघर्ष।

सांप्रदायिकता एक आधुनिक विचारधारा और समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण है। भारत में आधुनिक युग में सांप्रदायिकता के स्रोत को भारतीय इतिहास में खोजा जा सकता है। यह आधुनिक सामाजिक समुदायों के राजनीतिक आकांक्षाओं को व्यक्त करती है। समकालीन आर्थिक ढांचे ने न केवल सांप्रदायिक दृष्टिकोण उत्पन्न किया, अपितु उसके कारण ही इस विचारधारा का प्रचार–प्रसार हुआ।

'भारत में सांप्रदायिक चेतना का अभ्युदय उपनिवेशवादी नीतियों तथा उसके विरुद्ध संघर्ष करने की आवश्यकता से उत्पन्न परिवर्तनों के कारण हुआ।'[5] विचारधारा के रूप में सांप्रदायिकता का उदय भी तभी संभव हुआ, जब सांप्रदायिकता नागरिक समुदाय की संस्थाओं का अभिन्न हिस्सा बन गया। पं. जवाहर लाल नेहरू ने लिखा, ''यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि भारत में साम्प्रदायिकता एक परवर्ती घटना है, जिसका जन्म हमारी आंखों के सामने ही हुआ है।''

प्रो. कोठारी ने सांप्रदायिकता को प्राचीन और मध्ययुगीन रूढ़िवादी विचारधाराओं पर आधारित अवधारणा माना है। सांप्रदायिक तत्व भारतीयों को धर्म, क्षेत्र के आधार पर मुद्दों को अपने साझा हितों के रूप में देखने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। प्रो. कोठारी ने सांप्रदायिकता की समस्या को उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में शासकों द्वारा फूट डालो और राज करो की नीति से जोड़ा है। शासक अभिजनों की इस नीति से सांप्रदायिक विचारधारा को बढ़ावा मिला।

धार्मिकता यद्यपि सांप्रदायिकता को बहुत ज्यादा प्रोत्साहित करने का मूल कारण नहीं था। भारत जैसे नव–स्वाधीन देशों में जहां बुनियादी सुविधाओं का घोर अभाव था। लोगों में वाह्य जगत संबधी चेतना शून्य के बराबर थी। धार्मिक रूढ़िवादिता एवं कट्टरता ने सांप्रदायिकता के लिए उत्प्रेरक एवं संवाहक की भूमिका का निर्वहन किया।

प्रो. कोठारी ने सांप्रदायिकता को परिभाषित करते हुए, 'उसे भारतीय लोकतंत्र का नवीन घटक एवं समुदाय आधारित कार्यवाही माना है।'[6] सांप्रदायिकता को भारतीय संदर्भ में धार्मिक समुदायों के बीच प्रतिस्पर्धा और टकराव माना गया है। ये सांप्रदायिक द्वंद कभी–कभी हिंसा का रूप धारण कर लेती है। सांप्रदायिकता की विकराल समस्या स्वतंत्रता के पहले उपनिवेश काल के गर्भ से उपजी है। उपनिवेशवादी शासकों ने अपनी सत्ता को दीर्घजीवी बनाने के लिए भारतीय जनता की सांप्रदायिक भावनाओं को भड़काया, जिससे उनका साम्राज्य सुदृढ़ हो सके। ''लॉर्ड जॉन एलफिन्स्टन सन् 1853 से सन् 1860 तक मुंबई के गर्वनर थे, उनका मानना था कि 'फूट डालो और राज करो। यह एक प्राचीन रोमन कहावत थी हमारी भी होनी चाहिए।' हमारी

सरकार की कार्यशैली भी इसी प्रकार होनी चाहिए। सर जॉन स्ट्रेची का विश्वास था कि ''भारत में विभिन्न धर्मों का होना हमारे राजनीतिक स्थिति के लिए अच्छी बात है।''

ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों के पोषक अंगरेजों ने रणनीति के तहत सन् 1857 के विद्रोह के बाद हिंदुओं के प्रति तुष्टीकरण की नीति को अपनाया। कुछ समय उपरांत मुस्लिमों के हितों का तुष्टीकरण किया। औपनिवेशिक शासक अभिजनों के इस रवैये से भारतीय समाज में वर्गीय एवं धार्मिक अलगाव का भाव उत्पन्न हुआ।

*डब्ल्यू डब्ल्यू हंटर* ने यह तथ्य अपनी पुस्तक *भारतीय मुसलमान* में प्रकाशित किया। इस पुस्तक में मुसलमानों की कमजोर दयनीय आर्थिक स्थिति का वर्णन है। *थियोड़र बैंक* ने मुसलमानों को जागृत करने का कार्य किया। इतना ही नहीं, थियोड़र बैंक ने अंगरेजों की मुस्लिम संरक्षण वाली नीतियों से मुस्लिमों को अवगत कराया, जिससे कुछ मुसलमान उपनिवेशी शासन के समर्थक बन गए। अंगरेजों ने सर सैय्यद अहमद खां जैसे जनाधार वाले मुस्लिम नेताओं को कांग्रेस के विरुद्ध भड़काया। प्रारंभ में यद्यपि सर सैय्यद अहमद खां का दृष्टिकोण बुद्धिमत्तापूर्ण, दूरदर्शी एवं सुधारवादी था। कुछ समय उपरांत उन्होंने उपनिवेशी शासन का समर्थन करना प्रारंभ कर दिया। ''सर सैय्यद अहमद आरंभिक काल में राष्ट्रवादी चिंतक थे। सर सैय्यद अहमद ने हिन्दू और मुसलमानों को एक सुंदर वधु (भारत) की दो आंखें बताया। पंजाब में एक कार्यक्रम के दौरान सैय्यद अहमद ने कहा था ''भारत का प्रत्येक नागरिक हिंदू है और मुझे दुख है कि आप मुझे हिंदू नहीं मानते हैं।''[7] 'सर सैय्यद अहमद का दृष्टिकोण कालांतर में धार्मिक रूढ़िवादिता की ओर उन्मुख हुआ।'[8] जैसे 16 मार्च, 1888 को मेरठ में यह कहा कि हिंदू और मुसलमान दो अलग राष्ट्र हैं, अपितु विरोधी राष्ट्र भी हैं। सर सैय्यद अहमद ने उग्र संप्रदायवादी का स्वरूप धारण कर लिया। सांप्रदायिक नेताओं के रवैये से भारत में हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य कड़वाहट और दूरी पैदा हो गयी। इस घटना के फलस्वरूप उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष में दोनों समुदायों के मध्य मतभेद पैदा हो गया। इस कड़वाहट से भारत में धार्मिक द्वन्द उत्पन्न हो गयी। इस धार्मिक दुराग्रह के कारण भारत की हिन्दू–मुस्लिम जनता आपस में उलझ गयी।

इतिहास को सांप्रदायिक रंग देने की शुरूआत सबसे पहले उन्नीसवीं शताब्दी में हुयी। ब्रिटिश इतिहासकार *जेम्स* ने भारतीय इतिहास के प्राचीन काल को *हिंदू युग* और मध्यकाल को *मुस्लिम युग* की संज्ञा दी। दूसरे ब्रिटिश और भारतीय इतिहासकारों ने भी इतिहासकार जेम्स का अनुसरण किया। यह सर्वविदित है कि मध्यकाल में मुस्लिम जनता भी उतनी ही निर्धन, शोषित और दमन का शिकार थी, जितनी हिंदू जनता। इतना ही नहीं, जमींदारों, जागीरदारों तथा शासक अभिजनों में दोनों धर्मों के लोग शामिल थे। सांप्रदायिक विचार वाले लेखकों ने घोषित कर दिया कि उस दौर में सभी मुसलमान शासक थे और हिंदू शासित।
हिंदू सांप्रदायिकतावादियों ने साम्राज्यवादी प्रचार को भी अंगीकार कर लिया कि मध्यकाल के शासक हिंदू विरोधी थे। यह शासक अभिजन हिंदुओं पर ज्यादती करते थे। इन शासकों ने बलपूर्वक हिंदुओं को धर्मान्तरित कर मुसलमान बनाया था। सभी चरमपंथी, दक्षिणपंथी इतिहासकारो ने साम्राज्यवादियों द्वारा घोषित मध्ययुगीन इतिहास को हिंदू–मुस्लिम विवाद का दीर्घ अध्याय करार दिया। मध्ययुगीन शासकों को उनके धर्म के कारण विदेशी घोषित कर दिया। भारत की स्वतंत्रता संघर्ष की लड़ाई में *हजार वर्षों की गुलामी से मुक्ति* के नारे की जयघोष सुनायी देने लगा। हिंदू सांप्रदायवादी इतिहासकारों द्वारा भारत का प्राचीन काल का युग स्वर्णिम युग और मध्यकाल को अंधकार के युग के रूप में चित्रित किया गया था। इन विचारकों द्वारा मुस्लिम शासकों के योगदान को नकार दिया गया। इस सांप्रदायिक धारणा के प्रतिक्रियास्वरूप मुस्लिम सांप्रदायवादियों द्वारा पश्चिम एशिया, अफ्रीका और स्पेन में इस्लामी उपलब्धियों को स्वर्ण युग का प्रतीक माना गया। मुस्लिम सांप्रदायिक विचारकों द्वारा मध्ययुगीन शासकों का मिथ्या गुणगान गाया जाने लगा। भारत में इस्लाम के आगमन को *ज्ञानोदय* के रूप में चित्रित किया गया। इस्लाम पूर्व संस्कृति और राजनीतिक व्यवस्था को अंधकार युग के रूप में व्याख्यायित किया गया।

इसी प्रकार बीसवीं शताब्दी में उग्रराष्ट्रवादियों ने महाराणाप्रताप, शिवाजी, गुरूगोविन्द सिंह को राष्ट्र वीरों की सूची में शामिल कर लिया। अकबर, शाहजहां, औरंगजेब जैसे भारतीय भूमि पर जन्में मुगल शासकों को विदेशियों की संज्ञा दी गयी। इस सांप्रदायिक धारणा के परिणामस्वरूप हिंदू–मुस्लिम जनता के मध्य फासले और बढ़ गये। 'अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में मुगल साम्राज्य की पतन के साथ ही भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक हिन्दू शौर्य के नवोत्थान की लहर दौड़ गयी और उसके साथ ही एक और लहर उठी। यह उन्मादी लहर थी। इस उन्मादी लहर में सदियों से पड़ोसी रहे हिन्दू–मुस्लिम एक दूसरे की खून के प्यासे हो गये।'[9]

स्वतंत्रता पूर्व सांप्रदायवाद को मजबूत आधार सन् 1909 मे मार्ले–मिंटो सुधारों के आधार पर बल मिला। इस अधिनियम में सांप्रदायिक आधार पर मतदाता–मंडल बनाए गये और इससे सांप्रदायिक राजनीति का प्रसार हुआ। इस पद्धति के तहत मुसलमान (बाद में अन्य धार्मिक अल्पसंख्यक) मतदाताओं के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र बना दिया गया। इन निर्वाचन क्षेत्रों में सिर्फ मुसलमान उम्मीदवार खड़े हो सकते थे और मतदान का अधिकार भी मुसलमानों को ही था। इन चुनाव क्षेत्रों में सभी मतदाता एक ही धर्म को मानने वाले थे। उम्मीदवार अन्य धर्मावलंबियों के हितों के प्रति चैतन्य नहीं था। चुनाव प्रचार में सांप्रदायिकता का घोर प्रचार और प्रसार होता था। इस सांप्रदायिक प्रचार प्रसार के कारण मतदाता अपने विचार एवं मनोदशा को सांप्रदायिक ढंग से अभिव्यक्त करने लगा।

## सन्दर्भ ग्रन्थ

Murray, Bookchin : Social Ecology and Communalism, Okland Press, 2007, p. 17.
वर्मा, वेद प्रकाश : धर्म दर्शन की मूल समस्याएं, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, 2001, पृ. 515–517
ब्रूक्स, डेविड : धर्मनिरपेक्ष समाज में जीना, अमर उजाला, सम्पादकीय पृष्ठ, 10 जुलाई, 2013 लखनऊ संस्करण
शर्मा, लक्ष्मी निधि : धर्म दर्शन की रूपरेखा, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006, पृष्ठ 421
सिंह, रामकृष्ण व अन्य : राष्ट्रीय सुरक्षा, शारदा पुस्तक भवन, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद, 2010, पृ. 204
Kothari, Rajni : Memoirs : Uneasy is the Life of the Mind, Rupa Paperback., New Delhi, 2002, p. 230.
ग्रोवर, बी. एल. एवं अन्य : आधुनिक भारत का इतिहास, एस. चांद एंड कम्पनी लि., रामनगर, नई दिल्ली, 2004, पृ. 42
शर्मा, ब्रज किशोर : भारत का संविधान एक परिचय, प्रेंटिस हाल, दिल्ली, 2007, पृ. 3
लापियर, डोमनिक एवं कालिंस, लैरी : आजादी आधी रात को *(Freedom At Midnight)*, अनुवाद तेजपाल सिंह धामा, हिन्द पाकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ 45

# स्वामी विवेकानंद के दर्शन में प्रतिबिंबित जीवन कौशल और जीवन कौशल शिक्षा

**मनोज कुमार देवतवाल***
**प्रो.एम.एन.मुस्तफा****

स्वामी विवेकानंद का जन्म 12 जनवरी, 1863 में हुआ था। इनके बचपन का नाम नरेंद्र नाथ दत्त था और इनके गुरु का नाम रामकृष्ण परमहंस था। अपने गुरु के नाम पर विवेकानंद ने रामकृष्ण मिशन तथा रामकृष्ण मठ की स्थापना की। विश्व में भारतीय दर्शन विशेषकर वेदांत और योग को प्रसारित करने में विवेकानंद की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, साथ ही ब्रिटिश भारत के दौरान राष्ट्रवाद को अध्यात्म से जोड़ने में इनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। इसके अतिरिक्त विवेकानंद ने जातिवाद, शिक्षा, राष्ट्रवाद, धर्म निरपेक्षतावाद, मानवतावाद पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं, विवेकानंद की शिक्षाओं पर उपनिषद्, गीता के दर्शन, बुद्ध एवं ईसा मसीह के उपदेशों का प्रभाव है। उन्होंने वर्ष 1893 में शिकागो विश्व धर्म सम्मलेन में वैश्विक ख्याति अर्जित की तथा इसके माध्यम से ही भारतीय अध्यात्म का वैश्विक स्तर पर प्रचार-प्रसार हुआ।

**विदेश यात्रा :-**

शिकागो में दिये गए उनके व्याख्यानों (1893) से एक अभियान की शुरुआत हुई जो सुधार के उद्देश्य से भारत की सहस्राब्दिक परंपरा की व्याख्या करता है और इसके उपरांत उन्होंने न्यूयॉर्क में लगभग दो वर्ष व्यतीत किये जहाँ वर्ष 1894 में पहली 'वेदांत सोसाइटी' की स्थापना की। उन्होंने पूरे यूरोप का अधिक भ्रमण किया तथा मैक्स मूलर और पॉल डूसन जैसे प्रच्च्वादियों (Indologists) से संवाद किया। उन्होंने भारत में अपने सुधारवादी अभियान के आरंभ से पहले निकोला टेस्ला जैसे प्रख्यात वैज्ञानिकों के साथ तर्क-वितर्क भी किये।

**धर्मनिरपेक्षता पर विचार :-**

विवेकानंद का विचार है कि सभी धर्म एक ही लक्ष्य की तरफ ले जाते हैं, जो उनके आध्यात्मिक गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस के आध्यात्मिक प्रयोगों पर आधारित है। परमहंस रहस्यवाद के इतिहास में अद्वितीय स्थान रखते हैं, जिनके आध्यात्मिक अभ्यासों में यह विश्वास यह विश्वास देखने को मिलता है कि सगुण और निर्गुण की अवधारणा के साथ ही ईसाईयत और इस्लाम के आध्यात्मिक अभ्यास आदि सभी एक ही बोध या जागृति की ओर इशारा करते रहें हैं। शिकागो के अपने प्रवास के दौरान स्वामी विवेकानंद ने तीन महत्वपूर्ण पहलुओं पर बल दिया। पहला, उन्होंने कहा कि भारतीय परंपरा न केवल सहिष्णुता बल्कि सभी धर्मों को सत्य के रूप में स्वीकार करने में विश्वास रखती है। दूसरा, उन्होंने स्पष्ट और मुखर शब्दों में इस बात पर ज़ोर दिया कि-"बौद्ध धर्म के बिना हिंदू धर्म और हिंदू धर्म के बिना बौद्ध धर्म अपूर्ण है। तीसरा, यदि कोई व्यक्ति केवल अपने धर्म के अनन्य अस्तित्व और दूसरों के धर्म के विनाश का स्वप्न रखता है तो मैं हृदय की अतल गहराइयों से उसे दया भाव से देखता हूँ और उसे इंगित करता हूँ कि विरोध के बावजूद प्रत्येक धर्म के झंडे पर जल्द ही संघर्ष के बदले सहयोग, विनाश के बदले सम्मिलन और मतभेद के बजाय सद्भाव व शांति का संदेश लिखा होगा।"[1]

**धर्म और तर्कसंगतता :-**

भारत के अतीत के संबंध में विवेकानंद की व्याख्या तार्किक थी और यही कारण रहा कि जब वे पश्चिम से वापस लौटे तो उनके साथ बड़ी संख्या में उनके अमेरिकी और यूरोपीय अनुयायी भी आए। वर्ष 1897 में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की उनकी परियोजना में उन्हें इन अनुयायियों का सहयोग और समर्थन मिला। स्वामी विवेकानंद ने बल दिया कि पश्चिम की भौतिक और आधुनिक संस्कृति की ओर भारतीय आध्यात्मिकता

* **आईसीएसएसआर शोधार्थी, शिक्षा विभाग, केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय, कासरगोड केरल**
** **आचार्य, शिक्षा विभाग, केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय, कासरगोड केरल**

का प्रसार करना चाहिये, जबकि वे भारत के वैज्ञानिक आधुनिकीकरण के पक्ष में भी मजबूती से खड़े हुए। उन्होंने जगदीश चंद्र बोस की वैज्ञानिक परियोजनाओं का भी समर्थन किया। स्वामी विवेकानंद ने आयरिश शिक्षिका मार्गरेट नोबल (जिन्हें उन्होंने 'सिस्टर निवेदिता' का नाम दिया) को भारत आमंत्रित किया ताकि वे भारतीय महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने में सहयोग कर सकें। स्वामी विवेकानंद ने ही जमशेदजी टाटा को भारतीय विज्ञान संस्थान (Indian Institute of Science) और 'टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी' की स्थापना के लिये प्रेरित किया था। भारत को एक धर्मनिरपेक्ष ढाँचे की आवश्यकता थी जिसके चलते वैज्ञानिक और तकनीकी विकास भारत की भौतिक समृद्धि को बढ़ा सकते थे और विवेकानंद के विचार इसके प्रेरणा स्रोत बने।

**गांधी, नेहरू पर प्रभाव :-**

विवेकानंद ने आधुनिक भारत के निर्माताओं पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव डाला जिन्होंने बाद में द्वि-राष्ट्र सिद्धांत को चुनौती दी। इन नेताओं में महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस शामिल थे। महात्मा गांधी द्वारा सामाजिक रूप से शोषित लोगों को 'हरिजन' शब्द से संबोधित किये जाने के वर्षों पहले ही स्वामी विवेकानंद ने 'दरिद्र नारायण' शब्द का प्रयोग किया था जिसका आशय था कि 'गरीबों की सेवा ही ईश्वर की सेवा है।' वस्तुतः महात्मा गांधी ने यह स्वीकार भी किया था कि भारत के प्रति उनका प्रेम विवेकानंद को पढ़ने के बाद हज़ार गुना बढ़ गया। स्वामी विवेकानंद के इन्हीं नवीन विचारों और प्रेरक आह्वानों के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए उनके जन्मदिवस को 'राष्ट्रीय युवा दिवस' घोषित किया गया।

**राष्ट्रवाद :-**

आधुनिक काल में पश्चिमी विश्व में राष्ट्रवाद की अवधारणा का विकास हुआ लेकिन स्वामी विवेकानंद का राष्ट्रवाद प्रमुख रूप से भारतीय अध्यात्म एवं नैतिकता से संबद्ध है। भारतीय संस्कृति के प्रमुख घटक मानववाद एवं सार्वभौमिकतावाद विवेकानंद के राष्ट्रवाद की आधारशिला माने जा सकते हैं। पश्चिमी राष्ट्रवाद के विपरीत विवेकानंद का राष्ट्रवाद भारतीय धर्म पर आधारित है जो भारतीय लोगों का जीवन रस है। उनके लेखों और उद्धरणों से यह पता चलता है कि भारत माता एकमात्र देवी हैं जिनकी प्रार्थना देश के सभी लोगों को सहृदय से करनी चाहिये।

**वेदांत दर्शन :-**

वेदांत दर्शन उपनिषद् पर आधारित है तथा इसमें उपनिषद् की व्याख्या की गई है। वेदांत दर्शन में ब्रह्म की अवधारणा पर बल दिया गया है, जो उपनिषद् का केंद्रीय तत्व है। इसमें वेद को ज्ञान का परम स्रोत माना गया है, जिस पर प्रश्न खड़ा नहीं किया जा सकता। वेदांत में संसार से मुक्ति के लिये त्याग के स्थान पर ज्ञान के पथ को आवश्यक माना गया है और ज्ञान का अंतिम उद्देश्य संसार से मुक्ति के माध्यम से मोक्ष की प्राप्ति है। वर्ष 1897 में विवेकानंद ने अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु के पश्चात् रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। इस मिशन ने भारत में शिक्षा और लोकोपकारी कार्यों जैसे- आपदाओं में सहायता, चिकित्सा सुविधा, प्राथमिक और उच्च शिक्षा तथा जनजातियों के कल्याण पर बल दिया। उनके समय में स्त्री और पुरूष के बीच बहुत बड़ा भेदभाव था । स्त्री को पुरूष से कम महत्व दिया जाता था ।

औरत द्वारा प्रतिपादित आत्मा के स्वरूप की बात करते हुए कहा कि- "यह समझना बड़ा कठिन है कि इस देश में स्त्रियों और पुरूषों में इतना भेदभाव क्यों किया जाता है। जबकि वेदांत ने यह घोषणा की है कि प्रत्येक प्राणी में एक ही आत्मा निवास करती है। वैदिक काल और उपनिषद काल में मैत्रेयी और गार्गी जैसी अनेक विदुषी नारियों को ऋषियों का स्थान प्राप्त था। किन्तु भारत के अवनतिकाल में स्मृतियों और पुरोहितों ने स्त्रियों को उनके अधिकारों से वंचित कर दिया। उनका मानना है कि हमारे देश के पतन के अनेक कारणों में एक कारण यह भी है कि शाक्ति स्वरूपिणी नारी-जाति का निरादर। मनु ने भी कहा है कि ' यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।"[2] स्त्रियों की पूजा करके ही सभी राष्ट्र बड़े बने हैं। जिस देशों में स्त्रियों की पूजा नहीं होती, वह देश या राष्ट्र कभी बड़ा बन सका है और

न भविष्य में कभी बन सकेगा।"[3] उन्होनें कहा कि- "सर्वप्रथम स्त्रियों का वर्तमान दशा से उद्धार करना होगा। आम जनता को जगाना होगा तभी तो भारतवर्ष का कल्याण होगा।"[4]

स्वामी जी स्त्रियों के लिए इतिहास, पुराण, गृहविज्ञान, पाककला, पारिवारिक जीवन के सिद्धांतों तथा विकास में सहायक ग्रंथों का अध्ययन आवश्यक मानते हुए सिलाई, पाककला, पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन के नियम, शिशुपालन, जप, पूजा, उपासना, आदि की शिक्षा अनिवार्य रूप से देनी चाहिए साथ ही वीरता और शौर्य की शिक्षा के साथ ही आत्मरक्षा की कला सीखना भी परम आवश्यक हो गया है। इस संबंध में विवेकानंद ने - "झांसी की रानी की प्रंशसा की है। वर्तमान युग की मांग है कि माताएँ पवित्र और निर्भय बनें, प्राचीन नारियों- संघमित्रा, अहिल्याबाई, मीराबाई की परम्परा कायम रखे तथा वीर पुत्रों को जन्म दे यदि नारिया पवित्र, विदुषी एवं वीरांगना होंगी तो उनके पुत्र अपने सत्कार्यों द्वारा देश को महिमामंडित करेंगे तभी देश में सभ्यता संस्कृति, ज्ञान, शक्ति, और भक्ति की भावना जागृत होगी।"[5]

विवेकानंद भारतवर्ष की अशिक्षित, उपेक्षित, भूखी, नंगी जनता को देखकर अत्यंत दुखी होते थे। जनता की ऐसी उपेक्षा को वह राष्ट्रीय अपराध मानते थे और इसे देश के पतन का कारण भी मानते थे। किसी देश की उन्नति उस देश के शिक्षित और प्रबुद्ध लोगों पर ही निर्भर होती है। हमारे जो ग्रंथ आध्यात्मिकता का भंडार है उन्हें सामान्य लोगों तक पहुंचना होगा । उनका कहना था कि वेदांत की इन अवधारणाओं को जंगलों और गुफाओं से बाहर आना चाहिए।

उन्हें न्यायालयों, झोपड़ियों तथा मछुओं, विद्यार्थियों आदि विभिन्न वर्गों की सामान्य जनता तक पहुँचाना चाहिए। इस सन्दर्भ में यह प्रश्न स्वाभाविक है कि सामान्य जन या मछुए के लिए कैसे उपयोगी और व्यावहारिक हो सकते हैं तो उत्तर है, यदि मछुआ आत्मा को समझता है तो वह एक कुशल मछुआ होगा। यदि एक विद्यार्थी अपनी आत्मा को समझता है तो वह बुद्धिमान विद्यार्थी होगा। स्वामी जी ने सामान्य जनता के उत्थान हेतु शिक्षा को जरूरी मानते हैं कि लोगों को अपनी दशा सुधारने का ज्ञान होना चाहिए। उन्हें यह जानना चाहिए कि संसार में उनके चारों ओर क्या हो रहा है तभी उनमें उन्नति करने के लिए भावनाएँ एवं विचार जाग्रत हो सकेंगे। इस उद्देश्य की प्राप्ति का एक मात्र साधन है, जनता को शिक्षित करना उन्हें गाँव-गाँव, घर-घर जाकर ही शिक्षा देनी होगी और यह कार्य सन्यासी वर्ग भलीभाँति सम्पन्न कर सकता है। स्वामी जी कहते हैं कि- " यदि सन्यासियों में से कुछ को धर्मेतर विषयों की शिक्षा प्रदान करने के लिए भी संगठित कर लिया जाए तो बड़ी सरलतापूर्वक घर-घर घूमकर वे अध्यापन तथा धार्मिक शिक्षा दोनों काम कर सकते हैं।"[6]

शिक्षा के माध्यम के संबंध में स्वामी जी का विचार है कि जन साधारण को उनकी मातृभाषा द्वारा ही शिक्षा दी जानी चाहिए। उनका कहना है कि उन्हें विचार दो, सूचनाओं का संग्रह वे स्वयं कर लेगें। मातृभाषा और अपने देश की संस्कृति का समर्थन करने के साथ-साथ स्वामी जी संस्कृत भाषा एवं शिक्षा के प्रति अपार श्रद्धा रखते थे। वह सामान्य शिक्षा के साथ संस्कृत की शिक्षा भी आवश्यक मानते थे क्योंकि संस्कृति शब्दों की ध्वनि ही जाति को सम्मान, बल एवं शक्ति प्रदान करती है उनके अनुसार - " गौतमबुद्ध ने यह बड़ी भारी भूल की कि उन्होंने जनता के लिए संस्कृत भाषा के अध्ययन के प्रति उपेक्षा का भाव अपनाया। यद्यपि यह तो उन्होंने बुद्धिमानी की कि अपने विचारों को जनता तक शीघ्राति शीघ्र पहुंचाने के लिए पालि भाषा का आश्रय लिया, तथापि इसके साथ ही साथ उन्हें संस्कृत भाषा का भी प्रचलन करना चाहिए था।"[7]

" शिक्षाः शिक्षाः केवल शिक्षाः यूरोप के अनेक नगरों में भ्रमण करते हुए और वहां के गरीबों के भी सुख-सुविधाओं तथा शिक्षा को देखकर मुझे अपने गरीब देशवासियों की याद आती थी और मैं आंसू बहाता था । यह अन्तर क्यों हुआ ? उत्तर मिला - शिक्षा से । शिक्षा और आत्मविश्वास से उनके भीतर स्थित ब्रहम भाव जाग गया है, जबकि हमारा क्रमशः संकुचित हो रहा है।"[8] निम्न वर्ग के लोगों में भी शिक्षा देनी है, उनको आत्मनिर्भर बनाना है, नैतिक

तथा बौद्धिक दोनों ही प्रकार की शिक्षा देनी होगी तभी राष्ट्र विकसित होगा । आज हमें आवश्यकता है वेदांत दर्शन युक्त पाश्चात्य विज्ञान की, ब्रह्मचर्य के आदर्श और श्रद्धा तथा आत्म विश्वास की ।

"विदेशी नियंत्रण हटाकर हमारे विविध शास्त्रों, विद्याओं अध्ययन हो और साथ ही साथ अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य विज्ञान भी सीखा जाए, हमें उद्योग धन्धों की उन्नति के लिए यांत्रिक शिक्षा भी प्राप्त करनी होगी, जिससे देश के युवक नौकरी ढूँढ़ने के बजाए अपनी आजीविका के लिए समुचित धनोपार्जन भी कर सकें।"[9]

" क्या समता, स्वतंत्रता कार्य कौशल पौरूष में तुम पाश्चात्यों के भी गुरू बन सकते हो? क्या तुम उसी के साथ-साथ स्वाभाविक आध्यात्मिक अन्तः प्रेरणा व अध्यात्म-साधनाओं में एक कट्टर सनातनी हिन्दू हो सकते हो।"[10]

जैसे संघ स्थापना की पश्चिमी कार्य प्रणाली और बाह्य सभ्यता के भाव हमारे देश की नस-नस में समा रहें हैं, चाहे हम उनका ग्रहण करें या न करें वैसे ही भारत की आध्यात्मिकता और दर्शन पाश्चात्य देशों को प्लावित कर रहे है। इस गति को कोई रोक नहीं सकता और हम भी पश्चिम की किसी न किसी प्रकार की भौतिकवादी सभ्यता का पूर्णतः प्रतिरोध नहीं कर सकते। इसका कुछ अंश सम्भव है, हमारे लिए अच्छा हो, और पश्चिम के लिए आध्यात्मिकता का कुछ अंश हितकर हो। इसी तरह सामंजस्य की रक्षा हो सकेगी। यह बात नहीं कि हर चीज हमें पश्चिमवालों से सीखनी चाहिए, पश्चिम वालों को जो कुछ सीखना है वह सब हमसे ही सीखें।"[11]

**नैतिकता :-**

अतीत में आधुनिक मूल्यों का विकास न होने के कारण व्यैक्तिक एवं सामाजिक जीवन में नैतिकता प्रमुख रूप से धर्म एवं सामाजिक बंधनों पर आधारित होती थी, हालाँकि ऐसी स्थिति वर्तमान में भी मौजूद है लेकिन इसके साथ अन्य कारक भी नैतिकता के लिये प्रेरक का कार्य करते हैं। विवेकानंद ने आंतरिक शुद्धता एवं आत्मा की एकता के सिद्धांत पर आधारित नैतिकता की नवीन अवधारणा प्रस्तुत की। विवेकानंद के अनुसार, नैतिकता और कुछ नहीं बल्कि व्यक्ति को एक अच्छा नागरिक बनाने में सहायता करने वाली नियम संहिता है। मानव नैसर्गिक रूप से ही नैतिक होता है, अतः व्यक्ति को नैतिकता के मूल्यों को अवश्य अपनाना चाहिये। आत्मा की एकता पर बल देकर विवेकानंद ने सभी मनुष्यों के मध्य सहृदयता एवं करुणा की भावना के प्रसार का प्रयास किया है।

**युवाओं के लिये प्रेरणा :-**

स्वामी विवेकानंद का मानना है कि किसी भी राष्ट्र का युवा जागरूक और अपने उद्देश्य के प्रति समर्पित हो, तो वह देश किसी भी लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। युवाओं को सफलता के लिये समर्पण भाव को बढ़ाना होगा तथा भविष्य की चुनौतियों से निपटने के लिये तैयार रहना होगा, विवेकानंद युवाओं को आध्यात्मिक बल के साथ-साथ शारीरिक बल में वृद्धि करने के लिये भी प्रेरित करते हैं। युवाओं के लिये प्रेरणास्रोत के रूप में विवेकानंद के जन्मदिवस, 12 जनवरी को भारत में राष्ट्रीय युवा दिवस तथा राष्ट्रीय युवा सप्ताह मनाया जाता है। राष्ट्रीय युवा सप्ताह के एक हिस्से के रूप में भारत सरकार प्रत्येक वर्ष राष्ट्रीय युवा महोत्सव का आयोजन करती है और इस महोत्सव का उद्देश्य राष्ट्रीय एकीकरण, सांप्रदायिक सौहार्द्र तथा भाईचारे में वृद्धि करना है।

**शिक्षा पर बल :-**

स्वामी विवेकानंद का मानना है कि भारत की खोई हुई प्रतिष्ठा तथा सम्मान को शिक्षा द्वारा ही वापस लाया जा सकता है। किसी देश की योग्यता तथा क्षमता में वृद्धि उस देश के नागरिकों के मध्य व्याप्त शिक्षा के स्तर से ही हो सकती है। स्वामी विवेकानंद ने ऐसी शिक्षा पर बल दिया जिसके माध्यम से विद्यार्थी की आत्मोन्नति हो और जो उसके चरित्र निर्माण में सहायक हो सके। साथ ही शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिसमें विद्यार्थी ज्ञान प्राप्ति में आत्मनिर्भर तथा चुनौतियों से निपटने में स्वयं सक्षम हों। विवेकानंद ऐसी शिक्षा पद्धति के घोर विरोधी थे जिसमें गरीबों एवं वंचित वर्गों के लिये स्थान नहीं था।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार-"सारी शिक्षा और समस्त प्रशिक्षण का एकमेव उद्देश्य मनुष्य का निर्माण होना चाहिए। सारी शिक्षा का ध्येय है मनुष्य का विकास जो अपना प्रभाव सब पर डालता है जो अपने संगियों पर

जादू - सा असर कर देता है शक्ति का एक महान केन्द्र है और जब यह मनुष्य तैयार हो जाता है तो जो चाहे कर सकता है। वह व्यक्ति जिस वस्तु पर अपना प्रभाव डालता है उसी वस्तु को कार्यशील बना देता है।"[12]

स्वामीजी का स्पष्ट कथन था कि वर्तमान शिक्षा पद्धति का कोई लक्ष्य नहीं है। वास्तविक शिक्षा वही है जो मनुष्य का निर्माण करे। वे वेदान्त दर्शन के माध्यम से कहते थे कि मनुष्य का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उसकी आत्मा में निवास करता है। मनुष्य जन्मजात प्रतिभावान होता है । गुरु को छात्र की उस प्रतिभा को पहचान कर उसे सही दिशा देना होगा। गुरू को छात्र की जड़ता और मति, भ्रमता और अहंकार को तोड़ना होगा। स्वामीजी का मानना था कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है। वे मानसिक शिक्षा के साथ-साथ शारीरिक शिक्षा को भी महत्वपूण मानते थे। मस्तिष्क की एकाग्रकता के लिए उन्होंने ध्यान पर और शारीरिक शिक्षा के लिए योग पर बल दिया। इस तरह विवेकानन्दजी के लिए शिक्षा केवल सूचना प्राप्ति का माध्यम नहीं बल्कि जीवन का गहन प्रशिक्षण, कौशल है।

स्वामीजी के लिए शिक्षा में दर्शन निम्न प्रकार थे -

शिक्षा तभी शिक्षा कहलाएगी जब वह देश प्रेम का अलख जगाती हो।

शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य मनुष्य का चहुमुखी विकास करना होना चाहिए।

शिक्षा की आत्मा है प्रेम, वही शिक्षा सर्वोत्तम है जो मानव प्रेम, समाज प्रेम, देश प्रेम, विश्व बन्धुत्व, और विश्व चेतना के भाव को जगाती है।

शिक्षा ऐसी हो जो मनुष्य को मुक्ति के सम्बन्ध में सचेत करे, उसे आत्मबोध, आत्ममुक्ति के लिए प्रेरित करे।

शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की आन्तरिक एकता को बाह्य जगत में प्रकट करना होना चाहिए।

शिक्षा का उद्देश्य सुख या आनन्द प्राप्त करना नहीं बल्कि ज्ञान प्राप्त करना होना चाहिए।

शिक्षा गुरू, राष्ट्र और आदर्श के प्रति श्रद्धा और चेतना उत्पन्न करने वाली हो।

शिक्षा से मनुष्य में आत्म विश्वास, आत्मत्याग, आत्म नियन्त्रण, आत्म ज्ञान, आत्म श्रद्धा जैसे आलोकिक सदगुणों का विकास होना चाहिए।

विवेकानंद ने शिक्षा के लिए एकाग्रता और अनासक्ति को जरूरी बताया था ।

धर्म ही शिक्षा की आत्मा मानकर उन्होंने धार्मिक शिक्षा पर बल दिया था । लेकिन उनका अर्थ किसी धर्म - विशेष - हिन्दू, बौद्ध, ईसाई से नहीं हैं ।

स्वामीजी बाबुओं का उत्पादन करने वाली तात्कालिक शिक्षा पद्धति के कटु आलोचक थे, वे कहते थे- "हमें उस शिक्षा की आवश्यकता है जिसके -द्वारा चरित्र का निर्माण हो, मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है, बुद्धि का विकास होता है और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा होता है।"[13] वे व्यवहारिक शिक्षा के पक्षधर थे- उनका परामर्श था - "तुम को कार्य के क्षेत्र में व्यवहारिक बनना पड़ेगा, सिद्धान्तों के ढेरों ने सम्पूर्ण देश का विनाश कर दिया।"[14] श्री कृष्ण ने गीता में कहा है - "किसी भी प्रकार जो मुझे प्राप्त कर लेता है, मैं उसकी श्रद्धा को दृढ़ और अचंचल बनाता हूं। मनुष्य किसी भी प्रकार मुझे प्राप्त करें फिर भी मैं उसकी सेवा करता हूं । - सभी मार्ग ,धर्म मेरे द्वारा बनाए गये हैं ।"[15] स्वामीजी के विचार में वास्तविक धर्म, सिद्धांतों, अंधविश्वासों और शास्त्रीय - तर्कों में नहीं हैं । धर्म अनुभूति या आत्मा का साक्षात्कार हैं।"[16]

**मानवतावाद एवं दरिद्रनारायण की अवधारणा -:**

विवेकानंद एक मानवतावादी चिंतक थे, उनके अनुसार मनुष्य का जीवन ही एक धर्म है। धर्म न तो पुस्तकों में है, न ही धार्मिक सिद्धांतों में, प्रत्येक व्यक्ति अपने ईश्वर का अनुभव स्वयं कर सकता है। विवेकानंद ने धार्मिक आडंबर पर चोट की तथा ईश्वर की एकता पर बल दिया। विवेकानंद के शब्दों में "मेरा ईश्वर दुखी, पीड़ित हर जाति का निर्धन मनुष्य है।"[17] इस प्रकार विवेकानंद ने गरीबी को ईश्वर से जोडकर दरिद्रनारायण की अवधारणा दी ताकि इससे लोगों को वंचित वर्गों की सेवा के प्रति जागरूक किया जा सके और उनकी स्थिति में

सुधार करने हेतु प्रेरित किया जा सके। इसी प्रकार उन्होंने गरीबी और अज्ञान की समाप्ति पर बल दिया तथा गरीबों के कल्याण हेतु कार्य करना राष्ट्र सेवा बताया। किंतु विवेकानंद ने वेद की प्रमाणिकता को स्वीकार करने के लिये वर्ण व्यवस्था को भी स्वीकृति दी। हालाँकि वे अस्पृश्यता के घोर विरोधी थे।

**उपसंहार -** स्वामी विवेकानंद का जन्म 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ लेकिन उनके विचार और जीवन दर्शन आज के दौर में अत्यधिक आवश्यक हैं। विवेकानंद जैसे महापुरुष मृत्यु के बाद भी जीवित रहते हैं और अमर हो जाते हैं तथा सदियों तक अपने विचारों और शिक्षा से लोगों को प्रेरित करते रहते हैं। मौजूदा समय में विश्व संरक्षणवाद एवं कट्टरवाद की ओर बढ़ रहा है जिससे भारत भी अछूता नहीं है, विवेकानंद का राष्ट्रवाद न सिर्फ अंतर्राष्ट्रीयवाद बल्कि मानववाद की भी प्रेरणा देता है। इसके साथ ही विवेकानंद की धर्म की अवधारणा लोगों को जोड़ने के लिये अत्यंत उपयोगी है, क्योंकि यह अवधारणा भारतीय संस्कृति के प्राण तत्व सर्वधर्म समभाव पर ज़ोर देती है। यदि विश्व सर्वधर्म समभाव का अनुकरण करे तो विश्व की दो-तिहाई समस्याओं और हिंसा को रोका जा सकता है। भारत की एक बड़ी संख्या अभी भी गरीबी में जीवन जीने के लिये मजबूर है तथा वंचित समुदायों की समस्याएँ अभी भी वैसी ही बनी हुई हैं यदि विवेकानंद की दरिद्रनारायण की संकल्पना को साकार किया जाए तो असमानता, गरीबी, गैर-बराबरी, अस्पृश्यता आदि से बिना बल प्रयोग किये ही निपटा जा सकता है तथा एक आदर्श समाज की संकल्पना को साकार किया जा सकता है। देश की वर्तमान सामाजिक ,आर्थिक , तथा शैक्षणिक स्थिति को देखते हुए आज हमें फिर से विवेकानंद जी के कौशल को अपनाना होगा और कहना होगा कि उत्तिस्थ जाग्रत, उठो , जागो और अपने विश्व गुरु के ताज को पुनः प्राप्त करों । इस तरह इस लेख में मैंने स्वामी विवेकानंद जी के दर्शन तथा शैक्षिक विचारधारा को उजगार किया है ।

**संदर्भ-ग्रंथ :-**

**विवेकानंद साहित्य** .खंड 2 पृ .7

**वही**

**वही.** पृ.182

वही. पृ.37

भारतीय शिक्षा .दार्शनिक .कीर्ति देवी सेठ . पृ.73

वही. पृ .74

वही. पृ.75

विवेका नंद साहित्य .खंड 6 . पृ.311

वही. खंड 8. पृ.229

वही खंड .2 . पृ.231

वही. खंड .4 . पृ.68

International yoga Day . How svami Vivekanand helped popularise the ancient indian regimen in the west.21 june 2017

Euersten in 2002 - p.600

The complete works of Swami Vivekananda vol.5 kartindo.com .1923 .p .361

The complete works of Swami Vivekananda vol.5 p.368

स्वामी विवेकानंद का शैक्षणिक चिंतन . डा. वीरेन्द्र सिंह यादव . पृ.7

Life History and Teachings of Swami Vivekananda मूल से 9 मई 2017 को पुरोलिखित .अभिगमन तिथि - 3 may 2017 .

# धर्म, अर्थ और समाज: प्राचीन भारत की आर्थिक संस्थाओं की त्रैतीय भूमिका

**प्रो0 आनंद शंकर सिंह***
**दिव्या दुबे****

**सारांश:**
*प्राचीन भारतीय समाज में धर्म न केवल आध्यात्मिक और नैतिक जीवन का मार्गदर्शक था, बल्कि आर्थिक व्यवहारों और संस्थाओं के निर्माण में भी इसकी प्रमुख भूमिका रही है। इन तीनों तत्वों का प्रभाव आर्थिक संस्थाओं की रूपरेखा, उनके संचालन और सामाजिक जीवन पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। प्राचीन भारत का सामाजिक ढांचा केवल राजनीतिक सत्ता और सैन्य विजय के इर्द-गिर्द नहीं घूमता था, बल्कि यह धर्म, अर्थ और समाज की त्रैतीय व्याख्या पर आधारित था। धर्म जहां जीवन का नैतिक मार्गदर्शक था, वहीं अर्थ जीवन की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का माध्यम था और समाज इन दोनों के बीच संतुलन एवं समन्वय बनाये रखने वाला तत्व था।*

**मुख्य शब्द :** धर्म, अर्थ, समाज, मंदिर, दान, धर्मशास्त्र ।

**धर्म : प्राचीन भारत में सामाजिक-आर्थिक दशा**

**धर्म : आर्थिक जीवन का नैतिक अधिष्ठान-**

धर्म न केवल आध्यात्मिक जीवन को दिशा देता था, बल्कि आर्थिक व्यवहारों को भी नियंत्रित करता था। वैदिक काल के ग्रंथों – ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और धर्मसूत्रों में आर्थिक गतिविधियों की स्पष्ट झलक मिलती है। यज्ञ, दान, कृषि, पशुपालन और व्यापार इन ग्रंथों में उल्लिखित हैं। ऋषियों ने यज्ञ एवं दान को सामाजिक कल्याण से जोड़ा। यज्ञों के आयोजन में बड़ी संख्या में संसाधनों का समावेश होता था, जिससे श्रमिकों, कारीगरों और किसानों की व्यापक भागीदारी रहती थी। 'अर्थ' को पुरुषार्थों में स्थान मिलने से यह स्पष्ट होता है कि धर्म और अर्थ परस्पर पूरक थे। प्राचीन भारत एक अत्यंत विकसित और संगठित सभ्यता का परिचायक रहा है, जहाँ जीवन के चार पुरुषार्थ–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को जीवन का मार्गदर्शक माना गया। इन चारों में 'धर्म' और 'अर्थ' की परस्पर क्रिया समाज की आर्थिक संरचना और संस्थाओं को दिशा देती रही। यह परस्पर क्रिया ही 'त्रैतीय भूमिका' को जन्म देती है–जहाँ धर्म, अर्थ और समाज एक-दूसरे के सहायक, नियंत्रक और संरक्षक बनकर कार्य करते हैं।[1]

मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति और नारद स्मृति जैसे धर्मशास्त्रों में आर्थिक कर्तव्यों और ऋण, व्यापार, संपत्ति के स्वामित्व आदि पर विशेष निर्देश दिए गए हैं। इन धर्मशास्त्रों में आर्थिक आचरण और व्यापारिक नैतिकता का विस्तृत उल्लेख है। इनमें ऋण, लेन-देन, व्यापार के प्रकार, मजदूरी, दान, संपत्ति का विभाजन आदि विषयों को धर्म के अंतर्गत रखा गया है। यह धर्मशास्त्र केवल धार्मिक आदेश नहीं थे, बल्कि सामाजिक और आर्थिक अनुशासन के प्रमुख साधन भी थे। कौटिल्य का अर्थशास्त्र एक अनूठा ग्रंथ है जो धर्म और अर्थ के संतुलन की व्यवहारिक नीति प्रस्तुत करता है – जहाँ राज्य का उद्देश्य केवल संपत्ति संग्रह नहीं, बल्कि धर्म के अनुरूप राज्य व्यवस्था सुनिश्चित करना था।

* प्राचार्य, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, ईश्वर शरण पी0 जी0 कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
** शोध छात्रा, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, ईश्वर शरण पी0जी0कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

**आर्थिक संस्थाएं और उनका सामाजिक दायित्व**

प्राचीन भारत में आर्थिक संस्थाएं केवल व्यापार और लाभ कमाने तक सीमित नहीं थीं, बल्कि वे समाज के नैतिक और सामाजिक उत्तरदायित्वों को भी बखूबी निभाती थीं। उस काल में आर्थिक गतिविधियाँ धर्म, नीति और समाज कल्याण के गहरे मूल्यों से जुड़ी हुई थीं। वे सामाजिक समरसता, धर्म और नैतिकता से भी प्रेरित थीं। उनके लिए समाज का समुचित विकास, निर्धनों की सहायता, शिक्षा और संस्कृति का संवर्धन प्रमुख दायित्व थे। इस संतुलित दृष्टिकोण ने भारत को एक समृद्ध, स्थिर और नैतिक समाज प्रदान किया, जिससे आधुनिक युग में भी प्रेरणा ली जा सकती है।

**आर्थिक संस्थाओं का स्वरूप:**

प्राचीन भारत में आर्थिक संस्थाएं मुख्यतः श्रेणियों, व्यापारिक संघों, ग्राम सभाओं और सामुदायिक संस्थानों के रूप में विद्यमान थीं। श्रेणियाँ कारीगरों, व्यापारियों और उत्पादकों के संगठन होते थे। जैसे कि स्वर्णकार, कुम्हार, बुनकर, लुहार आदि की अपनी-अपनी श्रेणियाँ होती थीं। ये संस्थाएं उत्पादन, गुणवत्ता नियंत्रण, मजदूरी निर्धारण और प्रशिक्षण आदि कार्यों का संचालन करती थीं।[2]

**व्यापार और सामाजिक सरोकार:**

व्यापारी वर्ग, जिसे 'वणिक' कहा जाता था, न केवल देश के भीतर बल्कि विदेशों से भी व्यापार करता था। परंतु लाभ अर्जन के साथ-साथ उन्होंने समाज कल्याण में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। धर्मशालाओं, जलाशयों, विद्यालयों, अस्पतालों, यात्रियों के विश्रामगृहों आदि की स्थापना में व्यापारियों और आर्थिक संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका थी।[3]

**स्वशासी संगठन:** श्रेणियाँ अपने आंतरिक मामलों का निर्णय खुद लेती थीं।

**सामाजिक और आर्थिक शक्ति:** श्रेणियाँ समाज में प्रभावशाली होती थीं और कभी-कभी स्थानीय प्रशासन में भी भाग लेती थीं।

**दान और धर्म:** श्रेणियाँ मंदिरों और सार्वजनिक कार्यों में दान देती थीं, जैसे - बौद्ध विहार निर्माण।

**दण्ड व्यवस्था:** अनुशासन बनाए रखने के लिए अपने सदस्यों को दण्ड भी दे सकती थीं।

**व्यवसाय आधारित संगठन:** जैसे - बढ़ई की श्रेणी, बुनकरों की श्रेणी, सोने-चांदी के व्यापारियों की श्रेणी आदि।

**दान और धर्म का महत्व:**

धर्म और अर्थ को एक-दूसरे का पूरक माना जाता था। 'धर्मार्थ' का विचार समाज में गहराई से व्याप्त था। 'दशवंद' (आय का दसवां भाग), 'भिक्षा', 'यज्ञदान' आदि के रूप में धनी वर्ग समाज के प्रति अपने कर्तव्य निभाता था। व्यापारियों और ज़मींदारों द्वारा बौद्ध विहारों, मंदिरों और शिक्षा संस्थानों को दिया गया सहयोग, उनके सामाजिक उत्तरदायित्व का प्रमाण है। प्राचीन भारत में दान एक व्यक्तिगत पुण्य कर्म होने के साथ-साथ सामाजिक पुनर्वितरण का एक सशक्त माध्यम था। इस व्यवस्था ने न केवल धार्मिक और नैतिक मूल्यों को पुष्ट किया, बल्कि समाज में आर्थिक असमानता को भी नियंत्रित करने की कोशिश की।[4]

**दान की अवधारणा:**

**धार्मिक महत्व:** वेदों और उपनिषदों में दान को एक पुण्य कार्य बताया गया है। धर्मशास्त्रों जैसे *मनुस्मृति* और *धर्मसूत्रों* में दान को गृहस्थ आश्रम का एक अनिवार्य कर्तव्य माना गया।

**दान के प्रकार: अन्नदान:** भूखों को भोजन देना। **विद्यादान:** ज्ञान का दान; गुरुकुल में शिक्षा देना। **भूमिदान:** राजाओं और संपन्न लोगों द्वारा ब्राह्मणों को भूमि देना, जिससे 'अग्रहार' जैसे गाँव बनते थे। **धनदान:** ब्राह्मणों, भिक्षुओं, मंदिरों आदि को धन देना।

**राजाओं द्वारा दान:** राजाओं ने मंदिरों, मठों, और शिक्षण संस्थानों को दान देकर सामाजिक संरचना को बनाए रखने में सहयोग किया। इस प्रकार के दान से राजाओं की धार्मिक प्रतिष्ठा भी बढ़ती थी।

**प्राचीन भारत में दान और सामाजिक पुनर्वितरण :**

प्राचीन भारत में दान और सामाजिक पुनर्वितरण (Redistribution) एक महत्वपूर्ण सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक व्यवस्था का हिस्सा थे। ये दो पहलू न केवल धार्मिक कर्तव्य माने जाते थे, बल्कि समाज में समानता और सामंजस्य बनाए रखने के उपकरण भी थे। दान को 'धर्म' का अंग माना गया, लेकिन इसका प्रभाव अर्थ और समाज पर भी था। दान के माध्यम से संसाधनों का सामाजिक पुनर्वितरण होता था। विशेषतः अन्नदान, वस्त्रदान, भूमि दान (ब्राह्मणों को), और जल की व्यवस्था जैसे प्रयास समाज में सामाजिक असमानता को कुछ हद तक कम करते थे। धर्मशास्त्रों में राजा को "प्रजा के कल्याण हेतु दान देने" की अनिवार्यता का उल्लेख है।[5]

**सामाजिक पुनर्वितरण:**

**संपत्ति का पुनर्वितरण:**अमीर वर्ग (राजा, व्यापारी, ज़मींदार) समाज के निम्न वर्ग को दान के माध्यम से सहायता करते थे।यह एक प्रकार का 'आर्थिक पुनर्वितरण' था, जिससे समाज में संतुलन बना रहता।

**मठ और मंदिर:**ये धार्मिक संस्थान दान में प्राप्त संसाधनों को समाज के ज़रूरतमंद वर्गों में बाँटते थे – जैसे भिक्षु, अनाथ, वृद्ध।*बौद्ध विहारों* और *जैन उपाश्रयों* में भी यह प्रथा देखी जाती है।

**समाज में समरसता:**दान द्वारा अमीर और गरीब के बीच एक नैतिक रिश्ता बनता था।इससे सामाजिक तनाव को कम किया जाता था और सामाजिक स्थिरता बनी रहती थी।

**ग्राम आधारित अर्थव्यवस्था और सहभागिता:**

ग्राम पंचायतें स्थानीय आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था की रीढ़ थीं। वे कर संग्रह, सिंचाई व्यवस्था, कृषि विकास, और न्यायिक कार्यों का संचालन करती थीं। सामूहिक श्रम (जैसे 'हल जोतना', 'तालाब खुदवाना') जैसे प्रयास सामाजिक सहयोग की भावना को दर्शाते हैं।

**नीतिशास्त्र और शास्त्रीय निर्देश:**

कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र', मनुस्मृति, और अन्य ग्रंथों में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि राजा और धनी वर्ग को समाज की समृद्धि और सुरक्षा हेतु कार्य करना चाहिए। इसमें व्यापारियों के लिए उचित मापदंड, मूल्य निर्धारण और उपभोक्ता संरक्षण जैसे विचार भी शामिल थे।

**प्राचीन भारत मे मंदिर और अर्थव्यवस्था:**

प्राचीन भारत में मंदिरों और अर्थव्यवस्था के बीच गहरा संबंध था। मंदिर केवल धार्मिक स्थल नहीं थे, बल्कि वे सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक गतिविधियों के केंद्र भी थे। मठ एवं मंदिर केवल धार्मिक स्थल नहीं थे, वे आर्थिक गतिविधियों के केंद्र भी थे। मंदिरों के पास कृषि भूमि, अनाज भण्डारण गोदाम, ऋण प्रणाली आदि व्यवस्थाएं भी होती थीं। मंदिरों द्वारा दी गई सेवाएं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य और गरीबों की सहायता उन्हें आर्थिक संस्थाओं के रूप में बदल देती थीं मंदिरों के कर्मचारी, पुजारी, नर्तकियां, संगीतज्ञ और कारीगरों की पूरी व्यवस्था आर्थिक दृष्टिकोण से संस्थागत होती थी। इन संस्थाओं ने कृषि भूमि का प्रबंधन किया, शिल्पियों व मजदूरों को रोजगार दिया, सामाजिक भंडार और सहायता प्रणाली चलाई। नीचे इस संबंध को मुख्य बिंदुओं में समझाया गया है:[6]

**मंदिरों का आर्थिक महत्व:**

**धन और भूमि का संचय**: राजाओं, व्यापारियों और आम जनता से मंदिरों को बड़ी मात्रा में दान मिलता था – जैसे सोना, चांदी, कीमती रत्न और भूमि।

**भूमि स्वामित्व**: कई मंदिर बड़े ज़मींदार होते थे और उनसे मिलने वाली आय से पुजारियों, सेवकों और अन्य कर्मियों का वेतन चलता था।

**रोजगार का स्रोत:**

**स्थानीय लोगों को रोज़गार**: मंदिरों में पुजारी, शिल्पकार, नर्तकियाँ, संगीतकार, रसोइये, माली, धोबी आदि कार्यरत रहते थे।

**निर्माण कार्य**: मंदिर निर्माण में मूर्तिकार, कारीगर, स्थापत्यविद (वास्तुकार) और श्रमिकों की बड़ी संख्या जुड़ी होती थी।

**व्यापार और बाज़ार से संबंध:**

**मंदिरों के पास बाज़ार**: मंदिरों के आसपास छोटे-बड़े बाज़ार विकसित होते थे जहाँ तीर्थयात्री खरीदारी करते थे।

**व्यापारिक गतिविधियाँ**: मंदिरों को व्यापारियों से दान मिलता था, बदले में मंदिर व्यापारिक गतिविधियों को संरक्षण देते थे।

**धार्मिक पर्यटन और स्थानीय अर्थव्यवस्था:**

**तीर्थयात्रा**: तीर्थयात्रा करने आए लोग स्थानीय व्यवसायों (खाद्य, आवास, परिवहन) को लाभ पहुँचाते थे।

**राजाओं द्वारा प्रोत्साहन**: कई राजाओं ने तीर्थस्थलों के विकास में निवेश किया, जिससे क्षेत्रीय आर्थिक उन्नति हुई।

**मंदिरों का वित्तीय प्रशासन:**

**लेखा-जोखा**: बड़े मंदिरों में एक संगठित वित्तीय प्रशासन होता था। मंदिरों की आय और व्यय का लेखा रखा जाता था।

**भंडारगृह** : मंदिरों में संग्रहित धन/रत्नों को सुरक्षित रखने के लिए विशेष भंडार बनाए जाते थे।

**धर्म का अर्थशास्त्र के साथ समन्वय:**

कौटिल्य का अर्थशास्त्र इस समन्वय का श्रेष्ठ उदाहरण है, जिसमें राज्य के राजस्व, कर व्यवस्था, व्यापार नियंत्रण और कृषि उत्पादन जैसे विषयों पर धार्मिक मर्यादाओं के साथ विचार किया गया है। कौटिल्य ने स्पष्ट किया कि राजा का कर्तव्य न केवल अर्थ संचित करना है, अपितु धर्म के अनुरूप उसका उपयोग भी करना है।[7] धर्म संपत्ति अर्जन को अनुशासित करता था। 'न्यायपूर्वक अर्जित संपत्ति' को ही स्वीकार्य माना जाता था। अनैतिक कमाई, मुनाफाखोरी, मिलावट, झूठे वादे, उपभोक्ता को धोखा देना - ये सब अधर्म माने जाते थे। धर्म ने संपत्ति के उपयोग को भी मर्यादित किया - जैसे दान, यज्ञ, सामाजिक सेवा में उसका व्यय।

**त्रैतीय संबंध : धर्म, अर्थ और समाज की परस्पर क्रियाएँ**

**कौटिल्य का त्रैतीय सिद्धांत:**

कौटिल्य का दृष्टिकोण स्पष्ट है: "धर्म, अर्थ और काम में अर्थ को प्रधान मानना चाहिए, क्योंकि वह शेष दो का आधार है।" परन्तु वह यह भी कहते हैं कि अर्थ यदि अधर्म से अर्जित हो, तो वह समाज को विनाश की ओर ले जाता है।

**संस्थाओं में त्रैतीयता का प्रतिबिंब:**

**मंदिर**: धार्मिक केंद्र होने के साथ-साथ वे आर्थिक उत्पादन, वितरण, और सामाजिक सेवा का केंद्र भी थे।

**ग्रामसभाएँ**: कृषि उत्पादन, भूमि वितरण, कर संग्रहण, जल संसाधन नियंत्रण और सामाजिक न्याय के लिए कार्य करती थीं।

**श्रेणियाँ**: व्यावसायिक समुदायों के संगठन थे जो सामाजिक मूल्यों और धर्म की कसौटी पर व्यापारिक गतिविधियाँ संचालित करते थे।

**धर्म-संरक्षित आर्थिक अनुशासन:**

धर्म ने व्यापार और धन संचय को उद्देश्यहीन नहीं छोड़ा। धर्मशास्त्रों में दान, यज्ञ, अतिथि सेवा, गो-रक्षा आदि के लिए आर्थिक संसाधनों के उपयोग को प्राथमिकता दी गई। यह एक प्रकार का सामाजिक पुनर्वितरण था।

**समाज का नियामक तंत्र:**

राजा या राज्य धर्मशास्त्रों के अनुसार शासन करता था। उसका कर्तव्य था - सामाजिक न्याय, आर्थिक संतुलन, कर निर्धारण, उत्पादन संवर्धन। इस त्रैतीय संबंध के बिना समाज असंतुलित हो जाता।[8]

**निष्कर्ष:**

प्राचीन भारत की आर्थिक संस्थाएँ धर्म, अर्थ और समाज के त्रैतीय संबंध पर आधारित थीं अर्थात तीनों एक-दूसरे के पूरक थे। इन तीनों का परस्पर संबंध सहजीवी था, प्रतिस्पर्धात्मक नहीं। इस त्रैतीय एकता ने भारत को आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से एक समृद्ध और टिकाऊ सभ्यता में बदल दिया। धार्मिक विश्वासों ने आर्थिक आचरण को नैतिकता और सामाजिक मर्यादाओं में बाँधा, वहीं अर्थ ने संसाधनों का प्रवाह सुनिश्चित किया और समाज ने स्थिरता और संरचना तथा अनुशासन प्रदान किया। इस त्रैतीय एकता ने भारत का आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से एक समृद्ध और टिकाऊ सभ्यता का स्वरूप प्रदान किया। इनकी पारस्परिकता ने न केवल तत्कालीन अर्थव्यवस्था को गति दी बल्कि आज तक प्रभावशाली बनी हुई है। यह त्रैतीय दृष्टिकोण न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यवान है, बल्कि आज के आर्थिक और सामाजिक विमर्श में भी मार्गदर्शक बन सकता है।

**संदर्भ सूची:**

चट्टोपाध्याय, सुधाकर - सोशल लाइफ इन एन्सिएंट इंडिया,अकादमिक पब्लिशर्स, कलकत्ता, प्रथम संस्करण, 1965, पृ0 सं0 330

चक्रवर्ती, हरिपद, ट्रेड एंड कॉमर्स ऑफ़ एन्सिएंट इंडिया,अकादमिक पब्लिशर्स, कलकत्ता, प्रथम संस्करण, 1966

बोस, एम0 एल0 - इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ़ एन्सिएंट इंडिया, कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, 2001

थापर, रोमिला - हिस्ट्री ऑफ़ अर्ली इंडिया : फ्रॉम ओरिजिन टू 1300, पेंगुइन बुक्स इंडिया, नई दिल्ली, 2003

श्रीवास्तव, बलराम - ट्रेड एंड कॉमर्स इन एन्सिएंट इंडिया, चौखम्बा पब्लिकेशंस, वाराणसी, 1968

झा, डी0 एन0 - इकोनॉमी एंड सोसाइटी इन अर्ली इंडिया, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1993

गैरोला, वाचस्पति- कौटिलीय-अर्थशास्त्रम, चौखम्बा विद्याभवन,वाराणसी, 2021

दास, संतोष कुमार - दि इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ़ एन्सिएंट इंडिया, मित्रा प्रेस, कलकत्ता, 1925

# भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में मुस्लिम महिलाओं का योगदान

डॉ. निजामुद्दीन*

महिलाओं ने अपने आत्मिक बल तथा पूरे साहस से स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी। स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के लिए महिलाओं ने बहुत सी प्राचीन परम्पराओं को तोड़ा तथा अपनी परम्परागत घरेलू जिम्मेदारियों को भी छोड़ा। इसलिए भारतीय स्वतंत्रता के आन्दोलन में उनका योगदान सराहनीय एवं वन्दनीय है।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं के योगदान को शामिल किए बिना स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास ही अधूरा हो जाता है। स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में महिलाओं द्वारा दिये गये बलिदान का महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी बहादुरी, निःस्वार्थ सेवा एवं बलिदान अतुलनीय है। हम लोगों में से बहुत से लोग इस तथ्य से अनभिज्ञ हैं कि बहुत सारी महिलाओं ने पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई लड़ी। महिलाओं ने अपने आत्मिक बल तथा पूरे साहस से स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी। स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के लिए महिलाओं ने बहुत सी प्राचीन परम्पराओं को तोड़ा तथा अपनी परम्परागत घरेलू जिम्मेदारियों को भी छोड़ा। इसलिए भारतीय स्वतंत्रता के आन्दोलन में उनका योगदान सराहनीय एवं वन्दनीय है। पुरूष प्रधान समाज में महिलाओं के लिए यह बहुत आसान नहीं था कि वे एक बहादुर की तरह सियासत की लड़ाई लड़ें। लेकिन उन्होंने लोगों के इस मिथ को तोड़ दिया कि महिलाएं केवल घरेलू कार्य करने के लिए होती हैं। अधिकांश महिलाओं ने आन्दोलन में अपनी प्राणों की आहुति भी दी, उनमें से एक रानी लक्ष्मीबाई का नाम बड़े आदर से लिया जाता है क्योंकि वे अंग्रेजों से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुई, वीरगति को प्राप्त होने से पहले उन्होंने अंग्रेजो की दाँत खट्टे कर दिए।

आजादी की लड़ाई में मुस्लिम महिलाओं ने भी बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया था. इनमें से सबसे बड़ा नाम था बेगम हजरत महल का. वो अवध के नवाब वाजिद अली शाह की पत्नी थीं, जिन्हें अंग्रेजों ने बंगाल निर्वासित कर दिया था. पति के निर्वासन के बाद बेगम हजरत महल ने अवध की बागडोर संभाली और 1857 की क्रांति में अहम भूमिका निभाई।

हम आजादी का 77वां महोत्सव मना चुके हैं। लेकिन हम आजादी के पूरे संघर्ष और आंदोलन में महिलाओं के संघर्ष, खासतौर पर मुस्लिम औरतों को भूल जाते हैं। हम। गिनती के एक दो लोगों की शहादत और उनके संघर्ष के बारे में बात करते हैं जो काफी नहीं है। आजादी के संघर्षों में शामिल औरतों की कुर्बानियां क्यों नहीं बताई जाती हैं। बेगम हजरत महल, आबादी बनो और थोड़ा देखें तो अरुणा आसफ के बारे में लिखा या कहा जाता है। लेकिन जमीनी संघर्ष में शामिल, राजनीतिक दखल और मैदान में लड़नेवाली, आजादी के आंदोलन को ताकत देनेवाली, हमारे ही देश की अनेक औरतों के बारे में जानने से हमें महरूम रखा गया है।

## आज़ादी की लड़ाई में मुस्लिम औरतों की हिस्सेदारी

### हजारा बीबी

हजारा बीबी, आंध्र प्रदेश के गुंटूर जिले के तेनाली क्षेत्र की एक स्वतंत्रता सेनानी थीं। हजारा बीबी और उनके शौहर इस्माइल, इस जोड़ी पर महात्मा गांधी का खासा असर पड़ा। उन्होंने खादी अभियान आंदोलन से खुद को जोड़ा। गुंटूर जिले में, उनके पति मोहम्मद इस्माइल ने पहला खद्दर स्टोर खोला, जिससे उन्हें 'खद्दर इस्माइल' उपनाम मिला। उस वक्त आंध्र क्षेत्र में मुस्लिम लीग का काम विशेष रूप से सक्रिय था। चूंकि हजारा और उनके शौहर ने गांधी का समर्थन किया, इसलिए उन्हें मुस्लिम लीग से जबरदस्त दुश्मनी का सामना करना पड़ा। राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल होने के लिए अपने शौहर की बार–बार गिरफ्तारी के बावजूद हजारा बीबी ने कभी हिम्मत नहीं हारी।

### बाजी जमालुन्निसा

बाजी जमालुन्निसा का जन्म साल 1915 में हैदराबाद में हुआ था और 22 जुलाई 2016 को 101 वर्ष की आयु में इसी शहर में उनका निधन हो गया। बाजी जमालुन्निसा सांप्रदायिकता के खलिाफ अमन और

* असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, फ़रीदुल हम मेमोरियल डिग्री कॉलेज, सबराहद, शाहगंज, जौनपुर

आजादी की एक मजबूत आवाज थीं। उन्होंने एक उदार/प्रगतिशील माहौल में अपने माता–पिता की परवरिश के साथ बचपन से ही प्रगतिशील साहित्य पढ़ना शुरू कर दिया था। निजाम के दमनकारी शासन और अपने ससुरालवालों की आपत्तियों के बावजूद उन्होंने आजादी के आंदोलन में भाग लेना जारी रखा। उन्होंने अंग्रेजी हूकूमत से गिरफ्तार होने से बचने की कोशिश कर रहे स्वतंत्रता सेनानियों को जगह भी मुहैया करवाई। उच्च शिक्षा की कमी के बावजूद, वह उर्दू और अंग्रेजी में पारंगत थीं और उन्होंने साहित्यिक समाज 'बज्मे एहबाब' की शुरुआत की थी। बाजी प्रगतिशील लेखक संघ और महिला सहकारी समिति की संस्थापक सदस्य भी थीं।

**बेगम अनीस किदवई**

बेगम अनीस किदवई की पैदाइश 1906 को उत्तर प्रदेश में हुई। बेगम अनीस किदवई ने अपनी पूरी जिंदगी नये आजाद भारत की खदिमत करने, अमन के लिए काम करने और विभाजन के पीड़ितों के पुनर्वास के लिए लगा दी। उन्होंने 1956 से 1962 तक राज्यसभा में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रतिनिधित्व किया। साल 1947 में आजादी हासिल करने के बावजूद, भारत को बंटवारे का सामना करना पड़ा। तब तक, उनके शौहर शफी अहमद किदवई की सांप्रदायिक ताकतों ने मुसलमानों और हिंदुओं के बीच सौहार्द को बढ़ावा देने और देश के बंटवारे को रोकने के प्रयासों के लिए हत्या कर दी थी। पति के चले जाने से वह बुरी तरह टूट गई थीं लेकिन उन्होंने अमन के लिए अपना काम जारी रखा।

**बीबी अम्तुस सलाम**

बीबी अम्तुस सलाम महात्मा गांधी की 'दत्तक बेटी' और एक सामाजिक कार्यकर्ता थीं। बंटवारे के बाद सांप्रदायिक हिंसा का मुकाबला करने और विभाजन के बाद भारत आनेवाले शरणार्थियों के पुनर्वास में उन्होंने खास भूमिका निभाई थी। कई मौकों पर कलकत्ता, दिल्ली और दक्कन में सांप्रदायिक दंगों के दौरान संवेदनशील क्षेत्रों में अपनी जान जोखिम में डालकर पुनर्वास और अमन के काम में वह लगी रहीं। द ट्रिब्यून में प्रकाशित एक लेख में उल्लेख किया गया है कि कैसे इन्होंने दंगों के अपराधियों यह महसूस करवाने के लिए कि वे कितने गलत हैं 25 दिनों तक उपवास किया था। हिंसा के दौरान अपहृत महिलाओं और बच्चों को बचाने की कोशिश में राज्य के अधिकारियों की लापरवाही के विरोध में, वह बहावलपुर के डेरा नवाब में अनिश्चितकालीन अनशन पर भी बैठ गई थीं।

**बेखौफ अजीजन बाई**

अजीजन बाई के बचपन के बारे में दो अलग–अलग बातें सामने आती हैं। पहला– अजीजन का जन्म साल 1832 में लखनऊ में एक तवायफ के घर में हुआ था। उनकी मां की जल्द ही मृत्यु हो गई थी। कुछ बड़ी होने पर मां की जगह उन्होंने संभाली, बाद में वह कानपुर में आ गई और यहीं मुजरा करने लगीं। दूसरी बात यह है कि जीजन बाई का जन्म 22 जनवरी सन 1824 को मध्य प्रदेश के मालवा राज्य के राजगढ़ में हुआ था। उनके पिता शमशेर सिंह एक जागीरदार थे। अजीजन का मूल नाम अंजुला था। एक दिन वे अपनी सहेलियों के साथ मेला घूमने गयी थीं। वहां पर अचानक एक अंग्रेज टुकड़ी ने हमला कर दिया और उन्हें अगवा कर लिया। अंजुला को लेकर जब अंग्रेज सिपाही नदी पर बने पुल से गुजर रहे थे, तो उसी वक्त जान बचाने के लिए अंजुला नदी में कूद गई। जब अंग्रेज वहां से चले गए, तो एक पहलवान ने नदी में कूद कर अंजुला की जान बचाई। वह पहलवान कानपुर के एक चकलाघर के लिए काम करता था।

**आबादी बानो बेगम**

आबादी बानो बेगम उन पहली मुस्लिम महिलाओं में से एक थीं जिन्होंने सक्रिय रूप से राजनीति में भाग लिया और भारत को ब्रिटिश राज से आजादी दिलाने के आंदोलन का भी हिस्सा थीं। आबादी बानो बेगम की पैदाइश 1850 में उत्तर प्रदेश के अमरोहा में हुई थी। अपने शौहर की मौत के बाद, बानो ने अपने बच्चों को अपने दम पर पाला। उनके बेटे, मौलाना मोहम्मद अली जौहर और मौलाना शौकत अली खिलाफत आंदोलन और भारतीय आजादी के आंदोलन के खास चेहरे बन गए। उन्होंने ब्रिटिश राज के खिलाफ असहयोग आंदोलन के दौरान एक खास भूमिका निभाई। 1917–1921 तक आबादी बानो ने अपनी वित्तीय हालात खराब होने के बावजूद, सरोजिनी नायडू की गिरफ्तारी के बाद, ब्रिटिश रक्षा अधिनियम के तहत हर महीने 10 रुपये का दान दिया। फिर 1917 में, बानो भी एनी बेसेंट और उनके बेटों को रिहा करने के आंदोलन में शामिल हो गईं, जिन्हें 1917 में उनके गृह शासन आंदोलन को शांत करने के असफल कोशिशों के बाद अंग्रेजों ने गिरफ्तार कर लिया था। बानो बेगम भारत की आजादी के संघर्ष में मुस्लिम महिलाओं के सबसे प्रमुख चेहरों में से एक थीं। बानो ने खिलाफत आंदोलन और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के लिए धन

उगाहने में बहुत खास भूमिका निभाई।

**बेगम हजरत महल**

अवध फैजाबाद की बहादुर औरत बेगम हजरत महल ने खुद युद्ध के मैदान में उतरकर अंग्रेजी हुकूमत का सामना किया था। उस दौरान कुछ अंग्रेजी अधिकारी मारे गए और कुछ जख्मी हो गए। बेगम हजरत महल ने हमेशा अपनी सेना के हौसले बुलंद करने और उनकी हौसला अफजाई के लिए लगातार बैठकें बुलाईं। उन्होंने आंदोलन की सक्रियता के लिए कई खत लिखे। 25 फरवरी 1858 को वह एक हाथी पर सवार होकर युद्ध के मैदान में पहुंच गई थीं, हालांकि इस युद्ध में अंग्रेजी ताकत जीत गई। अंग्रेजी हुकूमत ने केसर बाग, मूसा बाग और चार बाग पर कब्जा कर लिया। मुश्किल हालात के चलते बेगम नेपाल पलायान कर गईं। बेगम हजरत महल ने उनके सामने आत्मसमर्पण करने से इनकार कर दिया। अंग्रेजी हुकूमत की कड़ी शर्तों के चलते वह भारत नहीं आ सकीं और उन्हें स्थाई रूप से नेपाल में रहना पड़ा।

## सन्दर्भ सूची –

चांद, तारा, इतिहास का स्वतंत्रता आंदोलन में भारत, वॉल्यूम चतुर्थ, प्रकाशन विभाजन, सरकार का भारत, दिल्ली, 1961.
अग्रवाल, एम.जी., भारत के स्वतंत्रता सेनानी, खंड-IV, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, 2008.
थापर, सुरुचि, औरत में जीम भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन : अगोचर चेहरे और अनसुना आवाज (1930–32), पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, 2006
ब्राउन, जूडिथ, गांधी और सविनय अवज्ञा आंदोलन, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1972.
कौर, मनमोहन, भारत में महिलाओं का स्वतंत्रता संग्राम, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985.
चिब, एसएस, भारत के स्वतंत्रता संग्राम पर नया परिप्रेक्ष्य, वन्देमातरम प्रकाशन, चंडीगढ़, 19871
अग्रवाल, आरसी, संवैधानिक विकास और राष्ट्रीय आंदोलन का भारत, एस. चंद प्रकाशित करनासीमित, नई दिल्ली, 1999.
राजू, राजेंद्र, भारत के स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका, साउथ एशिया बुक्स, 1994.
मोदी, नवाज, भारत के स्वतंत्रता संग्राम में महिलाएँ, एलाइड पब्लिशर्स, 2000.
www.newworldencyclodela.org

# संस्कृत साहित्य में उपजीव्य काव्य का महत्त्व

डॉ० ओम प्रकाश सिंह*

साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज जिस प्रकार का होगा वह उसी भांति साहित्य में प्रतिबिम्बित रहता है। समाज के रूप–रंग वृद्धिह्रास, उत्थान –पतन, समृद्धि–दुर्व्यवस्था के निश्चित ज्ञान का प्रधान साधन तत्कालीन साहित्य होता है। संस्कृति की आत्मा साहित्य के भीतर से अपनी मधुर झाँकी सदा दिखलाया करती है। संस्कृति के उचित प्रसार तथा प्रचार का सर्वश्रेष्ठ साधन साहित्य ही है। संस्कृति का मूल स्तर यदि भौतिकवाद के ऊपर आश्रित रहना है तो वहाँ का साहित्य कदापि आध्यात्मिक नहीं हो सकता और यदि संस्कृति के भीतर आध्यात्मिकता की भव्य भावनाएँ हिलोरें मारती रहती हैं तो उस देश तथा जाति का साहित्य भी आध्यात्मिकता से अनुप्राणित हुए बिना नहीं रह सकता। साहित्य सामाजिक भावना तथा सामाजिक विचार की विशुद्ध अभिव्यक्ति होने के कारण यदि समाज का मुकुट हैं तो सांस्कृतिक आचार तथा विचार के विपुल प्रचार तथा प्रसारक होने के हेतु संस्कृति के संदेश का जनता के हृदय तक पहुँचाने के कारण संस्कृति का वाहन होता है।

संस्कृति साहित्य का इतिहास पूर्वोक्त सिद्धान्त का पूर्ण समर्थक है। संस्कृति साहित्य भारतीय समाज के भव्य विचारों का रुचिर दर्पण है।[1] भारतवर्ष में सांसारिक जीवन के उपकरणों का सौलभ्य होने के कारण भारतीय समाज जीवन संग्राम के विकट संघर्ष से अपने को पृथक् रखकर आनन्द की अनुभूति को वास्तव शाश्वत आनन्द की उपलब्धि को अपना लक्ष्य मानता है। इसलिए संस्कृत काव्य जीवन की विषम परिस्थितियों के भीतर से आनन्द की खोज में सदा संलग्न रहा है, का विशुद्ध पूर्ण रूप है। इसीलिए संस्कृत काव्य की आत्मा रस है। रस का उन्मीलन श्रोता तथा पाठक के हृदय में आनन्द का उन्मेष ही काव्य का अन्तिम लक्ष्य है। संस्कृत आलोचनाशास्त्र में औचित्य रीति गुण तथा अलंकार आदि काव्यांगों का विवेचन होने पर भी रस विवेचन ही मुख्यतया प्रतिपाद्य विषय है।

भारतीय समाज का मेरुदण्ड है, गृहस्थाश्रम अन्य आश्रमों की स्थिति गृहस्थाश्रम के ऊपर ही निर्भर है। फलतः भारतवर्ष का प्रवृत्तिमूलक समाज गृहस्थधर्म को पूर्ण महत्त्व प्रदान करता है और इसीलिए संस्कृत साहित्य में गार्हस्थ्य धर्म का चित्रण सांगोपांग, पूर्ण तथा हृदयावर्जक रूप से उपलब्ध होता है। संस्कृत साहित्य का आद्य महाकाव्य वाल्मीकिय रामायण गार्हस्थ्य धर्म की धुरी पर घूमता है।[2]

प्रत्येक साहित्य में प्रतिभाशाली कवियों की लेखमी से प्रसूत कतिपय ऐसे मर्मस्पर्शी काव्य हुआ करते हैं, जिनसे स्फूर्ति तथा प्रेरणा लेकर अवान्तरकालीन कविगण अपने काव्यों को सजाया करते हैं। ऐसे काव्यों को हम व्यापक प्रभाव सम्पन्न होने के हेतु उपजीव्य काव्य के नाम से पुकार सकते हैं। संस्कृति–साहित्य में भी ऐसे उपजीव्य काव्य विद्यमान है। जिनसे संस्कृत भाषा तथा अर्वाचीन प्रान्तीय भाषाओं के कवियों ने अपने विषय के निर्देश के लिए तथा काव्यशैली के विमल विधान के निमित्त सतत् उत्साह तथा अश्रान्त स्फूर्ति ग्रहण की और आज भी वे कर रहे हैं। ऐसे उपजीव्य काव्य संख्या में तीन हैं– 1. रामायण, 2. महाभारत तथा 3. श्रीमद्भागवत्। इन तीनों का अवान्तर काव्य–साहित्य के ऊपर बड़ा ही विशाल मार्मिक तथा आभ्यन्तर प्रभाव पड़ा है। आदिकवि की वाणी पुण्यसलिला भागीरथी हैं[3] जिसमें अवगाहन कर पाठक तथा कवि अपने आपको पवित्र ही नहीं जानते, प्रत्युत रसमयी काव्यशैली के हृदयावर्जक स्वरूप के समझने में भी कृतकार्य होते हैं। काव्य तथा नाटकों को विषय–निर्देश देने में रामायण एक अक्षुण्य स्रोत है। महाभारत तो वस्तुतः व्यासवाणी का विमल प्रसाद है। वह सचमुच विचाररत्नों का एक अगाध महार्णव है, जिसमें गोते लगाने वाला कवि आज भी अपने काव्य को चमत्कृत तथा अलंकृत बनाने के लिए नवीन जगमगाते हीरों को खोज निकालता है।

व्यास जी की वह उक्ति अतिशयोक्ति नहीं है, जिसमें उन्होंने डंके की चोट इस ग्रन्थ रत्न की विशालता का निर्देश करते हुए कहा हैं कि जो कुछ इस महाभारत में है वह दूसरे स्थलों पर है, परन्तु जो इसके भीतर नहीं है, वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है–

**यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।[4]**
**इहस्ति तद् अन्यत्र यन् नेहस्ति न तद् क्वचित्।।**

* असिस्टेण्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, सल्तनत बहादुर पी0जी0 कालेज, बदलापुर, जौनपुर (उ.प्र.)

रामायण तथा महाभारत– ये दोनों काव्य–रत्न तो हमारे कविजनों के लिए उपजीव्य माने ही जाते हैं, परन्तु एक तीसरा भी ऐसा ही उपादेय विस्तृत प्रभावशाली ग्रन्थ है, जिसकी ओर काव्य के आलोचकों की दृष्टि नहीं है। वह ग्रन्थ है, पुराणों का मुकुटमणि श्रीमद्भागवत। भारतीय धर्म के विकास में भागवत का व्यापक प्रभाव किसी भी विज्ञ आलोचक से छिपा नहीं है परन्तु भारतीयकाल के कोमल–विलास तथा प्रचुर प्रसार में भी भागवत का नितान्त महनीय प्रभाव आलोकचकों की दृष्टि से ओझल नहीं हो सकता। यह तो निर्विवाद है कि भारतीय साहित्य में जो मधुरिमा सरसता तथा हृदयावर्जकता है वह वैष्णव धर्म की देन है।

रसो वै सः[5] के प्रत्यक्ष निदर्शनभूत रसिक शिरोमणि श्यामसुन्दर की ललित लीला तथा लावण्यमय विग्रह की भव्य झांकी प्रस्तुत करने वाला वह भागवत पुराण भारतीय साहित्य के गीति–काव्यों तथा प्रगीत मुक्तकों का अक्षय स्रोत है। जिसकी माधुर्य–भावना को ग्रहण कर कृष्ण–भक्त कवियों ने अपने काव्यों में लालित्य, सरसता तथा हृदयानुरंजकता का पुट देकर उन्हें शोभन तथा हृदयावर्जक बनाया। वल्लभ–सम्प्रदाय के अनुयायी हिन्दी तथा गुजराती कवियों में भागवत का उतना ही रस–निःस्यन्द है, जितना गौड़ीय वैष्णवी की बांग्ला कविता में। ऐसे महनीय ग्रन्थ की उपजीव्य काव्य की श्रेणी में अन्तभुक्त मानना नितान्त उपयुक्त है।

इन ग्रन्थों में उपजीव्यता तथा काव्य की दृष्टि से समानता होने पर भी स्वरूपगत तथा कालगत विषमता स्पष्ट है। कतिपय पश्चिमी आलोचक महाभारत के कथानक में अव्यवस्थित आदिकालीन समाज–व्यवस्था का निर्देश पाने के कारण उसे रामायण से प्राचीनतम मानने की भ्रान्त धारणा बनाये हुए हैं।

परन्तु दोनों की रूपगत अन्तरंग परीक्षा के अनन्तर रामायण की प्राचीन तो स्वतः सिद्ध हो जाती है। वाल्मीकिय रामायण में महाभारत में महाभारत के न तो पात्रों का ही कहीं उल्लेख है और न उसकी घटनाओं का ही ग्रन्थस्य पद्यों के उद्धरण तथा संकेत पाने की तो बात ही असंगत है। परन्तु महाभारत के वनपर्व में पूरा रामचरित रामोपाख्यान के नाम से अनेक अध्यायों में केवल वर्णित ही नहीं है प्रत्युत वाल्मीकि के स्पष्ट उल्लेख के साथ रामायण के कपिय श्लोक भी निर्दिष्ट किये गये हैं। इसका निष्कर्ष यही है कि महाभारत रामकथा से ही परिचित नहीं है बल्कि वह वाल्मीकि के वर्तमान रामायण से भी पूर्णतया अभिज्ञ हैं। फलतः रामायण का महाभारत की अपेक्षा प्राचीनतम होना नितान्त सिद्ध है। भागवत की रचना महाभारत में अर्वाचीन है।[6] आचार–व्यवहार के विशाल–कोशभूत महाभारत की रचना करने पर भी व्यासदेव को आन्तरिक शान्ति जब नहीं मिली, तब महर्षि नारद जी के उपदेश से उन्होंने भक्ति प्रधान[7] भागवत का निर्माण किया।

संस्कृत साहित्य में महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण आदि काव्य समझा जाता है तथा वाल्मीकि आदि कवि माने जाते हैं। काव्य प्रसिद्ध है कि जब व्याध के बाण से विधे हुए क्रोंच के लिए विलाप करने वाली क्रौंची का करुण शब्द ऋषि ने सुना तो उनके मुँह से अकस्मात् यह श्लोक निकल पड़ा –

**मा निषाद प्रतिष्ठास्त्वमगमः शाश्वतीः समाः**
**यत् क्रौचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।**[8]

हे निषाद! तुमने काम से मोहित इस क्रौंच पक्षी को मारा है, अतः तुम सदा के लिए प्रतिष्ठा प्राप्त न करो। महर्षि की कल्याणमयी वाणी सुनकर स्वयं ब्रह्मा उपस्थित हुए और उन्होंने रामचरित लिखने के लिये उनसे कहा। संस्कृत साहित्य में उपजीव्यता के महत्व की भूमिका रामायण मानव सौख्य की अभिवृद्धि, दीन आर्त जनों उद्धार, परस्पर में सहानुभूति का प्रसार, हमारे और संसार के बीच सम्बन्ध के विषय में नवीन या प्राचीन सत्वों का अनुसंधान जिससे इस भूतल पर हमारा जीवन उदात्त तथा ओजस्वी बन जाय या ईश्वर की महिमा झलकती है।[9] वे आदर्श पति हैं, सीता के प्रति राम का सन्ताप चतुर्मुखी है। स्त्री (अबला) के नाश होने से वे कारुण्य से सन्तप्त है। आंश्रिता के नाश से दया के कारण पत्नी (यज्ञ से सहधर्म–चारिणी) के नाश से शोक के कारण तथा प्रिया के नाश से प्रेम के कारण वे सन्तप्त हो रहे हैं–

**स्त्री प्रणष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः।**
**पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेन च।।**[10]

संस्कृत साहित्य में महाभारत भी एक उपजीव्य काव्य के रूप में विख्यात है। महाभारत का शान्तिपर्व जीवन की समस्याओं को सुलझाने का कार्य हजारों वर्षों से करता आ रहा है। इसलिए इस इतिहास ग्रन्थ को हम अपना धर्मग्रन्थ मानते आये हैं, जिसका पठन–पाठन, श्रवण–मनन, सब प्रकार से हमारा कल्याणकारक है। इस ग्रन्थ का सांस्कृतिक मूल्य भी कम नहीं है। सच तो यह है कि केवल इसी ग्रन्थ के अध्ययन से हम अपनी संस्कृति के शुद्ध स्वरूप से परिचय पा सकते हैं। भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ भागवतद्गीता इसी महाभारत का एक अंश है। इसके अतिरिक्त विष्णुसहस्रनाम, अनुगीता भीष्मस्तवराज गजेन्द्रमोक्ष जैसे आध्यात्मिक तथा भक्तिपूर्ण ग्रन्थ इसी के अंश हैं। इन्हीं पांच ग्रन्थों को पंचरत्न के नाम से पुकारते हैं। इन्हीं

गुणों के कारण महाभारत पंचम वेद के नाम से विख्यात है। वाल्मीकि के समान व्यास भी संस्कृत कवियों के लिए उपजीव्य है। महाभारत के उपाख्यानों का अवलम्बन कर ही कालान्तर में हमारे कवियों ने काव्य, नाटक, गद्य चम्पू पद्य, कथा आख्यायिका आदि नाना प्रकार के साहित्य की सृष्टि की है। इतना ही क्यों? जावा, सुमात्रा के साहित्य में भी महाभारत विद्यमान है। वहाँ के लोग भी महाभारत के कथानक से उसी प्रकार शिक्षा ग्रहण करते हैं तथा पाण्डव–चरित्र के अभिनव से उसी प्रकार मनोरंजन करते हैं, जिस प्रकार भारतवासी। महाभारत इतना विशाल है कि इस महाकाव्य से अनेक काव्यों की रचना की गयी है। प्राचीन राजनीति को जानने के लिए हमें इसी ग्रन्थ की शरण लेनी पड़ती है। विदुर नीति जिसमें आचार तथा लोक व्यवहार के नियमों का सुन्दर निरुपण है, महाभारत का ही एक अंश है। इस प्रकार ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि अनेक दृष्टियों से महाभारत एक उपजीव्य गौरवपूर्ण ग्रन्थ है। श्रीमद्भागवत पाण्डित्य की कसौटी माना जाता है। यह समस्त श्रुतियों का सार है, जीवन सरिता को सरस मार्ग पर प्रवाहित करने वाला मानसरोवर है। हमारे साहित्य में प्रगीत मुक्तकों से प्राचुर्य का रहस्य इसी व्यापक प्रभाव के भीतर छिपा हुआ है।

वात्सल्य तथा श्रृंगार की नाना अभिव्यक्तियों के चारु चित्रण से हमारा साहित्य जितना सरस तथा रस–स्निग्ध है, उतना ही वह कोमल तथा हृदयावर्जक है, भक्त–हृदय की नम्रता सहानुभूति और आत्मसमर्पण की भावना से इन्हीं कृष्ण काव्यों की रचना करने के लिए कवियों को उत्साहित करने का श्रेय श्रीमद्भागवत को देना चाहिये।[11]

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संस्कृत साहित्य में रामायण महाभारत तथा श्रीमद्भागवत् एक उपजीव्य काव्य के रूप में महत्व रखता है।

## संदर्भ सूची–


1. संस्कृति साहित्य का इतिहास– आ0 बलदेव उपा0, पृ0सं0 3.
2. वही, पृ0सं0 4.
3. वही, पृ0सं0 22.
4. महाभारत
5. आचार्य भारत–नाट्य शास्त्र, अध्याय–4, श्लोक 1–17.
6. श्रीमद्भागवत्– प्रथम स्कन्ध, अध्याय–5.
7. श्रीमद्भागवत् स्कन्ध, अ0 7, श्लोक 7–8.
8. वाल्मीकि रामायण– 2/15.
9. Walter Pater-Appreciations Style, p. 38.
10. वाल्मीकि रामायण 5/15/49.
11. बलदेव उपाध्याय – भागवत सम्प्रदाय (प्रा0 नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं0 2012).

# महिलाओं की स्थिति में हो रहे परिवर्तनों पर शिक्षा का प्रभाव

डॉ. दिलीप कुमार सिंह*

भारतीय समाज में भी प्राचीन नीतिकारों ने स्त्रियों को पिता, पति या पुत्र अर्थात् किसी–न–किसी पुरुष के संरक्षण में रहने की वकालत की। पुरुष प्रधान मानसिकता ने स्त्रियों को एक स्वतन्त्र व्यक्ति के रूप में स्वीकार ही नहीं किया। यहाँ तक कि तथाकथित लोकतान्त्रिक एवं आधुनिक मूल्यों वाले पश्चिमी समाज में भी स्त्रियों को लगभग सन् 1920 ई. तक व्यक्ति की श्रेणी में शामिल नहीं किया गया। वहाँ व्यक्ति से तात्पर्य सिर्फ पुरुष से था। इंग्लैण्ड में व्यक्ति को वोट देने का अधिकार था, लेकिन स्त्रियाँ सन् 1918 ई. तक इससे वंचित थीं। अमेरिका में भी वे सन् 1920 ई. तक वंचित रहीं। विश्व में पहली बार व्यक्ति के अन्तर्गत महिला को शामिल किया गया भारत में। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने कोर्नेलिया सोराब जी नामक महिला के वकालत करने सम्बन्धी आवेदन को एक व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी व्यक्ति की श्रेणी में महिलाओं को लगभग सन् 1929 ई. के आसपास ही स्वीकार किया गया।

समकालीन समाज में नारी सम्बन्धी व्याख्या में तीन अवधारणाओं को प्रयुक्त किया जाता है–प्रथम् नारीत्व अर्थात् जननिक आधारित पुरुष एवं नारी के बीच शारीरिक एवं जैविक अन्तर स्पष्टीकरण शारीरिक अन्तर का आधार जेनेटिक होता है। स्त्री–पुरुष की शारीरिक बनावट, आवाज एवं जनन अंगों आदि में विभेद प्राकृतिक होता है। इन अन्तरों को पुरुष सामाजिक असमानता के रूप में परिवर्तित करके लिंगीय विभेद सम्बन्धी अधिकारों एवं वर्जनाओं को प्रस्तुत करता है। इसे स्त्री ने स्वीकार करके अपनी जीवन–शैली को उसी के अनुरूप ढाला। इस तरह नारी के चाल–चलन, आदतें, तौर–तरीके, शारीरिक सजावट, वस्त्रादि, आचार–व्यवहार आदि के मापदण्ड बनते चले गए।

द्वितीय अवधारणा नारीयता सम्बन्धी है।

आधुनिक वैश्विक समाज में पुरुष तथा महिला को एक ही गाड़ी के दांये व बायें वाले दो पहियों के समान माना जाता हैं। इनमें से किसी भी एक पहिये के ठीक न होने पर इस सांसारिक गाड़ी का सर्वोत्तम ढंग से आगे बढ़ना कदापि सम्भव नहीं हो सकता है। इस सार्वभौमिक व सर्वकालिक तथ्य के बावजूद कतिपय धार्मिक तथा सामाजिक कुप्रथाओं व रीति–रिवाजों के कारण काफी प्राचीन काल से ही पुरुष तथा महिलाओं में तरह–तरह से विभेद किया जाने लगा था एवं महिलाओं को घर की चहारदीवारी के अन्दर घर–गृहस्थी संभालने, सन्तान के लालन पालन तथा परिवार के सदस्यों की सेवा करने तक सीमित किया जाने लगा था। पुरुष को स्वामी व महिला को दासी मानने, महिला के कार्यक्षेत्र को घर तक घोषित करने, महिलाओं को स्वाधीनता न देने, अर्थोपार्जन से महिलाओं को दूर रखने जैसे तथाकथित परम्परावादी दृष्टिकोण, धार्मिक मर्यादा तथा सामाजिक मान्यता ने महिलाओं की स्थिति को दोयम स्तर का बना दिया है।

समाज में महिलाओं की प्रस्थिति एवं उनके अधिकारों में वृद्धि ही महिला सशक्तीकरण है। महिला जिसे कभी मात्र भोग एवं संतान उत्पत्ति की जरिया समझा जाता था, आज वह पुरुषों के साथ हर क्षेत्र में कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी है। जमीन से आसमान तक कोई क्षेत्र अछूता नहीं है, जहाँ महिलाओं ने अपनी जीत का परचम न लहराया हो। हालांकि यहाँ तक का सफर तय करने के लिए महिलाओं को काफी मुश्किलों एवं संघर्ष के दौर से गुजरना पड़ा है।

समाज एवं संस्कृति के द्वारा नारी का विशिष्ट निर्माण नारीयता है, जिसके माध्यम से उसकी प्रस्थिति, भूमिका, पहचान, सोच, मूल्य एवं अपेक्षाओं को गढ़ा जाता है। नारीयता के निर्माण की प्रक्रिया समाज की संस्थाओं, सांस्कृतिक मूल्यों एवं व्यवहारों, प्रथाओ, रीति–रिवाजो, लिखित एवं मौखिक ज्ञान परम्पराओं, धार्मिक अनुष्ठानों तथा नारी अपेक्षित विशिष्ट मूल्यों से स्थापित होती है। जन्म से ही बालिका को क्षमा, भय, लज्जा, सहनशीलता, सहिष्णुता, नमनीयता आदि के गुणों को आत्मसात करने की शिक्षा प्रदान की जाती है। इस तरह के समाजीकरण का निर्धारण पुरुष प्रधान मानसिकता वाले समाज द्वारा किया जाता है।

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर समाजशास्त्र इन्दपति पी0जी0 कालेज, गैरवाह–जौनपुर सम्बद्ध वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

तृतीय अवधारणा नारीवादी सम्बन्धि विचारधारा से जुड़ती है। यह विचारधारा पुरूषों एवं स्त्री के बीच की असमानता को स्वीकार करके नारी के सशक्तिकरण की प्रकिया को बौद्धिक एवं क्रियात्मक रूप प्रदान करती है।
भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925, जिसमें 1997 में वसीयत के जरिये तथा बिना वसीयत के उत्तराधिकार के मामलों में गैर–हिन्दुओं, जैसे ईसाइयों, पारसियों आदि की तरह संशोधन किया गया था, मगर इसमें महिलाओं के उत्तराधिकार के अधिकार को मान्यता नहीं दी गयी है। लेकिन मैरी राय के प्रसिद्ध मामले में उच्चतम न्यायालय ने वसीयत के साथ बिना वसीयत के उत्तराधिकार के महिलाओं के अधिकार को मान्यता दी है।
1997 में उच्चतम न्यायालय ने कामकाजी महिलाओं के बुनियादी अधिकारों को लागू करने से संबंधित एक रिट याचिका की सुनवाई करते हुए एक महत्वपूर्ण फैसला दिया जिसमें कार्य स्थल पर यौन उत्पीड़न के खिलाफ दिशानिर्देशों की पुष्टि की। अदालत का कहना था कि कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न संविधान के अनुच्छेद 19 का उल्लंघन है। जिसमें किसी भी व्यवसाय, व्यापार या कारोबार को करने की गारंटी दी गयी है। इसमें यह भी कहा गया है कि काम का अधिकार कार्य करने के लिए सुरक्षित माहौल और सम्मान के साथ जीवन जीने के अधिकार पर निर्भर करता है।
1999 में उच्चतम न्यायालय ने संरक्षक कानूनों के अंतर्गत पिता को विशेष रूप से संरक्षक का अधिकार सौंपने वाले कानून को चुनौती देने वाली याचिका के सिलसिले में मां के स्वाभाविक और बिना शर्त संरक्षण के अधिकार को मान्यता दी।
इसी तरह 73 वां और 74वां संविधान संशोधन भारतीय महिलाओं की उन्नति की दिशा में अत्यंत महत्वपूर्ण पड़ाव है। इनमें ग्रामीण तथा शहरी, दोनों ही क्षेत्रों में स्थानीय निकायों के तमाम निर्वाचित पदों पर महिलाओं के लिए एक–तिहाई पदों के आरक्षण की व्यवस्था की गयी है। भारत सरकार वीजिंग रिपोर्ट, 1995 के अनुसार इसमें करीब ढाई लाख स्थानीय निकायों के माध्यम से करीब 10 लाख ग्रामीण महिलाओं को समाज के सबसे निचले स्तर से उठकर नेतृत्व करने/निर्णय करने वालों की तरह उभर कर सामने आने और सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने का अवसर प्रदान किया गया है।
1993 में 73वें व 74वें संविधान संशोधन के साथ स्थानीय शासन संस्थाओं में निर्णय प्रक्रिया एवं नेतृत्व में महिलाओं की सहभागिता में वृद्धि की गई। भोजन, पोषण, स्वास्थ्य एवं शिक्षा के मामलों में बालिकाओं के प्रति भेदभाव समाप्त करने, बाल श्रम को कम करने एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को महिला केंद्रित बनाकर न केवल लैंगिक संबंधों में बदलाव आया है बल्कि पंचायती राज संस्थाओं व ग्राम सभाओं में भी उनकी सहभागिता बढ़ी है। 10वीं पंचवर्षीय योजना में लैंगिक भेदभाव को कम करने के लिए महिला घटक योजना एवं जेंडर बजटिंग जैसी प्रभावी संकल्पनाओं के जरिए महिलाओं को विकासात्मक क्षेत्रों में उचित हिस्सा प्रदान किया गया।
आधुनिक संचार के युग में ग्रामीण महिलाएं शिक्षा व रोजगार के क्षेत्र में ऑनलाइन व ई–गर्वनेंस के द्वारा इंटरनेट के जरिए सरकारी व अर्ध–सरकारी संस्थाओं द्वारा प्रदत्त सहायता योजनाएं, सूचनाएं, शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य तथा व्यापार व विपणन जैसी अनैक जानकारियां ग्राम स्तर तक पहुँचाई जा रही है। महिला विकास से जुड़े आधारभूत मापदंडों को लेकर अब सरकारी योजनाओं में काफी बदलाव आया है। पहली बार सातवीं पंचवर्षीय योजना में महिलाओं को समानता व सशक्तिकरण प्रदान करने हेतु योजना आयोग द्वारा चिंता जाहिर की गई। आठवीं योजना के विकास की प्रक्रिया में महिलाओं को पुरुषों के बराबर भागीदारी प्रदान करने पर विशेष बल दिया गया।
शिक्षा सामाजिक सशक्तिकरण के लिए प्रथम एवं मूलभूत साधन है। यह माना जाता है कि शिक्षा ही वह उपकरण है जिससे महिला समाज में अपनी सशक्त, समान व उपयोगी भूमिका की अनुभूति करा सकती है। शिक्षा के आधार पर महिला में दक्षता, कौशल, ज्ञान एवं क्षमताओं का विकास होता है। शिक्षित महिला न केवल स्वयं लाभान्वित होती है, वरन उससे भावी पीढ़ी भी लाभान्वित होती है। शिक्षा किसी भी प्रकार के कौशल की प्राप्ति एवं विवेकपूर्ण दृष्टिकोण के विकास के लिए पूर्णतया आवश्यक है। महिला की शिक्षा से उसका शोषण रोकने में सहायता मिलेगी। निर्णय लेने की क्षमता सशक्तिकरण का एक बड़ा मानक है। शिक्षा का निर्णय लेने की क्षमता से धनात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध है । न्यून शैक्षिक स्तर का सीधा प्रभाव है इस मानव पूँजी (महिला) का निम्न स्तरीय विकास, कुशलता का निम्न स्तर तथा श्रम बाजार में न्यून भागीदारी। महिलाओं की वास्तविक स्थिति – से व्यक्ति, परिवार, समाज एवं राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक स्थिति प्रभावित होती है।

## बालिका शिक्षा प्रोत्साहन योजना

केन्द्र सरकार ने बालिका शिक्षा और बालिका सशक्तिकरण को लेकर हाल में अनेक योजनाएं शुरू की है। इन योजनाओं के कियान्वयन से निश्चित रूप से बालिकाओं को हौसला मिल रहा है। इसमें प्रमुख रूप से बेटी बचाओ, बेटी बढ़ाओ योजना है जिसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी सराहा गया है। 100 करोड़ रुपये के शुरुआती

कोश के साथ यह योजना शुरू में देशभर के सौ जिलों में शुरू की गयी। खासकर उन जिलों में जहाँ लिंगानुपात बेहद कम थ। बाद में इसका विस्तार 61 अन्य जिलों में भी किया गया है। इस योजना के तारतम्य में हर लड़की के लिए पैसे बचाने की और लघु बचत योजना सुकन्या समृद्धि अकांउट योजना शुरू की बच्चियों को उच्च शिक्षा के लिए आवश्यकता होने पर धन की उपलब्धता जैसे छोटे लेकिन महत्वपूर्ण लक्ष्यों के साथ ही घरेलू बचत का प्रतिशत बढ़ाने के लिए यह पहल की गयी। यह योजना माता पिता को अपनी लड़की की बेहतर शिक्षा और भविश्य के लिए पैसे बचाने के लिए प्रोत्साहित करती है। साथ ही केन्द्र की ओर से शैक्षिक रूप से पिछड़े 3,479 उपखण्डों में दसवीं और बारवीं कक्षा की छात्राओं के लिए 100 बिस्तरों वाले छात्रावासों की स्थापना की है। इस योजना का उददेश्य अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछडावर्ग और अल्पसंख्यक वर्ग की 14 से 18 साल की ऐसी बालिकाओं को आगे पढ़ने के लिए प्रेरित करना है जो खराब आर्थिक स्थिति के कारण बीच में ही अपनी पढ़ाई छोड़ देती हैं। भारत सरकार की ओर से अनुसूचित जाति, जनजाति और पिछड़ा वर्ग की बालिकाओं के लिए सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में आवासीय उच्च प्राथमिक विद्यालय की स्थापना के लिए कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना का शुभ आरम्भ किया गया था। कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना की शुरुआत पहले दो वर्ष तक अलग योजना के रूप में सर्व शिक्षा अभियान, बालिकाओं के लिए प्राथमिक स्तर पर शिक्षा दिलाने का राष्ट्रीय कार्यक्रम व महिला सामख्या योजना के साथ सामंजस्य बिठाते हुए शुरू की गयी थी। बाद में इसे सर्वशिक्षा अभियान में एक अलग घटक के रूप में विलय कर दिया गया।

**महिला शिक्षा के महत्व**

महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए शिक्षा वास्तव में सबसे महत्वपूर्ण संघटक और हस्तक्षेप है। शिक्षा महिलाओं के सशक्तिकरण में सहायक है या शिक्षा का क्या महत्व है। शिक्षा के द्वारा ही महिलाओं में तेजी से बदलती हुई विश्व की वास्तविकताओं को समझने के लिए आवश्यक विष्लेशणात्मक कौशल प्राप्त होगा जो उन्हें अपमान पूर्ण और मानवीय स्थितियों का विरोध करने का विश्वास और ताकत प्रदान करेगा।

**शिक्षा एवं सशक्तिकरण के सम्बन्ध**

शिक्षा और सशक्तिकरण में क्या सहसम्बन्ध है? शिक्षा महिलाओं को पितृसत्तात्मक ज्ञान, नियमों, मूल्यों, व्यवहार पद्धतियों को चुनौती देने में मदद करती है। महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए शिक्षा सामूहिक कार्यवाही और चिन्तन की एक अनवरत जारी रहने वाली प्रक्रिया है।

**महिलाओ की शिक्षा का प्रभाव**

महिलाओं की परिवर्तित प्रस्थिति पर शिक्षा का किस प्रकार प्रभाव पड़ा है? सशक्तिकरण में शिक्षा का स्थान महत्वपूर्ण हैं। बिना शिक्षा के महिलाओं की प्रस्थिति में सकारात्मक परिवर्तन असम्भव है। शिक्षा के माध्यम से महिलाओं में जागरूकता आयी है, वे अपने बारे में सोचने लगी है, उन्होने महसूस किया है कि घर से बाहर भी जीवन है, महिलाओं में आत्मविश्वास का संचार हुआ है, उनके व्यक्तित्व में निखार आया है। महिलाएँ न केवल सामान्य शिक्षा, विश्वविद्यालय तथा कालेजों मे ही जा रही है बल्कि मुख्यमंत्री, राज्यपाल, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति बन रही है, एवरेस्ट पर विजय प्राप्त कर रही हैं, वायु सेना और नौ सेना में अपनी सेवा प्रदान कर रही है।

**संदर्भ–**

मिश्रा के.के. (1965), ''विकास का समाजशास्त्र'', वैशाली प्रकाशन, गोरखपुर।
अंसारी, एम.एस. (2001), ''विकास का समाजशास्त्र'', वैशाली प्रकाशन, गोरखपुर।
जैन, प्रतिभा (1998), ''भारतीय स्त्री : सांस्कृतिक सन्दर्भ'', रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
व्यास डॉ0 मिनाक्षी, नारी चेतना और सामाजिक विधान, रोशनी पब्लिकेशन, कानपुर 2008।
ल्वानिया, एम.ए. (1989), ''समाज शास्त्रीय अनुसंधान का तर्क एवं विधियाँ'', रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर।
तिवारी, आर.पी. (1999), ''भारतीय नारी : वर्तमान एवं संसाधान'', नई दिल्ली।
बघेला, डॉ. हेत सिंह (1999), ''शिक्षा मनोविज्ञान'', विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

# मुस्लिम महिला उद्यमिता की वर्तमान स्थिति: चुनौतियां एवं समाधान

**डॉ. सलीम खान***

**सारांश**

मुस्लिम महिलाएं एक महत्वपूर्ण वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो लंबे समय तक पारंपरिक भूमिकाओं, धार्मिक विश्वासों और सामाजिक बंधनों के कारण सार्वजनिक जीवन और आर्थिक गतिविधियों में अपेक्षाकृत कम सक्रिय रही हैं। हालांकि, हाल के वर्षों में यह परिदृश्य बदलता दिख रहा है। इस दृष्टि से प्रस्तुत लेख के अंतर्गत मुस्लिम महिला उद्यमिता की वर्तमान स्थिति का अध्ययन किया गया है। मुस्लिम महिलाओं का उद्यम क्षेत्र जिसमें हस्तशिल्प व्यवसाय, शिक्षा, आनलाइन, सामाजिक उद्यमिता आदि से जुड़ रही हैं। इसके साथ ही चुनौतियों एवं बाधाओं का भी सामना कर रही है।

**की-वर्ड: मुस्लिम महिलाओं की वर्तमान स्थिति, एवं उद्धम क्षेत्र, बाधाएं एवं समाधान, सुझाव।**

**प्रस्तावना:**

भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में महिला उद्यमिता तेजी से उभर रही है। इस क्षेत्र में मुस्लिम महिलाएं भी अब अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं, जो लंबे समय से पारंपरिक सीमाओं और सामाजिक बंधनों के कारण उद्यमिता से दूर रहीं। अब वे शिक्षा, तकनीक और आत्मनिर्भरता के रास्ते पर बढ़ते हुए व्यापार, सेवा और स्टार्टअप्स की दुनिया में कदम रख रही हैं। दूसरे शब्दों में भारत एक बहुसांस्कृतिक, बहुभाषी और बहुधार्मिक देश है जहाँ विविध सामाजिक समूहों की महिलाएं विभिन्न रूपों में आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास में अपना योगदान दे रही हैं। इन समूहों में मुस्लिम महिलाएं एक महत्वपूर्ण वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो लंबे समय तक पारंपरिक भूमिकाओं, धार्मिक विश्वासों और सामाजिक बंधनों के कारण सार्वजनिक जीवन और आर्थिक गतिविधियों में अपेक्षाकृत कम सक्रिय रही हैं। हालांकि, हाल के वर्षों में यह परिदृश्य बदलता दिख रहा है।

महिला सशक्तिकरण की दिशा में चल रहे राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय प्रयासों, शिक्षा के प्रसार, डिजिटल क्रांति और महिला-केंद्रित योजनाओं ने मुस्लिम महिलाओं को भी आत्मनिर्भर बनने और उद्यमशीलता की ओर कदम बढ़ाने के लिए प्रेरित किया है। अब वे केवल घरेलू जिम्मेदारियों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे छोटे व्यापार, ऑनलाइन सेवाएं, शिक्षा, स्वास्थ्य, फैशन और कुटीर उद्योग जैसे विविध क्षेत्रों में उद्यमिता का उदाहरण प्रस्तुत कर रही हैं।

इस नवाचार की प्रक्रिया में मुस्लिम महिलाएं न केवल अपने लिए आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त कर रही हैं, बल्कि वे अपने परिवारों, समुदायों और समाज में व्यापक स्तर पर सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन भी ला रही हैं। वे पारंपरिक सोच को चुनौती देती हुई एक नई सामाजिक पहचान का निर्माण कर रही हैं, जिसमें महिला होना और मुस्लिम होना कोई बाधा नहीं, बल्कि एक नई शक्ति का प्रतीक बनता जा रहा है।

**प्रस्तुत लेख निम्नलिखित उद्देश्यों पर आधारित है:**

मुस्लिम महिला उद्यमिता की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करना
महिला उद्यमिता के परिवर्तन में मुख्य कारकों का अध्ययन करना
महिला उद्यमिता विकास की सीमित करने में बाधाओं का अध्ययन करना
परिवर्तनों के स्थायित्व के उपायो का अध्ययन करना

* **असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र अब्दुल अज़ीज़ अंसारी डिग्री कॉलेज मजडीहां शाहगंज जौनपुर**

अतः प्रस्तुत लेख में यह समझने की कोशिश की गई है कि किन सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक कारकों ने इस परिवर्तन को जन्म दिया है, वे कौन सी बाधाएं हैं जो अभी भी इस विकास को सीमित करती हैं, और किन उपायों से इस परिवर्तन को स्थायित्व प्रदान किया जा सकता है। इसके साथ-साथ हम कुछ प्रेरणादायक उदाहरणों के माध्यम से यह भी देखेंगे कि कैसे मुस्लिम महिलाएं सीमाओं को पार कर नवाचार और विकास की प्रतीक बन रही हैं।

**मुस्लिम महिला उद्यमिता की वर्तमान स्थिति:**

भारत में मुस्लिम जनसंख्या कुल आबादी का लगभग 14.2% है (जनगणना 2011)। परंतु उद्यमिता में मुस्लिम महिलाओं की भागीदारी मात्र 1% से भी कम है (NSSO रिपोर्ट, 2019)। भारत में मुस्लिम महिलाओं द्वारा उद्यमिता की दिशा में उठाए जा रहे कदम आज सामाजिक बदलाव और आर्थिक सशक्तिकरण का प्रतीक बनते जा रहे हैं। परंपरागत रूप से घरेलू और धार्मिक दायरों तक सीमित रहने वाली मुस्लिम महिलाएं अब आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ रही हैं। यह परिवर्तन धीमा अवश्य है, परंतु गहरा और संभावनाशील है। मौजूदा समय में मुस्लिम महिला उद्यमिता शहरी और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में तेजी से विकसित हो रही है। विशेषकर निम्न और मध्यम वर्गीय मुस्लिम महिलाएं पारिवारिक जिम्मेदारियों के साथ-साथ स्वरोजगार की ओर भी अग्रसर हो रही हैं। वे न केवल स्वयं के लिए रोजगार के अवसर सृजित कर रही हैं, बल्कि दूसरों को भी साथ लेकर चल रही हैं। **निम्नलिखित क्षेत्रों में इनकी भागीदारी विशेष रूप से देखने को मिलती है:**

**1. हस्तशिल्प और पारंपरिक परिधान व्यवसाय:**

मुस्लिम महिलाएं पारंपरिक कढ़ाई, ज़री, चिकनकारी, अजरक प्रिंटिंग आदि शिल्पकला में पारंगत होती हैं। इनका उपयोग वे अपने स्वयं के परिधान ब्रांड या बुटीक के रूप में करती हैं। कइयों ने अपने व्यवसाय को ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म्स जैसे Instagram और Etsy तक भी पहुँचा दिया है।

**2. ऑनलाइन होम-आधारित व्यवसाय:**

शहरी और कस्बाई क्षेत्रों में मुस्लिम महिलाएं बेकरी, पर्सनल केयर, सौंदर्य उत्पाद, मेहंदी डिज़ाइनिंग, घरेलू खाना वितरण, आदि सेवाओं से जुड़े व्यवसाय कर रही हैं। ये बिज़नेस कम निवेश में शुरू किए जा सकते हैं और घरेलू परिवेश में रहकर भी संचालित किए जा सकते हैं, जिससे यह मॉडल मुस्लिम महिलाओं के लिए व्यावहारिक और सुरक्षित बनता है।

**3. शिक्षा और ट्यूटरिंग सेवाएं:**

शिक्षित मुस्लिम महिलाएं कोचिंग, ट्यूशन, मदरसा शिक्षा में डिजिटल सहयोग, उर्दू-अंग्रेज़ी अनुवाद सेवाएं जैसे क्षेत्रों में उद्यमशीलता की ओर अग्रसर हैं। COVID-19 के बाद डिजिटल ट्यूटरिंग के क्षेत्र में इनकी भागीदारी उल्लेखनीय रूप से बढ़ी है। केवल 36% मुस्लिम महिलाएँ माध्यमिक शिक्षा तक पहुँचती हैं। जिन मुस्लिम महिलाओं के पास डिजिटल साक्षरता या डिग्री/डिप्लोमा है, उनमें से 12% ने स्वयं का व्यवसाय आरंभ किया (NITI Aayog-WEP Report, 2022)। ड्रॉपआउट दर मुस्लिम लड़कियों में अभी भी 60% से अधिक है, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में।

**4. डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म पर व्यापार:**

मुस्लिम महिलाएं WhatsApp Business, Facebook Marketplace, Instagram Shops जैसे डिजिटल टूल्स का उपयोग करके कपड़ों, ज्वेलरी, घरेलू सामान, हेल्थ उत्पादों आदि की बिक्री कर रही हैं। यह माध्यम विशेष रूप से युवा मुस्लिम महिलाओं के बीच लोकप्रिय हो रहा है क्योंकि इससे उन्हें घर बैठे भी एक व्यापक ग्राहक वर्ग तक पहुँच मिलती है।

**5. सामाजिक उद्यमिता (Social Entrepreneurship):**

कुछ मुस्लिम महिलाएं सामाजिक सरोकारों से जुड़े व्यवसाय जैसे महिला स्वास्थ्य, किशोरी शिक्षा, सिलाई प्रशिक्षण केंद्र, आदि भी चला रही हैं। इससे न केवल आर्थिक लाभ होता है, बल्कि समुदाय के विकास में भी योगदान मिलता है।

2. **व्यवसाय की प्रकृति:**

| क्षेत्र | प्रतिशत मुस्लिम महिला उद्यमियों अनुमानित हिस्सा |
|---|---|
| कपड़ा व हस्तशिल्प (हिजाब, सलवार, अत्तार आदि) | 35% |
| घर आधारित सेवा (बेकिंग, मेहंदी, ब्यूटी पार्लर | 25% |
| शिक्षा व ट्यूटरिंग | 15% |
| डिजिटल व्यापार (इंस्टाग्राम/Facebook मार्केटिंग) | 20% |
| अन्य (खाद्य वस्तुएँ, दस्तकारी आदि) | 05% |

**स्रोत: UNDP India, 2021; WEP Portal, 2022**

**कुछ प्रमुख राज्यों की स्थिति :**

| राज्य / क्षेत्र | मुस्लिम महिला उद्यमिता की स्थिति |
|---|---|
| **केरल** | उन्नत – सहकारी समूहों के माध्यम से वृद्धि |
| **उत्तर प्रदेश** | मध्यम – पारंपरिक व्यवसाय प्रमुख |
| **बिहार** | सीमित – सामाजिक व आर्थिक अवरोध |
| **पश्चिम बंगाल** | सक्रिय – कपड़ा, ट्यूशन आदि मे |
| **महाराष्ट्र** | विविध – शहरी क्षेत्रों में डिजिटल प्रयोग बढ़ा |

**सकारात्मक संकेतक:**

पिछले 5 वर्षों में मुस्लिम महिलाओं द्वारा **रजिस्टर किए गए स्टार्टअप्स** की संख्या में **तीन गुना वृद्धि** (Startup India, 2023)।

कुछ राज्यों में महिला स्वयं सहायता समूहों के ज़रिए **100+ मुस्लिम महिलाओं को समूह-आधारित उद्यमिता से जोड़ा गया है।**

**नीति और योजनाओं का योगदान:**

भारत सरकार तथा अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों द्वारा शुरू की गई विभिन्न योजनाएं इस बदलाव को गति दे रही हैं:

**प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (PMMY)** — मुस्लिम महिलाएं बिना गारंटी के लोन लेकर अपने स्टार्टअप शुरू कर रही हैं। PM MUDRA योजना के तहत 2020-2023 के बीच लगभग 8.6 लाख मुस्लिम महिलाओं को लोन मिला।प केवल 9% लोन ही उद्यमिता विस्तार में इस्तेमाल हुए; शेष घरेलू आवश्यकताओं में चले गए (PIB, 2023)। अधिकांश को बैंकिंग प्रक्रिया, दस्तावेज़ और गारंटी जैसी शर्तों में कठिनाई होती है।

**स्टार्टअप इंडिया** — नए विचारों और नवाचारों के लिए प्लेटफॉर्म और मार्गदर्शन उपलब्ध कराता है।

**राष्ट्रीय अल्पसंख्यक विकास और वित्त निगम (NMDFC)** — मुस्लिम महिलाओं को सस्ती ब्याज दर पर लोन उपलब्ध कराता है।

**नारी शक्ति योजना** — महिला सशक्तिकरण को केंद्र में रखकर स्वरोजगार को बढ़ावा देती है।

**प्रेरक उदाहरण (Inspirational Case Studies):**

**1. हिना खान (दिल्ली):**

एक मध्यमवर्गीय परिवार से संबंध रखने वाली हिना ने अपने बुटीक व्यवसाय की शुरुआत मात्र ₹10,000 के निवेश से की थी। उन्होंने सोशल मीडिया पर अपने डिजाइनर परिधानों की मार्केटिंग शुरू की और कुछ ही वर्षों में उनका ब्रांड "Hina Styles" दिल्ली और आस-पास के शहरों में लोकप्रिय हो गया। वे अब दर्जनों कारीगर महिलाओं को रोज़गार भी दे रही हैं।

**2. शाइस्ता अंजुम (बिहार):**

शाइस्ता ने एक छोटे से महिला सिलाई केंद्र की शुरुआत की थी, जहां उन्होंने गरीब लड़कियों को मुफ्त प्रशिक्षण देना शुरू किया। आज उनके केंद्र से प्रशिक्षित महिलाएं आत्मनिर्भर बन चुकी हैं और उन्होंने अपने-अपने स्तर पर छोटे व्यवसाय शुरू किए हैं। शाइस्ता का केंद्र अब एक सामाजिक उद्यम के रूप में विकसित हो चुका है।

**प्रमुख चुनौतियाँ (Detailed Challenges in Muslim Women Entrepreneurship):**

हालाँकि मुस्लिम महिलाओं की उद्यमिता में भागीदारी बढ़ रही है, लेकिन आज भी कई बाधाएँ ऐसी हैं जो उन्हें आगे बढ़ने से रोकती हैं या उनकी गति को धीमा कर देती हैं। ये बाधाएँ केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और तकनीकी स्तर पर भी जटिल हैं। नीचे पाँच प्रमुख चुनौतियों का विस्तृत विवरण दिया गया है:

**1. शिक्षा की कमी और सामाजिक रूढ़ियाँ:**

कई मुस्लिम समुदायों में लड़कियों की स्कूली और उच्च शिक्षा तक पहुँच सीमित है। शिक्षा की कमी उद्यमिता की मूलभूत समझ — जैसे लेखांकन, योजना, विपणन, संवाद कौशल — के विकास में बाधक बनती है। कारणत: कि पारंपरिक सोच कि "लड़कियों को केवल घरेलू जीवन के लिए तैयार किया जाना चाहिए" आर्थिक तंगी के चलते लड़कियों की शिक्षा की प्राथमिकता कम होनाग और क्षेत्रों में लड़कियों के लिए स्कूल या कॉलेज की दूरी और सुरक्षा संबंधी चिंता एक बड़ा कारण है। **परिणामत:** स्वावलंबन की कमी,व्यवसाय से जुड़े निर्णय लेने में हिचक, डिजिटल एवं व्यावसायिक साक्षरता की कमी आती है।

**2. पारिवारिक और धार्मिक सीमाएँ:**

कई मुस्लिम महिलाएं परिवार की सामाजिक-सांस्कृतिक सीमाओं से बंधी होती हैं, जहाँ व्यवसाय को 'पुरुषों का क्षेत्र' माना जाता है और महिलाओं की सार्वजनिक भूमिकाओं को संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। हालाँकि इस्लाम में व्यापार को प्रोत्साहित किया गया है (ख़दीजा बीबी स्वयं एक सफल व्यापारी थीं), परंतु सांस्कृतिक धारणाओं ने धार्मिक शिक्षाओं को रूढ़िवादी रूप में बदल दिया है। **उदाहरणस्वरूप** पति या ससुराल के विरोध के कारण महिला व्यवसाय में सक्रिय नहीं हो पातीप। के नियमों के कारण सार्वजनिक मंचों पर भागीदारी में कठिनाई। ''इज्ज़त'' या ''परिवार की प्रतिष्ठा'' जैसे सामाजिक दबाव बना रहता है।

**3. वित्तीय सहायता और निवेश की कमी:**

मुस्लिम महिलाओं को व्यापार के लिए आवश्यक पूँजी जुटाने में विशेष कठिनाई होती है। बैंक ऋण, निवेशक सहयोग, और वित्तीय प्रबंधन में सहयोग की कमी इनके व्यवसायों को प्रारंभ करने या विस्तार देने से रोकती है। **कारण यह है कि** परिवार में जायदाद पर अधिकार न होना, संस्थाओं में दस्तावेज़ीकरण की जटिलताएँ, मुस्लिम समुदाय में वित्तीय

संस्थानों पर अविश्वास या जानकारी का अभाव है परिणामत**:** अधिकतर महिलाएं छोटे स्तर पर ही रुक जाती हैं और जोखिम उठाने से डरती हैं जिससे संस्थागत निवेशकों तक पहुँच नहीं बन पाती।

**4. मार्केटिंग और टेक्नोलॉजी में पिछड़ापन:**

व्यवसाय की सफलता में डिजिटल उपकरणों, सोशल मीडिया, ई-कॉमर्स प्लेटफ़ॉर्म्स और ब्रांडिंग का महत्वपूर्ण योगदान होता है, लेकिन कई मुस्लिम महिला उद्यमियों को इनका समुचित ज्ञान नहीं होता। क्योंकि इनमें तकनीकी शिक्षा का अभाव स्मार्टफोन और इंटरनेट की सीमित पहुँच, डिजिटल मार्केटिंग की समझ की कमी, इंग्लिश भाषा पर पकड़ कमजोर होना है। 38% मुस्लिम महिलाएं स्मार्टफोन की उपयोगकर्ता हैं (2022, Pew Research)। इनमें से केवल 18% महिलाएं सोशल मीडिया को व्यवसाय के लिए प्रयोग कर रही हैं। डिजिटल ट्रेनिंग प्राप्त करने वाली महिलाओं की सफलता दर 28% अधिक रही (KPMG-Google Report, 2017)। **परिणामत:** सीमित ग्राहक वर्ग, व्यवसाय को स्केल अप करने में बाधा, प्रतिस्पर्धा में पिछड़ जाना संभव होता है।

**5. महिला होने के कारण दोहरी असमानता — धार्मिक व लैंगिक:**

मुस्लिम महिला उद्यमियों को दोहरी असमानता का सामना करना पड़ता है — एक ओर **लैंगिक भेदभाव**, तो दूसरी ओर धार्मिक पहचान के कारण भेदभाव होता है।

**समाधान और सुझाव (Solutions and Recommendations):**

मुस्लिम महिलाओं के बीच उद्यमिता को सशक्त रूप से विकसित करने के लिए बहुआयामी रणनीतियों की आवश्यकता है। इन समाधानों में शिक्षा, सामाजिक समर्थन, संस्थागत सहयोग और धार्मिक-सांस्कृतिक समावेशिता का समन्वय आवश्यक है। नीचे पाँच प्रमुख समाधान और उनके विस्तृत पक्ष प्रस्तुत हैं:

**शिक्षा और डिजिटल साक्षरता पर बल:**

शिक्षा ही किसी भी समाज की प्रगति का आधार है, विशेषतः जब बात महिला उद्यमिता की हो। मुस्लिम महिलाओं को व्यावसायिक, तकनीकी और डिजिटल शिक्षा देना अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए आवश्यक है कि समुदाय आधारित शिक्षा केंद्रों की स्थापना की जाय। कंप्यूटर, ई-कॉमर्स, सोशल मीडिया मार्केटिंग जैसे विषयों पर लघु पाठ्यक्रम की व्यवस्था की जाय डिजिटल डिवाइस और इंटरनेट तक पहुँच आसान हो। मुस्लिम बालिकाओं की उच्च शिक्षा में छात्रवृत्ति योजनाओं को बढ़ावा दिया जाय। इससे आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास में वृद्धि होगी आधुनिक बाजार की समझ और प्रतिस्पर्धा में भागीदारी बढ़ेगी और ऑनलाइन उद्यमिता की संभावनाओं में वृद्धि होगी।

**स्थानीय स्तर पर महिला स्वयं सहायता समूहों (SHGs) का गठन:**

स्वयं सहायता समूह (Self Help Groups) महिलाओं के सामूहिक संगठन का एक प्रभावी माध्यम हैं, जहाँ महिलाएं आर्थिक गतिविधियों, बचत, ऋण और प्रशिक्षण में भाग लेती हैं। आवश्यक है कि मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में विशेष महिला SHGs की स्थापना की जानी चाहिए। SHG के माध्यम से माइक्रोफाइनेंस सुविधाएँ उपलब्ध कराना और प्रशिक्षण कार्यशालाओं, मार्केट एक्सपोज़र और नेटवर्किंग अवसरों की व्यवस्था की जाय। इससे सामाजिक सहयोग और मानसिक समर्थन,आर्थिक संसाधनों तक सामूहिक पहुँच, सामूहिक उत्पादन एवं विपणन क्षमता में वृद्धि का लाभ सम्भव होता है।

**सरकारी योजनाओं की जानकारी और पहुंच:**

सरकार द्वारा महिला उद्यमिता के लिए अनेक योजनाएं चलाई जा रही हैं, लेकिन मुस्लिम महिलाओं तक इनकी जानकारी और पहुँच सीमित है। आवश्यक है कि स्थानीय भाषा में योजनाओं की जानकारी उपलब्ध कराया जाय। मदरसों, मस्जिदों और समुदाय केंद्रों के माध्यम से प्रचार किया जाना चाहिए और प्रत्येक जिले में ''महिला उद्यमिता सहायता केंद्र''

की स्थापना एवं सरकारी अधिकारी व एनजीओ के माध्यम से मार्गदर्शन और फॉर्म भरने में सहायता की जाय। इससे अधिक संख्या में महिलाएं योजनाओं से लाभान्वित होंगी। उद्यमिता की शुरुआत में आवश्यक संसाधन आसानी से प्राप्त होंगे और आत्मनिर्भरता के अवसरों में विस्तार होगा।

**मदरसा और धार्मिक संस्थानों में उद्यमिता-प्रशिक्षण का समावेश:**

धार्मिक संस्थानों का मुस्लिम समुदाय में विशेष प्रभाव होता है। यदि ये संस्थान आधुनिक व्यावसायिक शिक्षा और उद्यमिता को प्रोत्साहित करें, तो सामाजिक स्वीकार्यता आवश्यकता है कि मदरसों में कंप्यूटर और व्यावसायिक शिक्षा के मॉड्यूल जोड़े और इस्लाम के संदर्भ में व्यापार और आर्थिक आत्मनिर्भरता की सकारात्मक व्याख्या की जाय। इमामों और धार्मिक नेताओं को उद्यमिता के समर्थन में प्रशिक्षित करना चाहिए। इससे धार्मिक शंका-आधारित विरोध कम होगा। धार्मिक-सांस्कृतिक समन्वय बढ़ेगा और युवतियों को पारिवारिक स्वीकृति के साथ अवसर मिलेंगे।

**सफल मुस्लिम महिला उद्यमियों को रोल मडल के रूप में प्रस्तुत करना:**

प्रेरणादायक उदाहरणों का सामाजिक प्रभाव अत्यधिक होता है। यदि समुदाय में पहले से सफल महिलाओं को सामने लाया जाए, तो नवोदित उद्यमियों को दिशा और प्रेरणा मिलेगी। इससे स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर पर महिला उद्यमिता की व्यवस्था करनी चाहिए। स्कूल-कॉलेज और समुदाय में उनकी कहानियों को प्रचारित किया जाय। डिजिटल प्लेटफॉर्म और मीडिया में ऐसे रोल मॉडल्स को प्रमुखता देना चाहिए। साथ ही सफल महिलाओं को मेंटर या प्रशिक्षक के रूप में जोड़ना चाहिए। युवतियों में आत्मविश्वास और आशा की वृद्धि और सामाजिक धारणा में सकारात्मक बदलाव होगा और समुदाय में उद्यमिता को मान्यता मिलेगी। अतः कह सकते हैं कि इन समाधानों के माध्यम से मुस्लिम महिला उद्यमिता को केवल आर्थिक उन्नति तक सीमित न रखकर, इसे सामाजिक जागरूकता, सांस्कृतिक समन्वय और महिला सशक्तिकरण के एक व्यापक आंदोलन में बदला जा सकता है। इसके लिए सरकार, गैर-सरकारी संगठन, धार्मिक संस्थान, मीडिया और स्वयं समुदाय को मिलकर कार्य करना होगा।

**निष्कर्ष:**

**भारत में मुस्लिम महिलाओं की उद्यमिता एक उभरता हुआ लेकिन चुनौतियों से भरा क्षेत्र है। हाल के वर्षों में आर्थिक, सामाजिक और तकनीकी परिवर्तन ने इस समुदाय की महिलाओं को व्यवसायिक गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया है। तथ्यों और आँकड़ों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि प्रगति हुई है, फिर भी इसमें अपेक्षाकृत धीमी गति और असमानता मौजूद है। अवसरों और क्षमताओं की उपस्थिति** होने के बावजूद, मुस्लिम महिलाओं की उद्यमिता में **संस्थागत सहयोग की कमी, शिक्षा की बाधा**, और **सांस्कृतिक व लैंगिक अवरोध** महत्वपूर्ण रुकावट हैं। तथापि, **डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म, सरकारी योजनाएँ**, और **सामुदायिक नेतृत्व** जैसे कारक इस परिदृश्य को बदलने की दिशा में सकारात्मक संकेत प्रदान करते हैं।

**सन्दर्भ सूची (References):**

भारत सरकार. (2023). अल्पसंख्यक कार्य मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट. नई दिल्ली: भारत सरकार। https://minorityaffairs.gov.in

NITI Aayog. (2022). Women Entrepreneurship Platform (WEP) Annual Report. https://wep.gov.in

UNDP India. (2021). Economic Empowerment of Minority Women in India. यूनाइटेड नेशन्स डेवलपमेंट प्रोग्राम। https://www.in.undp.org

खान, फातिमा. (2022). मुस्लिम महिला उद्यमिता की सामाजिक बाधाएँ और संभावनाएँ. भारतीय समाजशास्त्र पत्रिका, खंड 19(3), पृ. 45–58।

Shaikh, R. & Bano, S. (2021). Entrepreneurial Challenges Faced by Muslim Women in India. International Journal of Social Science and Economic Research, Vol. 9(4), pp. 110–125.
KPMG & Google India. (2017). Women Entrepreneurship in India: A Study of Digital Inclusion. https://kpmg.com/in
Press Information Bureau (PIB). (2023). Progress under PM MUDRA Yojana and Women-Led Startups. वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।https://pib.gov.in
Times of India. (2021). Muslim Women Embrace Digital Entrepreneurship Amid Social Change. https://timesofindia.indiatimes.com
UN Women South Asia. (2020). Unlocking Potential: Economic Participation of Minority Women in South Asia. https://asiapacific.unwomen.org
Ali, S. (2020). Digital Empowerment of Women in Marginalized Communities. Journal of Rural Development and Planning, Vol. 12(2), pp. 88–103.

**भारत सरकार (Ministry of Minority Affairs).** (2023). Annual Report 2022–23. नई दिल्ली: भारत सरकार https://minorityaffairs.gov.in

**National Sample Survey Office (NSSO).** (2019). Periodic Labour Force Survey 2017–18. भारत सरकार, सांख्यिकी मंत्रालय।

**Aayog.** (2022). Women Entrepreneurship Platform: Annual Impact Report. https://wep.gov.in

**UNDP India.** (2021). Empowering Minority Women through Entrepreneurship in India. यूनाइटेड नेशन्स डेवलपमेंट प्रोग्राम। https://www.in.undp.org

**KPMG & Google India.** (2017). Powering the Digital Economy: Women Entrepreneurship in India. https://kpmg.com/in

**Press Information Bureau (PIB).** (2023). Update on MUDRA Scheme and Women Beneficiaries. https://pib.gov.in

**Shaikh, R. & Bano, S.** (2021). Barriers to Entrepreneurship among Muslim Women in India: A Qualitative Analysis. International Journal of Social Science and Economic Research, Vol. 9(4), pp. 110–125.

**Ali, S.** (2020). Digital Inclusion and Entrepreneurship among Marginalized Muslim Women in Urban India. Journal of Rural Development and Planning, Vol. 12(2), pp. 88–103.

**UN Women South Asia.** (2020). Unlocking Potential: Economic Participation of Minority Women in South Asia. https://asiapacific.unwomen.org

**Times of India.** (2021). Muslim Women Use Social Media to Launch Startups from Home. https://timesofindia.indiatimes.com

# भारत में खाद्य सुरक्षा एवं चुनौतियाँ

डॉ. अर्चना सिंह*

भारत में खाद्य सुरक्षा का अर्थ है, सभी लोगों के लिए भेाजन की उपलब्धता, पहुँच और उसे प्राप्त करने का सामर्थ्य। खाद्य सुरक्षा के अंतर्गत, सभी लोगों की भोजन तक पहुँच के साथ–साथ पूरे वर्ष खाने के लिए पर्याप्त भोजन की उपलब्धता को सुनिश्चित करना है। यह भोजन सुरक्षित, गुणवत्तपूर्ण एवं पौष्टिक होना चाहिए।

1996 के विश्व खाद्य शिखर सम्मेलन के आधार पर, खाद्य सुरक्षा को तब परिभाषित किया जाता है जब सभी लोगों को, हर समय, पर्याप्त सुरक्षित और पौष्टिक भोजन तक भौतिक और आर्थिक पहुंच हो, जो एक सक्रिय और स्वस्थ जीवन के लिए उनकी आहार संबंधी आवश्यकताओं और खाद्य प्राथमिकताओं को पूरा करता हो।

**भारत में खाद्य सुरक्षा की आवश्यकता :**

**जनसंख्या दबावः** 1.3 बिलियन से अधिक लोगों के साथ, भारत की विशाल एवं बढ़ती हुई जनसंख्या है। भोजन की बढ़ती मांग, कृषि उत्पादन और खाद्य संसाधनों पर महत्त्वपूर्ण दबाव उत्पन्न करती है।

**कृषि उत्पादकताः** भारत के कृषि क्षेत्र में खंडित भूमि जोत, अपर्याप्त सिंचाई सुविधाएँ, आधुनिक कृषि तकनीकों की कमी और ऋण एवं प्रौद्योगिकी तक सीमित पहुँच जैसे कई कारकों के कारण कृषि उत्पादकता का स्तर अन्य विकसित और विकासशील देशों की तुलना में कम है।

**जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक आपदाएँः** सूखा, बाढ़ और अत्यधिक तापमान सहित अनियमित मौसम पैटर्न, फसल की पैदावार एवं पशुधन उत्पादकता को नकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं।

**सिंचाई सुविधाओं की कमीः** भारत में कृषि का एक बड़ा भाग मानसूनी वर्षा पर निर्भर है। हालाँकि, वर्षा का पैटर्न लगातार अप्रत्याशित होता जा रहा है, जिससे कुछ क्षेत्रों में जल का स्तर गिरता जा रहा है।

**भूमि क्षरण और मृदा स्वास्थ्यः** रासायनिक उर्वरकों के अति प्रयोग और अनुचित भूमि प्रबंधन पद्धतियों जैसे कारकों के कारण होने वाला भूमि क्षरण कृषि उत्पादकता को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

**भंडारण और वितरणः** अकुशल भंडारण सुविधाओं और अपर्याप्त कोल्ड चेन प्रणालियों के परिणामस्वरूप भोजन की पर्याप्त हानि एवं बर्बादी होती है।

**गरीबी और असमानताः** जनसंख्या का एक बड़ा भाग विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों और हाशिए पर रहने वाले समुदायों में, निरंतर पौष्टिक भोजन खरीदने और उस तक पहुंचने के लिए संघर्ष करना पड़ता हैं।

**खाद्य सुरक्षा के चार प्रमुख आयाम :**

भोजन की भौतिक उपलब्धता : खाद्य उपलब्धता खाद्य सुरक्षा के ''आपूर्ति पक्ष'' को संबोधित करती है और इसका निर्धारण खाद्य उत्पादन के स्तर, स्टॉक स्तर और शुद्ध व्यापार द्वारा किया जाता है।

भोजन तक आर्थिक और भौतिक पहुँच : राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भोजन की पर्याप्त आपूर्ति अपने आप में घरेलू स्तर पर खाद्य सुरक्षा की गारंटी नहीं देती है। अपर्याप्त खाद्य पहुँच के बारे में चिंताओं के परिणामस्वरूप खाद्य सुरक्षा उद्देश्यों को प्राप्त करने में आय, व्यय, बाजार और कीमतों पर अधिक नीतिगत ध्यान केन्द्रित किया गया है।

भोजन का उपयोग : उपयोग को आमतौर पर शरीर द्वारा भोजन में मौजूद विभिन्न पोषक तत्वों का अधिकतम उपयोग करने के तरीके के रूप में समझा जाता है। व्यक्तियों द्वारा पर्याप्त ऊर्जा और पोषक तत्वों का सेवन अच्छी देखभाल और भोजन पद्धतियों, भोजन की तैयारी, आहार की विविधता और भोजन के अंतर–घरेलू वितरण का परिणाम है। उपभोग किए गए भोजन के अच्छे जैविक उपयोग के साथ मिलकर, यह व्यक्तियों की पोषण स्थिति निर्धारित करता है।

समय के साथ अन्य तीन आयामों की स्थिरता : भले ही आज आपका भोजन सेवन पर्याप्त हो, फिर भी आपको खाद्य असुरक्षित माना जाता है यदि आपको समय–समय पर भोजन की अपर्याप्त पहुँच मिलती है, जिससे आपकी पोषण संबंधी स्थिति बिगड़ने का जोखिम रहता है। प्रतिकूल मौसम की स्थिति, राजनीतिक अस्थिरता या आर्थिक कारक (बेरोजगारी, खाद्य पदार्थों की बढ़ती कीमतें) आपके खाद्य सुरक्षा की स्थिति पर

* असिस्टेंट प्रोफेसर, गृहविज्ञान विभाग, सल्तनत बहादुर पी.जी. कॉलेज, बदलापुर, जौनपुर

प्रभाव डाल सकते हैं।

**खाद्य सुरक्षा की अवधारणा :–**

खाद्य सुरक्षा की अवधारणा व्यक्ति के मूलभूत अधिकार को परिभाषित करती है अपने भोजन के लिए हर किसी को निर्धारित पोषक तत्वों से परिपूर्ण भोजन की आवश्यक जरूरत होती है महत्वपूर्ण यह भी है कि भोजन की जरूरत नियत समय पर पूरी हो इसका एक पक्ष यह भी है की आने वाले समय की अनिश्चितता को देखते हुये हमारे भण्डारों में पर्याप्त मात्रा में अनाज सुरक्षित हो जिसे जरूरत पड़ने पर तत्काल जरूरतमंद लोगों तक सुव्यवस्थित तरीके से पहुँचाया जाए हाल के अनुभवों ने सिखाया है कि राज्य के अनाज गोदाम इसलिए भरे हुए नहीं होना चाहिए की लोग उसे खरीद पाने में सक्षम नहीं है इसका अर्थ है कि सामाजिक सुरक्षा के नजरिये से अनाज आपूर्ति की सुनियोजित व्यवस्था होनी चाहिए यदि समाज की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित रहेगी तो लोग अन्य रचनात्मक प्रक्रियाओं में अपनी भूमिका निभा पायेगा इस परिप्रेक्ष्य में सरकार का दायित्व है की बेहतर उत्पादन का वातावरण बनाये और खाद्यान्न के बाजार मूल्यों को समुदाय के हितों के अनुरूप बनायें रखे।

**मानव अधिकारों की वैश्विक घोषणा :–**

मानव अधिकारों की वैश्विक घोषणा (1948) का अनुच्छेद 25(1) कहता है कि हर व्यक्ति को अपने और अपने परिवार को बेहतर जीवन स्तर बनाते, स्वास्थ्य की स्थिति प्राप्त करने का अधिकार है जिसमें भोजन, कपड़े और आवास की सुरक्षा शामिल है।

**खाद्य एवं कृषि संगठन :–**

(एफ.ए.ओ) वे 1965 में अपने संविधान की प्रस्तावना में घोषणा की कि मानवीय समाज की भूख से मुक्ति सुनिश्चित करना उनके बुनियादी उद्देश्यों में से एक है।

**खाद्य सुरक्षा के व्यवहारिक पहलू :–**

**उत्पादन**– यह माना जाता है कि खाद्य आत्मनिर्भरता के लिये उत्पादन में वृद्धि करने के निरन्तर प्रयास होते रहना चाहिए इसके अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के अनुरूप नई तकनीकों का उपयोग करने के साथ–साथ सरकार को कृषि व्यवस्था की बेहतरी के लिए पुनर्निर्माण की नीति अपनाना चाहिए।

**वितरण**– उत्पादन की जो भी स्थिति हो राज्य के समाज के सभी वर्गों के उनकी जरूरत के अनुरूप अनाज का अधिकार मिलना चाहिए। जो सक्षम है उसकी क्रय शक्ति बढ़ाने के लिए आजीविका के साधन उपलब्ध होना चाहिए जो वंचित एवं उपेक्षित समुदाय है (जैसे–विकलांग, वृद्ध, विधवा, महिलायें, पिछड़ी हुई आदिम जनजातियाँ आदि) उन्हें सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा करवाना राज्य का अधिकार है।

**आपातकालीन अवस्था में खाद्य सुरक्षा या संरक्षण की भूमिका :–**

आपातकालीन व्यवस्था में खाद्य सुरक्षा समय की अनिश्चितता उसके चरित्र का सबसे महत्वपूर्ण है प्राकृतिक आपदायें समाज के सामने अकसर चुनौनियाँ खड़ी करती है ऐसे में राज्य यह व्यवस्था करता है कि आपात कालीन अवस्था (जैसे सूखा, बाढ़ या चक्रवात) में प्रभावित लोगों को भूखमरी का सामना करना पड़े।

**खाद्य सुरक्षा के तत्व :–**

**उपलब्धता–**

प्राकृतिक संसाधनों में खाद्य पदार्थ हासिल करना।
सुसंगठित वितरण व्यवस्था।
पोषण आवश्यकता को पूरा करना।
पारम्परिक खाद्य व्यवहार के अनुरूप होना।
सुरक्षित होना।
उसकी गुणवत्ता का मानक स्तर का होना।

**आर्थिक पहुँच**– यह सुनिश्चित होना चाहिए कि खाद्यान्न की कीमत इतनी अधिक न हो कि व्यक्ति या परिवार अपनी जरूरत के अनुरूप मात्रा एवं पोषण पदार्थ का उपभोग न कर सके, स्वाभाविक है की समाज के उपेक्षित और वंचित वर्गों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के जरिये खाद्य सुरक्षा उपलब्ध कराई जाना चाहिए।

**भौतिक पहुँच**– इसका अर्थ यह है कि पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न हर व्यक्ति के लिये उसकी पहुँच में उपलब्ध होना चाहिए इस सम्बन्ध में शारीरिक मानसिक विकलांगों एवं निराश्रित लोगों के लिए पहुँच को सुगम बनाना जरूरी है।

**खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि एवं गरीबी :–**

भारत में 1960 के दशक के मध्य से गरीबी के स्तर में एक औसत से कम और अनिश्चित गिरावट दर्ज की गई है इसके बावजूद सरकार की नवीनतम घोषणा के मुताबिक देश की 26 फीसदी आबादी ही गरीबी की रेखा के नीचे है हालांकि इस आँकड़े को कई स्तरों तक चुनौती दी गई इससे यह स्पष्ट होता है कि देश में चार गुना उत्पादन बढ़ने के बाद भी लोगों की शेरी का सवाल ज्यों का त्यों बना हुआ है हम अब भी लोगों की खाद्यान्न सम्बन्धी जरूरतों को पूरा कर पाने की स्थिति में बढ़ी है स्वाभाविक रूप से देखने का अनुभव यह सिद्ध करता है कि खाद्य उत्पादन की वृद्धि का सीधा सम्बन्ध समाज की खाद्य सुरक्षा की स्थिति में नहीं है और यह स्वीकार करना पड़ेगा की देश के उत्पादन में जो वृद्धि हुई है उसमें गैर–खाद्यान्न पदार्थों का हिस्सा बहुत ही तेज गति से बढ़ा है जैसे–तेल, शक्कर, दूध, मांस, अण्डे सब्जियाँ और फल ये पदार्थ अब लोगों के कुल उपभोग का 60 फीसदी हिस्सा अपने कब्जे में रखते हैं ऐसी स्थिति में यदि हम चाहते हैं कि लोगों तक खाद्य पदार्थों की सहज पहुँच हो तो इन गैर–खाद्यान्न पदार्थों के बाजार को नियन्त्रित करना होगा यह महत्वपूर्ण है कि 1951 से 2001 के बीच में देश में खाद्यान्न उत्पादन में चार गुना बढ़ोत्तरी हुई है पर गरीब की खाद्य सुरक्षा अभी सुनिश्चित नहीं हो पायी है।

**खाद्य सुरक्षा और जीवन निर्वाह की अर्थव्यवस्था :–**

उत्पादन बढ़ा लोगों तक नहीं पहुँचा और लोग भूख से मरे यह सब कुछ सही है पर इसके साथ ही एक और पक्ष भी है जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है और वह पक्ष है जीवन निर्वाह की पारम्परिक अर्थ व्यवस्था का समाज का एक हिस्सा अपनी जरूरत का खाद्यान्न बाजार से नहीं खरीदता था वह यह तो पैदा करता था या संग्रहित करता था परन्तु अब हर कोई बाजार के हवाले है। आर्थिक लाभ कमाने के लिए छोटे–छोटे किसानों ने भी खाद्यान्न की फसलों को छोड़कर नकद आर्थिक लाभ देने वाली फसलों पर ध्यान केन्द्रित किया और विपरीत परिस्थितियों में बमुश्किल अपना अस्तित्व बचा पाये क्या एक बार फिर खाद्य सुरक्षा की पारम्परिक व्यवस्था पुनर्जीवित हो पायेगी।

जहाँ तक सम्भव है सभी ग्रामीण क्षेत्रों के जिलों में यह प्रयास होना चाहिए कि वे प्रमुख खाों में किसी ग्रामीण जिले व पास के शहरी क्षेत्र की सार्वजनिक वितरण प्रणाली आंगनबाड़ी अनाज, दलहन, तिलहन आदि सरकार को यथासंभव उस जिले से न्यायसंगत कीमत देकर पिछले क्षेत्रों में भी किसानों को अच्छा बाजार मिलेगा और दूर–दूर से अनाज मंगवाने पर होने पर होता है। इस प्रकार किसानों के हितों के अनुकूल सरकारी नीतियां अपनाई जानी चाहिए जिससे उनकी महंगी चीजों के बोझ से रक्षा हो भूमिहीन कृषि मजदूरों को कुछ भूमि उपलब्ध करवाकर उनकी आजीविका करवानी चाहिए साथ ही अधिक रोजगार छीनने वाले मशीनीकरण को भी नियंत्रित करना चाहिए पशु धन के विकास पर व उस पर आधारित ग्रामीण मजदूरों व किसानों पर के रोजगार को सरकार द्वारा होना चाहिए। कृषि विकास के तौर तरीके पर्यावरण रक्षा के अनुकूल होने चाहिए।

**भारत में खाद्य सुरक्षा से संबंधित चुनौतियों का समाधान?**

**सतत कृषि पद्धतियाँ** : जैविक खेती, कृषि वानिकी और एकीकृत कीट प्रबंधन जैसी स्थायी कृषि पद्धतियों को बढ़ावा देना। ये पद्धतियाँ मिट्टी की उर्वरता एवं जल के संरक्षण में वृद्धि करती है। इन पद्धतियों से रासायनिक इनपुट में कमी के साथ–साथ कृषि उत्पादकता को बढ़ावा मिलता है।

**सिंचाई और जल प्रबंधन** : विश्वसनीय सिंचाई सुविधाओं, जैसे, ड्रिप सिंचाई, स्प्रिंकलर सिंचाई जैसी जल–कुशल प्रौद्योगिकियों को बढ़ावा प्रदान कर, जल संचयन एवं संरक्षण तकनीकों के माध्यम से सिंचाई के बुनियादी ढांचे में सुधार करना चाहिए।

**अनुसंधान और प्रौद्योगिकी** : अधिक उपज वाली फसल की किस्मों, सूखा और कीट–प्रतिरोधी बीजों एवं नवीन कृषि तकनीकों को विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहियें। किसानो को आधुनिक तकनीको के उपयोगों के अनुकूलित करने और उत्पादकता में सुधार करने के लिए सतत कृषि, रिमोट सेंसिंग और डिजिटल कृषि उपकरण जैसी आधुनिक प्रौद्योगिकियां विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहियें।

**जलवायु परिवर्तन अनुकूलन** : फसल विविधीकरण, फसल चक्र जैसी कृषि पद्धतियों के माध्यम से कृषि पारिस्थितिकी पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम किया जा सकता है। इसके साथ ही चरम मौसम की घटनाओं के लिए प्रारंभिक चेतावनी प्रणाली विकसित करना चाहिए तथा जलवायु–लचीली पद्धतियों के प्रति किसानों को जागरूक करना चाहियें।

**भंडारण और कोल्ड चेन अवसरंचना** : आधुनिक भंडारण सुविधाओं, कोल्ड चेन अवसरंचना और परिवहन प्रणालियों में निवेश से भोज्य पदार्थों में होने वाली हानि और बर्बादी को कम करने में सहायता मिलेगी।

**खाद्य वितरण प्रणालियों को मजबूत करना :** बेहतर लॉजिस्टिक्स, आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन और बाजार संबंधों के माध्यम से खाद्य वितरण नेटवर्क की दक्षता बढ़ाना।

## भारत सरकार द्वारा खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए उठाए गयें कदम?

खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए भारत सरकार द्वारा की गई पहलें:
राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013
सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS)
मध्याह्न भोजन योजना
एकीकृत बाल विकास सेवाएँ (ICDS)
राष्ट्रीय पोषण रणनीति
प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (PMKSY)
राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (RKVY)
राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन (NMSA)

## सन्दर्भ सूची –

देव, एस. महेन्द्र, कानन, के.पी. और रामचंद्रन, नीरा (सं.), 2003, 'टुआर्डस ए फूड सिक्योर इंडिया : इश्यूज एंड पॉलिसीज, इंस्टीच्यूट फॉर ह्यूमन डेवलपमेंट, नयी दिल्ली।
एफ.ए.ओ. 1996, वर्ल्ड फूड सम्मिट 1995, फूड एण्ड एग्रीकल्चरल ऑर्गजेशन, रोम
आर्थिक सर्वेक्षण 2002–03, 2003–04, 2004–05, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली।
सेन, ए.के., 1983, पॉवर्टी एंड फैमिंस : एन ऐसे ऑन इनटाईटलमेंट एंड डेप्रिवेशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
यू.एन. 1975, रिपोर्ट ऑफ द वर्ल्ड फूड कान्फ्रेंस 1975 (रोम), यूनाटेड नेशंस, न्यूयार्क।
भारतीय खाद्य निमग; (fci.gov.in/stocks.php/view=18)
दैनिक हिन्दुस्तान समाचार पत्र
www.google.com
www.anganwadi.com

# रेशम : आविष्कार एवं भारतीय ऐतिहासिक संदर्भ

डॉ. नीलम उपाध्याय*

प्रायः सम्पूर्ण विश्व में रेशम अपने सुखद स्पर्श, सुन्दर कान्ति व मोहक आभा के कारण लोकप्रिय है। प्रकृति का यह सुन्दर उपहार सदैव अपनी सुन्दरता व अन्य गुणों से जनमानस को लुभाता आया है। पेड़ की पत्तियों पर पलने वाले कीड़ों से प्राप्त होने वाला रेशमी धागा जहाँ अपनी चमक व मजबूती के लिये मशहूर है वहीं इसमें प्रत्यास्थता का भी अभूतपूर्व गुण है।

इसके प्राकृतिक श्वेत रंग पर रंग बढ़िया ढंग से चढ़ता है साथ ही एक अद्भुत चमक लेकर निखर उठता है। रेशमी वस्त्र अन्य वस्त्रों की अपेक्षा अल्प भार के होने के साथ में सूती, लिनेन, रेयान आदि के वस्त्रों की तुलना में बेहतर तापरोधक भी सिद्ध होते हैं। इसकी एक अन्य विशेषता यह है कि इसके बने वस्त्रों में सिलवटें नहीं पड़ती हैं।

रेशम की लोकप्रियता व व्यापक प्रयोग को देखते हुये विश्व के अधिकांश देश इसके यथासम्भव उत्पादन में लगे हुये हैं परन्तु इसका प्राचीनतम उत्पादक देश चीन आज भी प्रथम स्थान पर आता है तथा द्वितीय स्थान पर भारत हैं। भारत के अलावा जापान, ब्राजील, दक्षिणी कोरिया, रूस व थाईलैण्ड आदि देश प्रमुख उत्पादकों की श्रेणी में आते हैं।

रेशम का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। मानव सभ्यता के विकास के साथ साथ रेशम का उत्पादन व प्रयोग विकसित होते होते आज के व्यापक स्तर तक पहुँच गया है। सामान्यतया विभिन्न स्रोतों द्वारा इसकी खोज का श्रेय चीन को दिया जाता है। इस विषय में दो प्रचलित कथाओं का उल्लेख अनुचित नहीं होगा।

प्रथम कथा के अनुसार चीन में कोई २५०० ई० पू० एक शासक वोहांग की पत्नी सम्राज्ञी शी लिंग ची अपनी सखियों के साथ बगीचे में घूम रही थी। इसी दौरान उसने शहतूत के पत्ते खाने वाले छोटे छोटे कीड़ों को देखा। उत्सुकतावश रानी ने उनका निरीक्षण करना शुरू किया और पाया कि धीरे धीरे इन कीड़ों में बढ़ते हुये खास तरह के कोये (कोकून) बना लिये। जिज्ञासु रानी ने इन कोयों को महल में लाकर रख दिया व शलभ निकलने तक की प्रक्रिया का अध्ययन किया। इसी दौरान संयोगवश एक कोया नहाने हेतु रखे हुये गर्म पानी में गिर गया। इसे जब रानी ने पानी से बाहर निकाला तो उसे इससे एक चमकदार धागे के गुच्छे की प्राप्ति हुई और इस प्रकार रेशम की खोज हुई।

दूसरी कथा के अनुसार चीन के शासक हुआंग टी की पत्नी शी लिंग ते द्वारा रेशम की खोज की गयी। शाही बाग में लगे शहतूत के पेड़ों का नाश करने वाले का पता लगाने हेतु रानी रोज बाग का निरीक्षण करने लगी। इस तरह वह जान सकी कि शहतूत की पत्तियों को एक सफेद कीड़ा खा जाता है जो बाद में चमकदार कोये बनाता है। एक बार दैववशात् उस के हाथ से एक कोया गर्म पानी में गिरा और वह उसे पकड़ने लगी। खेल खेल में कोये का चमकीला पतला धागा खुद ब खुद अलग होता गया और रेशम का आविष्कार हुआ। धागे की सुन्दरता पर मोहित रानी द्वारा शहतूत के कीड़ों को पैदा कराकर उत्तमोत्तम कोये प्राप्त किये जाने लगे। इसी रानी को 'सिल्क रील' के आविष्कार का भी श्रेय दिया जाता है, जिससे रेशे जोड़ कर कातने योग्य बनाये जा सकते हैं। ईसा से २६४० वर्ष पूर्व पहला करघा भी इसी रानी का आविष्कार माना जाता है। रेशम के प्रति उसके अत्यधिक लगाव के कारण मृत्यु के उपरान्त प्रजा ने उसे 'रेशमी कीटों की देवी के रूप में पूजना शुरू कर दिया।

इन कथाओं के अतिरिक्त अधिकांश इतिहासकार मानते हैं कि रेशम का प्रथम प्रयोग चीन में हुआ था। चीन विश्व को निर्यात हेतु इसका व्यावसायिक उत्पादन करने लगा था और एकाधिकार बनाये रखने हेतु इस भेद को करीब ३००० वर्ष तक शेष विश्व से छिपाये रहा। इस भेद को खोलने वाला देशद्रोही मृत्युदण्ड के योग्य समझा जाता था।

हान साम्राज्य (२०० ई० पू०) तक चीन फारस की मध्यस्थता मे यूरोप को रेशम का निर्यात करने लगा और भारी लाभ प्राप्त करने लगा। चीन व पश्चिमी देशों के मध्य दमिश्क केन्द्र बना। कहा जाता है ३०० ई० पू० में पश्चिमी देश रेशम का धागा बनाने वाले आश्चर्य जनक कीड़ों के बारे में जान चुके थे। सम्राट जस्टीनियन के प्रयासों के फलस्वरूप रेशम व्यापार

* असिस्टेंट प्रोफेसर, फैमिली एंड कम्युनिटी साइंस विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

फारस से हट इस्ताम्बूल (पूर्वी यूरोप) में केन्द्रित हो गया। एक जनश्रुति के अनुसार इस सम्राट ने दो साधुओं को चीन भेजा, जो रेशम के कीड़ों के कुछ अण्डे व शहतूत के बीज एक खोखली छड़ी में छिपाकर ले आये। इस उपलब्धि ने चीन व फारसी व्यापारियों का रेशम व्यापार से एकाधिकार समाप्त कर दिया।

अगली कुछ ही शताब्दियों में कोये से रेशम तैयार करना अनेक लोगों ने सीख लिया। ईसा की मृत्यु के ८०० से २०० वर्ष बाद तक रेशम स्पेन व इटली पहुँच गया था। १५०० के बाद तो फ्रांस इटली को मात देने लगा। इसी दौरान इंग्लैण्ड भी रेशम का उत्पादन करने लगा। अमेरिका में यह कार्य अवश्य १९वीं शती की शुरुआत में शुरू हो सका।

**भारत और रेशम**

भारत में रेशमी वस्त्रों का प्रयोग अनादि काल से होता आया है। अतः रेशम उद्योग की प्राचीनता को सिद्ध करने वाले प्रामाणिक स्रोतों की कमी नहीं है, परन्तु रेशम का उत्पादन देश में ही किये जाने के उल्लेख अधिक नहीं हैं, सम्भवतया ऐसा आवश्यक नहीं समझा गया। पश्चिमी इतिहासकार मानते हैं कि भारतवर्ष में शहतूत का पौधा १४० ई० पू० में चीन से खोतान के रास्ते भारत पहुँचा और गंगा ब्रह्मपुत्र के पर्वतीय भाग (आसाम) में इसका उत्पादन प्रारम्भहुआ। परन्तु भारतीय इतिहासकारों के एक वर्ग के अनुसार सर्वप्रथम आर्यों ने रेशम के कीट हिमालय के इलाकों में खोजे। अतः हिमालय की तराई में ही रेशम के कीट 'बॉम्बिक्स भोरी' का जन्म हुआ।

वैदिक साहित्य में हिरण्यवस्त्रों आदि के उदाहरण जहाँ रेशम के प्रचलन की पुष्टि करते है वहीं महाभारत आदि महाकाव्यों में भी इसका उल्लेख मिलता है। महाभारत के अनुसार राजसूय यज्ञ के अवसर पर युधिष्ठिर के पास उपहारस्वरूप शक, हूण, वाहलीक, पौण्ड्र, चीन आदि सीमावर्ती व बाह्य ग्रन्थों से मुलायम, सुन्दर व विभिन्न रंगों के कपड़े आने का उल्लेख किया गया है। इस काल में भारत के इन प्रदेशों से घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्धों का संकेत ऐसे उल्लेखों से प्राप्त होता है। 'सभापर्व' में बाहलीक व चीन के कीटज व पट्टज वस्त्रों का उल्लेख मिलता है। पेरीप्लस के अनुसार मुजरिस, नेल्लिकिण्डा व मलाबार तटों व गंगा के मुहाने सहित पूर्वी तट से होते हुए रेशम व बहुमूल्य रेशमी कपड़ों का निर्यात व आयात होता था।

थलमार्ग से बलख के रास्ते सिंघ होते हुए भरुकच्छ तक यह व्यापार किया जाता था। ईसा के प्रारम्भिक शतियों में चीने से रेशमी वस्त्र ब्रह्मपुत्र की घाटी आसाम व पूर्वी बंगाल होते हुए आता था। रोमन व्यापारी गंगा के मुहाने, त्रावणकोर व खम्मात की खाड़ी से रेशमी वस्त्र प्राप्त करते थे। चीनपट्ट या चीनांशुक के अतिरिक्त भारतवर्ष में बने उच्चकोटीय रेशमी वस्त्र रोम में प्रचलित हो चुके थे।

जैन 'आचारांग सूत्र' व कौटिल्यकृत "अर्थशास्त्र" (अध्याय ११, प्रकरण २७) में भी रेशमी तन्तु का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसके अनुसार काशी व पुण्ड्र में बनने वाले रेशमी वस्त्रों की उत्कृष्टता का वर्णन है। रेशमी तन्तु जितना बारीक हो उतना ही उत्तम व जितना मोटा हो उतना ही हीन कोटि का माना जाता था।

रामायण (कश्मीरी पाठ) में कोशकार देश का उल्लेख है। टीकाकार राम के अनुसार यह नाम उस प्रदेश में रेशम के कोषों के प्रचुर मात्रा में उत्पादन के कारण पड़ा। कृत्तिवास रामायण (बंगला अनुवाद) के किष्किन्धाकाण्ड के अनुसार कोषकार देश लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) के बाद पड़ता है। यह इंगित करता है कि यह प्रदेश आसाम अथवा पूर्वी बंगाल में स्थित था।

प्रारम्भिक काल से कश्मीर रेशमी वस्त्रों का क्षेत्र माना जाता रहा है। पौराणिक आख्यानों सहित स्मृतियों में रेशम के उत्पाद कौशेय, पट्टवस्त्र, चीनांशुक आदि का उल्लेख है। रामायण में सीता विवाह के अवसर पर विभिन्न प्रकार के रंग बिरंगे रेशमी वस्त्रों की भेंट का उल्लेख किया गया है। 'कालिका पुराण' के अनुसार नरकासुर के राज्य में किरात कीट पालन करते थे व ऐरी रेशम का उत्पादन कर रहे थे। ईसा के बहुत पहले ही पुण्ड्रों द्वारा रेशम उत्पादन कर सुदूर देशों को रेशम को निर्यात किया जाता था। कनिष्क के समय भारत से रोम को भारी मात्रा में कच्चा रेशम भेजा जाता था। २०० ई० तक चीन तथा दक्षिण यूरोप के देशों से सुदृढ़ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे। सीरिया में प्राचीन कब्रों से भारतीय रेशम के टुकड़ों का मिलना मारत व सीरिया के मध्य रेशमी वस्त्रों के व्यापार की पुष्टि करता है।

प्रारम्भिक मुस्लिम बादशाहों के काल के अभिलेखों में जहाँ तहाँ शहतूत व रेशम के कीड़ों का उल्लेख प्राप्त होता है। १६वीं-१७वीं शती में मुगल बादशाहों द्वारा रेशम उद्योग को काफी प्रोत्साहन दिया गया। अबुल फजल की "आइने अकबरी" (१५९० ई०) में भारत में शहतूत के वृक्षों के बाहुल्य व तिब्बत से रेशमकीट के अंडे लाकर रेशम उत्पादन द्वारा लोगों के जीविकोपार्जन का वर्णन है।

रेशम उद्योग का महत्व १७वीं शती से बढ़ने लगा और १८-१९ वीं शती तक यह उद्योग बंगाल, कर्नाटक व कश्मीर में उन्नत अवस्था में आ गया था। १८७५ ई० में रेशम कीटों में पेबरीन रोग के प्रसार के कारण भारत अन्य देशों की अपेक्षा काफी पिछड़ गया। २०वीं शती के प्रारम्भ में इस उद्योग की पुनर्स्थापना हेतु कर्नाटक, जम्मू-कश्मीर व बंगाल जैसे राज्यों के पृथक् विभागों की स्थापना की गई। इस शताब्दी के चौथे दशक में औद्योगिक अवनति ने एक बार फिर इस उद्योग के अस्तित्व हेतु संकट पैदा कर दिया। इस स्थिति को दूर करने हेतु १९३३ व १९३८ में भारत सरकार द्वारा संरक्षण कानून लागू किया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय इस उद्योग को विशेष प्रोत्साहन मिला और इसके विकास की गति द्विगुणित हो गयी। इसका एक कारण यह भी था कि मित्र राष्ट्रों के संघ में हवाई छतरी के उत्पादन हेतु रेशम की आपूर्ति करने वाला एकमात्र देश भारत ही था।

१९४९ में इस उद्योग के वैज्ञानिक विकास हेतु 'केन्द्रीय रेशम बोर्ड' की स्थापना की गई। इसका कार्य विभिन्न राज्यों में रेशम कीट-पालन व उनके भोज्य पौधों के सुधार, रेशम की कताई व सम्बन्धित समस्याओं का समाधान तथा केन्द्र सरकार को कच्चे रेशम के उत्पादन, आयात-निर्यातादि मामलों पर सलाह देना है।

भारत में स्वतंत्रता के बाद रेशम उत्पादन की दिशा में ठोस प्रयास किया गया। भारत में कर्नाटक राज्य सर्वाधिक रेशम उत्पादन के लिए विख्यात है। विशेष रूप से मैसूर और उत्तरी बेंगलुरु को भारत के सिल्क सिटी के रूप में जाना जाता है। आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, असम, पश्चिम बंगाल राज्य, कर्नाटक के साथ मिलाकर कुल 80% रेशम का उत्पादन भारत में करते हैं।

आज भारत रेशम उत्पादन में विश्व में दूसरे स्थान पर आता है परंतु उपभोक्ता के रूप में विश्व में प्रथम स्थान पर आता है। जिससे भारत में आज भी रेशम एवं उससे निर्मित वस्त्रों की लोकप्रियता का सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

**संदर्भ ग्रंथ:-**

1. History of Silk-Aarti Prasad.
2. The Global Silk Industry:-A Complete Source – Rajat Dutta
3. Five hundred years of Art and craft in India and Pakistan - Shanti Swarup
4. Textile Manufactures and costume of people of India - Watson